हिरोशिमा की छाया में

भगवत स्वरूप चतुर्वेदी

हिरोशिमा की छाया में

हिरोशिमा की छाया में

लेखक

भगवत स्वरूप चतुर्वेदी

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली बम्बई इलाहाबाद पटना मद्रास

विश्व-शान्ति के प्रतीक तथा युग-नायक
पं० जवाहरलाल नेहरू
के कर-कमलों में
सादर

परिचय

श्री भगवतस्वरूप चतुर्वेदी पुलिस-विभाग के ज़िम्मेदार अफ़सर हैं। उनको लिखने-पढ़ने का शौक है। मैं इसके पहले भी उनकी एक कृति देख चुका हूँ। अपने अवकाश के समय में उन्होंने यह दूसरी कृति 'हिरोशिमा की छाया में' नाम की, उपन्यास के रूप में प्रस्तुत की है। परमाणु-बम मनुष्य के लिए उस विजय का प्रतीक है जो उसे प्रकृति के छिपे हुए रहस्यों को हठात् जान लेने में प्राप्त हुई। ज्ञान शक्ति का दूसरा नाम है। प्रकृति के रहस्यों का ज्ञान उन रहस्यों से काम लेने की सामर्थ्य देता है। काम भला भी हो सकता है और बुरा भी; परन्तु मनुष्य का ध्यान प्रायः बुरे उपयोग की ओर ही पहले जाता है। परमाणु-शक्ति परमाणु-बम के रूप में नर-संहार का साधन बनी। द्वितीय महायुद्ध में जापान के हिरोशिमा और नागासाकी नगरों पर पहली बार बम गिराया गया। इसके जो परिणाम हुए उनका वर्णन हम आज तक पढ़ते आते हैं। इस उपन्यास में उनका चर्चा है। युद्ध कई दृष्टियों से प्रशंसा की चीज़ समझी जाती है। धर्मग्रन्थों, कवियों और राजपुरुषों ने इसकी स्तुति के पुल बाँधे हैं। किसी-किसी स्थिति में सम्भवतः इस यशोगान की सराहना की भी जा सकती है परन्तु आज की लड़ाइयाँ हमारे सामने ऐसे दृश्य उपस्थित करती हैं जिनके लिए किसी भी अवस्था में तारीफ़ के शब्द व्यवहार में नहीं लाये जा सकते। सिपाही के मन में भले ही बड़ी उदात्त भावनाएँ रहती हों पर जब वह शतरंज के मुहरे की भाँति इधर-से-उधर फेंका जाता है, ऐसे लोगों का शिकार करता है जिनको वह देख भी नहीं पाता, जिन्होंने उसका कभी कुछ बिगाड़ा नहीं, बिगाड़ सकते भी नहीं, जब युद्ध समाप्त होने के पीछे या उसके पहले ही एक छोटी-सी पेन्शन देकर उसे पृथक् कर दिया जाता है और वह माँगे भीख भी नहीं पाता, तब बहुधा उसके विचार बदल जाते हैं। उसके मन में यह भाव उठता

है कि आखिर वह क्यों लड़ा। वह उस राजनीतिक यन्त्र का शत्रु बन जाता है जो उसको और उसके-जैसे लाखों दूसरे व्यक्तियों को इस प्रकार फँसा-कर उनसे काम लेने के बाद दूध में गिरी हुई मक्खी की भाँति दूर फेंक देता है। ऐसी बातों का चर्चा पढ़ने से वर्तमान युग के युद्ध की भयानक तसवीर हमारी आँखों के सामने आती है। इस पुस्तक में इसकी भी झलक मिलेगी। श्री चतुर्वेदी जापान नहीं गये। वह युद्ध में सम्मिलित भी नहीं हुए थे, परन्तु किताबों में पढ़ी सामग्री का यथोचित उपयोग करके अपनी कल्पना के द्वारा उन्होंने जो तसवीर खींची है वह लोगों के सामने रखने योग्य है। उसे अंकित करके उन्होंने उपयोगी काम किया है।

—सम्पूर्णानन्द
मुख्य मंत्री, उत्तर प्रदेश

कैम्प : नई दिल्ली,
मई १३, १९५९

प्राक्कथन

'हिरोशिमा की छाया में', शीर्षक इस लघु उपन्यास को हिन्दी पाठकों के हाथों में रखने में मुझे प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। इस दिशा में श्री चतुर्वेदी जी का यह पहिला प्रयास है और हिन्दी में भी, संभवतः, यह अपने विषय का पहिला ही उपन्यास है, जिसमें अणु-विस्फोट की निर्मम विभीषिका का दुर्दान्त रोमांचक चित्रण अत्यन्त मानवीय संवेदना तथा सहानुभूति के साथ उपस्थित किया गया है, जिससे मानव-सभ्यता तथा संस्कृति के संभावित भविष्य की विषण्ण छाया अपनी समग्र विध्वंसकारी भयंकरता में मन की आँखों के सामने झूलने लगती है। युग की भयावह वास्तविकता से भरी ऐसी महत्वपूर्ण घटना को अपनी कथा का विषय बन तथा उसका कुशलतापूर्वक निर्वाह कर सकने के कारण श्री चतुर्वेदी जी, निःसंदेह, समस्त हिन्दी जगत की बधाई के पात्र हैं।

'देखन के छोटे लगें, घाव करें गंभीर' वाले नाविक के तीर-जैसे इस छोटे-से उपन्यास की अनेक विशेषताएँ हैं। इसमें सशक्त, रंगीन, आधुनिक भाषा में जापान के विभिन्न प्रदेशों के सजीव वर्णन तथा वहाँ के निवासियों के जीवन का घनिष्ठ परिचय और उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति का सुरुचि-पूर्ण रोचक अंकन मिलता है। यत्र-तत्र वहाँ के फूलों की रंगपूर्ण द्वीप-मालिका के अत्यन्त सुन्दर चित्रण, वहाँ के वन-पर्वतों, घाटियों, नदियों और समुद्री दृश्यों के वर्णन तथा वहाँ के घर, आँगन, उपवनों के मूर्तिमान रोचक विवरण आपकी आँखों के सामने जापान के प्राकृतिक सौन्दर्य-स्थलों तथा वहाँ के लोगों के रहन-सहन, स्वभाव और आदतों को बड़े सहज ढंग से उद्घाटित करते रहते हैं। लेखक सर्वत्र, सब परिस्थितियों में, चिरपरिचित अंतरंग मित्र की तरह, जापान-निवासियों के बाहर-भीतर के जीवन में पाठकों को अपने साथ प्रवेश कराने में सफल होता है। जापानी भाषा के शब्दों के उपयुक्त

प्रयोग घटनाओं को और भी स्वाभाविकता प्रदान करते हैं। जापानी पात्रों का चरित्र-चित्रण लेखक ने बड़ी सूक्ष्मता तथा योग्यता से किया है। क्या नर्स, क्या गीशा गर्ल, क्या डाक्टर और क्या प्रोफ़ेसर—सभी अपने देश पर आए हुए उस आकस्मिक असंभावित महान संकट के कारण उद्विग्न और व्यग्र हैं और उनकी व्यस्तता के भीतर से उनके दृढ़ संकल्प, कर्मठ, कलाप्रिय तथा आस्थावान जीवन की जो स्वस्थ झाँकी मिलती है वह मन को स्पर्श किए बिना नहीं रहती। अणु-बम के विस्फोट-सी घोर दुर्घटना से भी परास्त न होकर निरंतर द्विगुणित उत्साह से नवीन जीवन-निर्माण की भूमिका में संलग्न जापानियों के अदम्य साहस, धैर्य, लगन और आत्मबल को देखकर मन में उनके प्रति सम्मान तथा प्रशंसा की भावना जाग्रत् होती है। डाक्टर के चिकित्सालय की अनुसन्धानशाला में रेडियो-सक्रिय पदार्थों तथा जीवों के विस्तृत वैज्ञानिक विवरण भी बड़ी रोचकता, सतर्कता तथा योग्यतापूर्वक अंकित किए गये हैं। वहाँ के विद्युत्-सक्रिय प्राणियों की दुरवस्था देखकर तथा अणु-दैत्य की भावी लुंज-पुंज संतानों का आभास पाकर रोंगटे खड़े हो उठते हैं। हिरोशिमा के विनाश की पृष्ठभूमि से नारा नगर में 'दाय बुत्सू' की विशाल प्रतिमा की छाया में ले जाकर लेखक, जैसे, जापानियों के आस्थावान हृदय में दया और अहिंसा की भावनाएँ जगाकर, अप्रत्यक्ष रूप से, भारतीय संस्कृति की चिरस्थायी देन तथा उसके महत्व की ओर इंगित करता है।

युग के घोर विपन्न यथार्थ को प्रस्तुत करनेवाला यह लघु उपन्यास अपने रूप-विधान में कहीं भी नीरस अथवा शिथिल नहीं होने पाया है। इसमें कथानक की रोचकता तथा सजीवता सर्वत्र अक्षुण्ण रूप से वर्तमान मिलती है। नंदलाल-जैसे पात्र, जो कि सैनिक जीवन में प्रायः ही पाए जाते हैं, इस दारुण करुण कथानक में हास-परिहास तथा रसिकता की रंगीन डोरियाँ गूँथने में सहायक होते हैं। नंदलाल का चरित्र-चित्रण बड़ा स्वाभाविक और सफल बन पड़ा है। उसका अंत भी लेखक ने बड़े मार्मिक और व्यंग्यपूर्ण ढंग से किया है। इस लघु उपन्यास में नंदलाल शाह के अतिरिक्त नाविक ओकादा,

गेशा युवती कोइको, नर्स सेत्सूको, डाक्टर तोशियो तनाका तथा प्रोफ़ेसर गोरो हामागूची के चरित्र भी बड़े स्पष्ट तथा जीवंत होकर निखर आए हैं, जो जापान के जीवन के अनेक आयामों को अत्यंत गंभीर तथा रोचक ढंग से उपस्थित करते हैं। ऐसा लगता है कि युद्ध-जीवन, सामुद्रिक-जीवन तथा सैनिक-जीवन की रोमांचकता से लेखक भली-भाँति अभ्यस्त है।

सर्वोपरि, इस लघु उपन्यास में इस युग के संशय, अनास्था, भय, शीत-युद्ध तथा संहार के परिवेश में जो विश्व-शांति तथा मानव-कल्याण का अमूल्य संदेश निहित है वह इसकी उपयोगिता में, निःसंदेह, चार चाँद लगा देता है। इसमें कम-से-कम शब्दों तथा पात्रों द्वारा अधिक-से-अधिक घटना-वैचित्र्य तथा अर्थ-वैभव को अभिव्यक्ति मिल सकी है, जिसे मैं इसके शिल्प की विजय मानता हूँ। मैं इस उपन्यास को सभी दृष्टियों से एक सफल कलाकृति समझता हूँ, और लेखक को उसके इस ज्वलंत विषय के चुनाव तथा उसके सुघरे कलात्मक प्रतिपादन के लिए फिर बधाई देता हूँ। इसमें प्राकृतिक सौन्दर्य की छटा, मानव-कृत्यों की वीभत्सता तथा लोकमंगल का संदेश अविच्छिन्न रूप से एक ही कथानक के अंग बनकर अपनी समग्रता में अवतरित हुए हैं,—जो इसकी महान सफलता है।

सुमित्रानंदन पंत

दो शब्द

द्वितीय विश्व-युद्ध में जब वैज्ञानिक अनुसन्धान अपनी चरम सीमा पर पहुँचे और उसके फलस्वरूप अणु में निहित अपार शक्ति का एक राष्ट्र ने दूसरे राष्ट्र पर प्रहार किया, उस समय सम्भवतः किसी ने विचार भी न किया होगा कि यह निर्मम विभीषिका साहित्य-सृजन का विषय बनेगी। अणु-विस्फोट कर मनुष्य ने सभ्यता का हनन तो किया ही पर उसके साथ-साथ मानवता को एक नई दिशा भी दी। सुदूर जापान के द्वीप में स्थित हिरोशिमा नगर पर आकाश से अवतरित अभिशाप ने विश्व के नागरिकों में एक अद्भुत, व्यापक, सहृदयता को भी जन्म दिया, जो हिरोशिमा के ध्वस्त-शेष नगर के सिसकते जीवन-क्रम को पुनः जाग्रत करने तथा अक्षुण्ण रखने में काफ़ी हद तक सहायक हुई। इस मृत्यु के बवण्डर से उत्पादित मनुष्य-जाति के प्रति प्रेम और एकता के सागर की उत्ताल तरंगों ने उस बवण्डर को अपनी उग्रता में डुबोकर समाहित कर डाला। सभ्यता को विस्तृत मरुस्थल और मूक प्रस्तरों में परिणत करनेवाली पैशाचिक प्रवृत्तियाँ प्रकृति की जीवनदायिनी क्रिया का विनाश न कर पाईं। हरे-भरे आबाद नगर उजड़े हुए रेगिस्तान बन गये। प्राणियों का जीवन-रस निचुड़कर उन रेगिस्तानों में समाने लगा। उस गर्म रुधिर ने धरा के अन्तर को गीला कर दिया। मरुभूमि में टेढ़ी-मेढ़ी नागफनी और कँटीले झाड़ झाँकने लगे। उन कँटीली फुनगियों में मेरा मन उलझ गया। उन अंकुरों के शूलों में निहित मानव की वेदना को अक्षुण्ण बनाने की उत्कण्ठा ने मुझे यह लघु उपन्यास लिखने को प्रेरित कर डाला।

वर्तमान युग में राष्ट्रों के बीच लड़े गए भयानक युद्ध, युद्ध के बाद अस्थायी सन्धि, सन्धि के होते ही वैमनस्य और भय की भावना का फैलता विष, और फिर शीत-युद्ध का प्रसार—यह ऐसा क्रम हो गया है जो अन्तर-

राष्ट्रीय क्षेत्र में देशों को उस ऊँचे खुरदुरे कगार के तट पर खींच लाता है जहाँ से वे नीचे गिरकर अथाह, अनन्त, अन्धकार में मिट ही नहीं जायँगे वरन् मनुष्य-जाति की संस्कृति, आदर्शों और सभ्यता को ग़र्क कर डालेंगे। इस भावना के विरोध में और विश्व-शान्ति की मंगल-कामना से अनुप्राणित हो हमारे भारत देश के सर्वश्रेष्ठ नेता पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने विश्व में एक नये मार्ग का प्रदर्शन किया है। उन्होंने इस युग के कलह को पारस्परिक स्नेह में परिणत करने का अनुष्ठान किया है। वह विश्व-शान्ति के प्रतीक तथा युग-नायक हैं और इसी लिए मैंने इस रचना को उनको अर्पित करने का साहस किया है। इस लघु उपन्यास के पढ़ने से युद्ध की विभीषिका और निरर्थकता के प्रति यदि पाठकों के मन में करुणा जाग्रत हो जाय और लोक-साहचर्य की भावना का उत्कर्ष हो सके तो मैं अपने प्रयत्नों को विफल नहीं समझूँगा।

इस रचना की पृष्ठ-भूमि जापान देश में है क्योंकि अणु-विस्फोट की विभीषिका का दिग्दर्शन वहाँ के नगर हिरोशिमा में ही हो सकता है। जापान के ललित रँगीले द्वीपों पर प्राप्त भारत के सैनिकों के यथार्थ अनुभव सच्ची अनुभूतियों पर आधारित हैं।

इस लघु उपन्यास की रचना में जो प्रोत्साहन मुझे आदरणीय सुमित्रानन्दन जी पन्त और मेरे परम मित्र कवि श्री गिरजाकुमार माथुर, एसिस्टेंट स्टेशन डाइरेक्टर, आकाशवाणी, इलाहाबाद से मिला है उसे मैं कभी भी नहीं भूल सकता। इन दोनो साहित्यकारों ने मुझे अमूल्य सुझाव दिये हैं और मैं उनका अनन्त आभारी हूँ।

अपने कार्य-व्यस्त जीवन में जो क्षण मैं साहित्य-सेवा के लिए निकाल सका उसके फलस्वरूप यह मेरी कृति—'हिरोशिमा की छाया में'—पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है।

१० : ५ : ५६ — भगवत स्वरूप चतुर्वेदी

मुख्य चरित्रों के नाम

१. मेघा—नन्दलाल की प्रथम प्रेमिका

२. नन्दलाल शाह

३. हवलदार मेजर गुरुदयालसिंह

४. तेरुओ ओकादा

५. रेइको

६. कोइको सान

७. सेत्सूको सान— नर्स

८. डाक्टर तोशियो तनाका

९. प्रोफ़ेसर गोरो हामागूची

अबाशिरी
होकैडो
औमोरी
जा पा न सा ग र
तोकियो
हांशू
योकोहामा
नारा
क्योतो
कोबे
ओसाका
कूरे
हिरोशिमा
शिकोकू
क्यूशू
नागासाकी

जापान

१
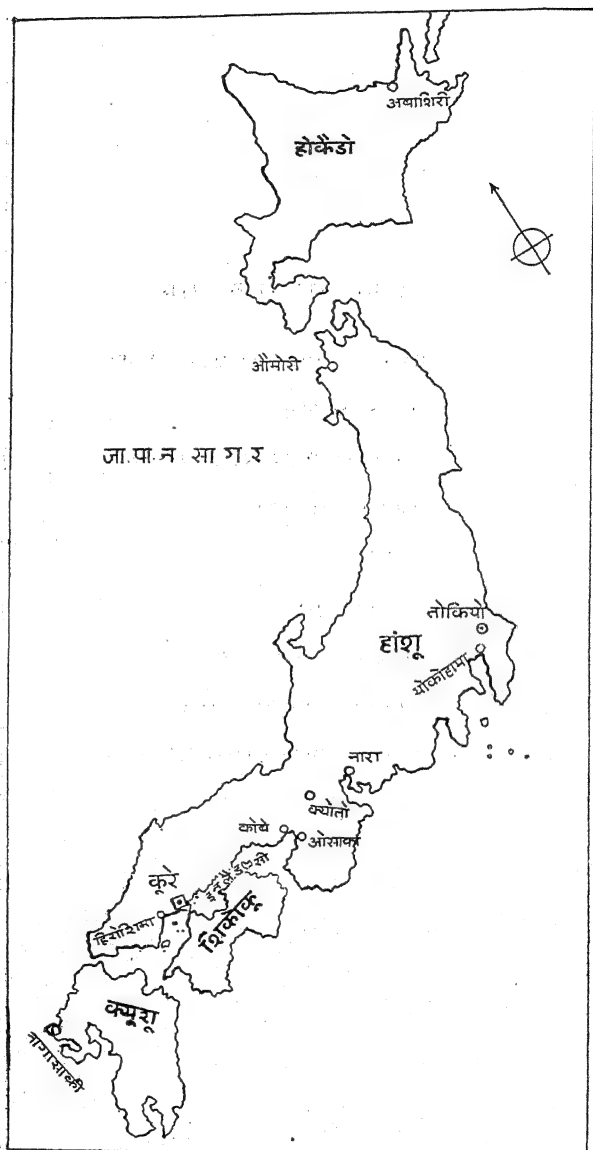
सुनहले प्रभात की तिरछी-बाँकी किरनें आज भी अपना नारंगी और पीला रंग बिखेर चुकी थीं। नारियल के सीधे वृक्षों के नुकीले पत्तों से छनकर उनकी रंगीनी हरी घास पर एक अजब जादू का जाल बिछा रही थी। दूर पर गहरे हरे रंग की पहाड़ियों की चोटी पर सुरमई रेखा सिमट-कर अधिक स्पष्ट हो चली थी। स्वच्छ आकाश में उड़ते हुए, सिलेटी बादलों में भी रंगों का उभार झलकता! मलाया की मलयानिल ने हमारे मन में रंग भर दिया। समुद्र के नीले जल में छोटी लहरें उठने लगीं—मालूम होता कि उसका शान्त वक्ष चेतना की हिलोरों से उठता-गिरता हो। हर ओर जिन्दगी और हर वस्तु में गति आ गई।

हमारा जहाज भी चलने लगा। उसके चलने के साथ यह आभास हुआ मानों सिंगापुर का फैला, सुन्दर किनारा हमारे साथ-साथ चल रहा है। वहाँ की भूरी बड़ी इमारतें, छोटे-छोटे सफेद मकान और उनमें से झाँकती हुई खिड़कियाँ, चौड़ी साफ-सुथरी सड़कें—सबमें जिन्दगी और सब आगे बढ़ते हुए। किनारे पर बना शानदार 'रैफेल्स होटल' (Raffel's Hotel) भी स्थिर न था। वह भी हमारा साथ दे रहा

था। जी चाहता था कि सागर को तैरकर मैं इस होटल के अपने कमरे में चला जाऊँ, जहाँ मैं इतने दिनों रहा था।

किनारे पर खूब चहल-पहल थी। स्टीमर, टग, बड़ी नावें और छोटी किश्तियाँ सब चलने लगी थीं। गालों की चौड़ी उभरी हुई हड्डियों के बीच पतली आँखोंवाले मलय और चीनी मछुए अपनी मोटर-बोट भगाये लिये जा रहे थे। उनके बेंत के बड़े हैट की परछाईं पार कर उनके गले में बँधे लाल, नीले और हरे रूमाल के छोर हवा में इठलाते और वह ऊँचे स्वर से किसी गाने की तान छेड़ते, जो कभी-कभी जहाज के इञ्जनों की घड़घड़ाहट को भी पार कर कानों में पड़ जाती। जेटी में हर किस्म की नावें खचाखच भरी थीं और सबमें हलचल-सी मची थी। हम इस गति के प्रदर्शन से दूर हो रहे थे, पर वह तट हमारे साथ तैरता हुआ, साथ चलता हुआ मालूम हो रहा था।

'मेजर साहब ! हम लोगों का सब सामान ठीक से रख लिया गया है। सब जवान खुश हैं।' मेरी कम्पनी के हवलदार मेजर गुरुदयाल-सिंह ने अपने बूट की एड़ी खट से मिलाकर सैल्यूट करते हुए कहा।

'अच्छा ठीक है।' मैंने उत्तर दिया और उसके चेहरे को एक निमिष गौर से देखा। उसकी खुशी को उसकी घनी दाढ़ी और मूछें भी नहीं छिपा सक रही थीं। उसके बायें नथने के पास का काला मसा उभरे हुए गाल की रेखा के नीचे आधा छिप गया। उसकी आँखों की चमक पर गीली कोरों से उठता पानी फैलने लगा—उस सागर के किनारे की तरह। एक टक बिछुड़ते साहिल की ओर देखकर वह कहने लगा, 'साहब ! इस शानदार शहर से अलविदा !'

'हाँ, मगर यह खुशनुमा किनारा तो हमारे साथ ही बहा आ रहा है।'

'थोड़ी देर के लिए साहब।'

'शायद आप ठीक कहते हैं।' मैंने सिगरेट का एक कश खींचते हुए कहा। सिगरेट के धुँए के फैलते हुए छल्लों के अस्थिर अस्तित्व को मैं देखने लगा।

'मेरे लिए और कुछ हुक्म?' उसने चुस्ती से कहा।

'अच्छा गुरुदयालसिंह, अब आप आराम कीजिए। सब जवानों पर निगरानी रखिए।' कहते-कहते मेरी आँखें फिर किनारे के मनोरम दृश्य में उलझ गईं।

दूर पर पानी का एक बुदबुदा उठा। शायद कोई छोटी मछली उछली और फिर गायब हो गई। ऊपर उड़ते हुए एक सफेद सी-गल ने पर फैला कर उस पर झपट की। उसका वार खाली गया। वह एक ओर आकाश में ओझल हो गया। ठण्डी हवा का एक झोंका आया। पानी का बुदबुदा छलककर सागर की चौड़ी सतह में समा गया।

★

बहुत देर तक मैं डेक पर रेलिंग के सहारे खड़ा रहा। कभी आसमान के बादलों के परे मैं देखना चाहता। कभी जी चाहता कि सागर की गहराई को खोज डालूँ। कभी दृष्टि किनारे की ढलवाँ पहाड़ियों में अटक जाती। मालूम पड़ता कि पूरे तट की स्थिरता पिघल चुकी है। वह तरल सागर पर तैरता हुआ हमारे जलपोत से होड़ लगा रहा है। यह दौड़ कुछ दूर तक चलती रही, पर जैसे-जैसे हमारी गति तेज हुई हम आगे निकलने लगे। वह वैभव-सम्पन्न नगर हमसे दूर होने लगा। हमसे पीछे रह गया।

बन्दरगाह में बड़े-बड़े जहाज दूर से छोटी नावों-से मालूम होने लगे और फिर ओझल हो गये। किनारे के नारियल के पेड़ों के बिखरे झुंड आपस में पास सिमटने लगे। इमारतें, वृक्ष और पहाड़ियाँ एकाकार हो गईं। मलाया प्रायद्वीप के दक्षिणी सिरे पर बसा हुआ सिंगापुर का द्वीप

दूर, बहुत दूर छुट गया था। अब उसकी सीमा क्षितिज पर केवल रेखा-मात्र रह गई। हमारे चारों ओर केवल जल-ही-जल था। समुद्र का विस्तृत नीला जल-पट, जिसमें अकेला हमारा जहाज। एक अजब अकेलापन मेरे मन में समाने लगा। मैं अपनी केबिन में आकर गद्देदार कुर्सी पर बैठ गया। एक किताब उठाकर पढ़ना चाही। कुछ पन्ने उल्टे-पल्टे पर तबियत न लगी। सिगरेट जलाकर पीने लगा और फिर उसके उठते धुँए से मन बहलाना चाहा। अपनी केबिन की खिड़की के सहारे मैं बैठ गया। उस खिड़की के शीशे के पार, दूर होते हुए किनारे का दृश्य साफ दिखाई देता। वहाँ कुर्सी पर बैठ मैंने अपने शरीर के सब अंग ढीले छोड़ दिये। उस ढीलेपन में न विचारों में नियन्त्रण रहा और न कोई क्रम। बेतरतीब मनोभावनाओं का काफ़िला तेजी से चलने लगा।

यकायक याद आई सिंगापुर और अन्य दक्षिण-पूर्वी एशिया के क्षेत्रों के इतिहास की। कैसे ये भू-भाग, द्वीप और नगर दूसरे विश्व-युद्ध में अधिकार-परिवर्तन के प्रयोग-स्थल बनकर रह गये। कभी एक राष्ट्र उन पर अपना शासन जमाता तो कभी विरोधी देश, मिलकर उनको अपने आधिपत्य में लाते। विशाल सागर खेल का एक मैदान मालूम देता, जहाँ रगबी का खेल हो रहा था और जहाँ शक्ति की कंदुक दोनों ओर जा रही थी। जिधर बल अधिक हुआ उधर ही इन देशों के जीवन-रस के चूसने के साधन जुट गये। जिधर ही लोहे के लोहू पीनेवाले अस्त्र-शस्त्र अधिक संख्या में जमा कर दिये गये उधर ही इस देश का पल्ला झुक गया। किसी दिन सुबह एक द्वीप अंग्रेजों के अधिकार में था—शाम होते-होते जब सूर्य सागर के नीले जल में डूबा तो उसकी लाली इन्सान के लोहू से गाढ़ी हो चुकी थी। भीषण रण के बाद वह सौन्दर्य की निधि विध्वंस हो जापानियों के अधीन हो गई। इस ध्यान

में मग्न मैं खिड़की से और सट गया। मेरी श्वासों से खिड़की के शीशे का कुछ भाग धुँधला हो गया। सिगरेट का धुआँ केबिन में छा गया था। मालूम होने लगा कि मैं रणक्षेत्र में हूँ जहाँ धुआँ और ग़ुबार उठ रहा है। सामने ठीक से कोई भी चीज़ नहीं दिखाई देती। मैंने जलती सिगरेट बुझाकर एक ओर फेंक दी। कमीज के गले की बटनें खोल डालीं, रूमाल से अपने माथे को पोंछा और खिड़की के शीशे को साफ किया।

किताब फिर हाथ में उठा ली और उसका एक पृष्ठ पढ़ गया। पुस्तक में दक्षिण-पूर्वी एशिया के इतिहास की चर्चा थी। इस पृष्ठ में लिखा था कि इस क्षेत्र में सदा व्यापारिक वैमनस्य के कारण यूरोप के देश आपस में संघर्ष करते रहे। अंग्रेज, फ्रेन्च, डच और अमरीका के पूँजीपतियों ने यहाँ व्यापार-वृद्धि करने के बहाने अपने छोटे-बड़े उपनिवेश बनाये। मलाया, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो और इन्डो-चाइना की शस्य श्यामल भूमि पर योरोप के देशों के अधिकार की रेखाएँ खींची गईं। यहाँ से रबर चावल, शक्कर, मसाले और मछली दूर देशों में जाने लगे। यहाँ की लाखों टन श्री-सम्पत्ति संसार के सुदूर कोनों में जाने लगी। व्यापार की सुविधा के लिए बड़े बन्दरगाह बने। समृद्धिशाली नगरों का निर्माण हुआ। इस पृष्ठ को आगे पढ़ने के बजाय मैं इसे दोहराने लगा। कितना सत्य था इस कथन में!

मैंने खिड़की में से देखा कि हमारा जहाज एक माल लादनेवाले जहाज के पास से आगे निकल रहा था। वह सुस्त, भौंड़ा जहाज घोंघे की चाल चल रहा था, सिंगापुर की सम्पत्ति ढोकर मालूम नहीं कहाँ लिये जा रहा था। ऐसे ही जहाजों ने इन देशों को उजाड़ने में कोई कसर नहीं रखी। जी में आया कि बम और गोलियों से उसे इसी जगह डुबो दूँ। शायद इस देश का माल समुद्र की लहरों के सहारे इसी देश

के किनारे जा लगे। फिर ध्यान आया कि मनुष्यता के आदर्श तो पहिले ही जल की अथाह गहराइयों में डूब चुके हैं। अब तो व्यापार के साथ सत्ता के विस्तार का युग है—द्वेश भाव का, संघर्ष का। इसी लिए तो पहिले अंग्रेजों ने और फिर जापानियों ने अपनी पूर्ण शक्ति यहाँ जुटा दी थी। यहाँ अपना अधिकार जमाया था। कितने भीषण युद्ध के बाद जापानी यहाँ से भागे थे, पर भागने के पहिले यहाँ की सम्पदा को अपने देश में पहुँचा दिया था। शेष को नष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। अंग्रेजी और भारत की फौजें यहाँ एक बार फिर उतरीं। उनके साथ अनेक अफसर और सैनिक आये। मैं भी भारत की सेना के साथ आया। भारी बूटों से खट-खट करते हुए हम सिंगापुर के डॉक्स में उतरे थे। कितने लोगों ने गहरी हरी वर्दी पहिने, कतार लगाये, राइफिल लटकाये वहाँ की कोमल हरियाली को रौंद डाला था।

'खट-खट-खट-खट—' मेरी केबिन के दरवाजे पर यही शब्द होने लगा। झटपट उठकर मैंने दरवाजा खोला। देखा कैप्टेन नन्दलाल शाह वर्दी पहिने अपने फौजी बूट के पंजे ऊपर-नीचे उठाकर लकड़ी के फर्श पर खटका रहा था। बूट के तल्लों में लगे लोहे के टुकड़ों और कीलों से खट-खट की हल्की ध्वनि उठती।

मैंने कहा, 'आओ नन्दलाल, बैठो। कैसे हो?'

'बिल्कुल फिट। सौ फीसदी फिट।' अपने रूमाल को दाहिने हाथ में नचाते हुए वह बोला।

'अभी तो कई दिन सफर करना है।'

'हाँ मेजर! सफर तो लम्बा है, मगर मौसम अच्छा है, इस मद-भरी बरसात का।'

'सिंगापुर अच्छी जगह थी। वहाँ मौसम हमेशा अच्छा और वहाँ के

निवासियों के तो क्या कहने !'

'बहुत अच्छे, बहुत अच्छे ! नाचने-गानेवाले । मैं वहाँ की युवतियों के साथ खूब नाचा हूँ मेजर ! सामने लहरों की तरह ।' उसने खिड़की की ओर इशारा किया ।

मैंने देखा, समुद्र की लहरें सचमुच नाच रही थीं, इठला रही थीं ।

★

कैप्टेन नन्दलाल शाह, छरहरे शरीर का सुन्दर युवक था। काले घुँघराले बाल, गेंहुआ रंग, चौड़ा माथा और सीधी सुडौल नाक । उसकी बड़ी आँखों की काली पुतलियों में नशे की-सी खुमारी—एक स्वप्निल झलक—जिसे आँखों के नीचे के हल्के काले घेरे भी नहीं छिपा सके थे । कद लम्बा, चौड़ा वक्ष और सिंह की-सी कमर । उसके शरीर पर फौजी वर्दी खूब फबती। वह अपने काम में सुबह से चुस्ती से जुटा रहता और शाम होते-होते वह चुस्ती मदिरा के जाम में डूबने लगती । वह पीने लगता प्याले पर प्याले । उसकी रगों में तेज खून की जगह मस्त रंगीनी रेंगने लगती । उसके अवयव ढीले-से, निर्जीव-से होने लगते और तब वह कभी मेरे कन्धे का सहारा लेकर कहता, 'मे-ज-र सा-ह-ब, क्या-जिन्दगी-है ! सुबह-से-हड्डी-चूर-करनेवाला-काम ! अब, मैं ज़िन्दा-हो-रहा हूँ । जिन्दगी-निखर-रही है ।'

मैं उसे सँभालकर कुर्सी पर बिठा देता। वह अपनी दोनों बाहों को पास की मेज पर रख लेता । उन पर सर टिकाकर सो जाता—गहरी नींद में ।

बाल-सुलभ क्रीड़ा, अल्हड़पन की निश्चिन्तता, रक्तवाहिनी धमनियों में युवा-शक्ति का स्पन्दन, स्नेह का प्रस्फुटित अंकुर और फिर चिरकाल के लिए मुर्झाया-सा शुष्क जीवन, जिसमें रसभरी बोतलों का मधु कभी मधुमास की हरियाली न ला सका—यह नन्दलाल शाह के इन छब्बीस वर्षों के अनुभव थे । काठियावाड़ के समुद्र-तट के अपने

गाँव में उसने खेल-खेले थे। किनारे पर दौड़ लगाई थी। नाव चलाई थी। मल्लाहों के बच्चों के साथ, बालकपन में, जल में जाल डालकर मछलियाँ पकड़ी थीं। समुद्र के रेतीले तट पर और बालकों के साथ बैठ मोटी रोटी और मोटे चावल, पतली दाल के साथ खाये थे। उसने बताया था कि एक दिन जब एक बड़ी मछली उसके जाल में फँसी थी तो कैसे अपने साथियों के साथ छोटे डण्डे ऊपर उछाल-उछालकर सब नाचे थे, प्रसन्न हुए थे, सबने अपने-अपने घर से रोटी और भात लाकर हिल-मिलकर खाना खाया था। अपने जमींदार बाप के घर से वह फूल की चमकती थाली में खाना लाया था और पीतल के लोटे में पानी! माँझियों के बच्चों ने पत्तों पर रक्खा सब खाना उसी की थाली में डाल दिया था और सब ने उसके चारों ओर बैठकर उँगलियाँ चाट-चाटकर पेट भरा था। सबने चिल्ला-चिल्लाकर कहा था कि 'हम तो नन्दू के लोटे से पानी पीयेंगे।' और सबने अपनी मिट्टी की हाँड़ियों का पानी लोटे में उड़ेल कर बारी-बारी से प्यास बुझाई थी। अपने गाँव में कितना सुख था! सबमें सागर कैसी सहृदयता और एकता—जहाँ सब नदी-नाले एक हो बहते, जहाँ सबका अस्तित्व एक में समाया हुआ।

जब वह कुछ बड़ा हुआ और जब उसके पिता ने उसे गाँव से हटाकर तहसील के स्कूल में भेजा तो वह बहुत रोया। वह रोया और उससे लिपटकर माँझियों के बच्चे भी रोये। सबके धीरज के बाँध टूट गये। स्नेह के गागर फूट गये। प्रेम की अश्रुधारा बह निकली—नन्हें दिलों को निचोड़ती हुई घुली-मिली खारी जलधारा, जिसने सागर के जल को भी खारी कर दिया। अक्सर नन्दलाल शाह मुझसे कहा करता कि शताब्दियों से विकल प्रेमियों की अविरल अश्रुधारा ने ही इतने बड़े समुद्र को खारा कर दिया है। यह कहते-कहते उसमें काठि-

ग्रावाड़ के अपने ग्राम की स्मृति जाग उठती और आँखें डबडबा आतीं।

मालूम नहीं क्यों मैं नन्दलाल शाह के अलबेले स्वभाव से आकर्षित होकर उसका विश्वासपात्र, गहरा मित्र बन गया। हम दोनों सिंगापुर में, भारत की सेना में दूसरे विश्व-युद्ध के बाद गये। वहाँ साथ रहे, साथ घूमे, साथ काम किया और साथ आनन्द लिया। एक दिन मुझसे नहीं रहा गया। मैंने पूछ ही डाला, 'नन्दलाल तुम सम्पन्न परिवार के हो। तुमने अभी तक अपनी शादी क्यों नहीं की। माफ करना, यह सवाल तुम्हारी निजी बातों के बारे में है, पर तुम्हारा मित्र होने के नाते शायद यह सवाल करने का मुझे अधिकार है।'

'मेरे दोस्त! तुम सब-कुछ पूछ सकते हो। मेरे बारे में मेरी जिन्दगी के बारे में। मैं तुमको सब कुछ बता दूँगा।' उसने एक गहरी साँस लेकर कहा। फिर उसने अपने विद्यार्थी जीवन की एक घटना को दुहराया। उसके पिता ने उसे कस्बे के स्कूल से राजकोट के कॉलिज में भेज दिया। उसका मन अपने गाँव में और अपने बचपन के साथियों में उलझा रहता। उसे याद आई अपने परम मित्र 'मटरउआ' की जो अब 'मटरू मल्लाह' हो गया था। उसकी छोटी बहन मेघा—कलाइयों में हाथीदाँत की चूड़ी और पैरों में गिलट के कड़े पहिने अक्सर समुद्र के किनारे खेल के समय आ जाती। मटमैला ऊँचा घाँघरा, टूली ओढ़नी और पैमद लगी पीली कुर्ती, जिस पर रंग-बिरंगे पोत के मोती की माला—यह सब उसके साँवले शरीर पर खूब खिलते। बिखरी लटें हवा से अठखेलियाँ करतीं और उसकी सीप-सी बड़ी आँखों पर छा जातीं। वह गर्दन झटकती। ओढ़नी सर से हट जाती। नन्हें हाथों से अपने बाल बाँधने लगती। सब खेलते और वह नन्हीं-सी, पतली-सी किसी अकेले स्थान में बैठ तमाशा देखती। एक बार नन्दू ने बालू का छोटा घर बनाया, मेघा ने उसे पत्थर और छोटी सीपों से सजाया। नन्दू ने कहा, 'मेघा, हम

दोनों इसमें रहेंगे।' उसने कहा 'हाँ।' पर दूसरे ही क्षण एक तूफान उठा और एक बड़ी लहर उस रेत के घर पर टूट पड़ी, उसे गर्क कर दिया। शायद यह भविष्य के यथार्थ की सूचना थी—दर्द-भरा, दुःख-मय भविष्य—कैप्टेन नन्दलाल शाह कहता।

कस्बे के स्कूल से जब वह छुट्टियों में आता तो मटरू के घर जरूर जाता। मटरू की माँ अपने नन्दू बाबू को पकवान खिलाती। मेघा के बनाये हुए तिल और गुड़ की तिलकुट एक पत्ते पर रखकर वह कहती, 'मेघा कहती है, बाबू को यह तिलकुट खानी ही पड़ेगी।' नन्दू मिठाई खाता, अपने होंठों पर जीभ फेरते हुए उसकी तारीफ करता। कैसा मीठा स्वाद! उसने कहा, 'मेघा तो हलवाई को मात करती है।'—और नन्दू ने देखा कि मेघा के कानों में कर्णफूलों के पास लाली चढ़ने लगी। उसने गर्दन झुकाकर अपनी बड़ी आँखों से नन्दू की ओर एक बार देखकर फिर अपने बड़े पलक नीचे कर लिये।

जब वह राजकोट के कॉलिज से एक बार अपने गाँव आया तो उसने उस माँझी की लड़की में एक अजब परिवर्तन पाया। उसकी सुन्दरता निखरी पड़ती। उसके बड़े-बड़े नयनों में एक अनोखी मादकता। उन नयनों के कोनों में से सहस्रों तीर छूटते। उसके सीने पर उभार और कमर पतली। ऊँचे घाँघरे की जगह एड़ी तक पहुँचनेवाला चुन्नटदार लहँगा और कसी हुई चोली। अपनी ओढ़नी के ऊपर सर पर मछलियों की टोकरी रखे वह किनारे से जानेवाली थी कि नन्दलाल वहाँ पहुँच गया। सागर के नीले जल में सूरज डूब चुका था। सन्ध्या की लाली की दूर वृक्षों के पत्तों से आँखमिचौनी हो रही थी। समीर ठंडी। उसकी लटें फिर उसके साँवले चेहरे से लिपटने लगी। उसने एक हाथ से लटें हटाईं और एक हाथ से टोकरी सँभाली। नन्दू ने देखा, उस लाली में उसके वक्ष पर बल खाती पोत के मोतियों की माला की अनूठी

आभा। कान की ठौडिया (कर्णफूल) की नक्काशी मन पर गहरी नक्काशी किये दे रही थी। नन्दू उसके पास पहुँच गया और बोला, 'मेघा' तू कितनी बड़ी हो गई !'

'हाँ नन्दू बाबू।' उसने सर हिलाकर छोटा-सा उत्तर दिया। उसके चेहरे पर मुस्कान छा गई।

'और तू कितनी भली मालूम देती है ?'

'सच ?'

'और क्या झूठ ? लाओ तेरे सर का बोझ नीचे रखा दूँ।' कहते-कहते मछली से भरी टोकरी नन्दू ने मेघा के सर से उतार ली।

'मेघा !'

वह चुप रही

'मेघा, क्या बहरी हो गई है ?'

'नहीं तो।'

'तू मेरे साथ राजकोट चलेगी ?'

'हूँ !'

'क्यों नहीं साफ-साफ बोलती ? तू मुझे बहुत अच्छी लगती है—बहुत अच्छी।'

नन्दलाल ने उसकी दोनों बाहों को अपने मजबूत हाथों से पकड़ लिया। वह सिमट गई। उसने धीरे से कहा, 'कोई देख लेगा।'

'देख लेने दे, मैं तुझे अपनी रानी बनाऊँगा, तुझ से ब्याह करूँगा।'

'बाबू ! तुम शाह और मैं माँझिन।'

'कुछ परवाह नहीं।'

'तुम भूल जाओगे मुझे।' मेघा की आँखों के कोने सजल हो गये। उसने अपना सर नन्दू के कन्धे पर रख दिया।

दूर एक मल्लाह ने नाव खेते हुए एक तान छेड़ी। मेघा झट से

अपनी ओढ़नी सँभाल, टोकरी उठाकर चल दी। और नन्दू अकेला खड़ा रह गया। सूर्य अस्त हो गया।

किनारे पर दूर एक सारस एक पैर उठाये खड़ा था। नन्दू बहुत देर वहीं अकेला खड़ा रहा—प्रेमाकुल, हताश-सा। पास के रेतीले किनारे को देखकर उसने मन-ही-मन कहा, मैं मेघा से ब्याह करूँगा नहीं तो जीवन-भर क्वाँरा रहूँगा। मेरा इरादा दृढ़ और अमिट है।

अगले साल जब राजकोट आया तो काठियावाड़ की शुष्कता मानों उसके जीवन में समाने लगी। बसन्त की बहार के पहिले ही पतझड़। ऐसा निरन्तर विस्तृत पतझड़ जिसने रसीली डालियों को सूखी टहनियाँ बना डाला। वह चकित खड़ा रह गया—अकेले एक ठूँठ की तरह। उसकी मेघा पराई हो चुकी थी। पोरबन्दर के एक अच्छे माँझी घराने की बहू बन चुकी थी। उसका स्वामी उसे अपनी बड़ी नाव में बिठाकर ले गया था। मटरूआ—उसका पुराना साथी मटरूआ अपनी नाव पर माल लादकर ले जाता। अब वह मटरू मल्लाह था। एक व्यस्त परिश्रमशील मल्लाह जिससे वह बहुत दिनों से मिल भी नहीं पाया था। हर ओर अकेलापन और सूनापन। अपने माँझी मित्रों से बहुत दूर होकर उसे आभास हुआ कि वह नन्दू से बढ़कर नन्दलाल शाह हो गया है। उसकी मेघा उसे धोखा दे गई। पर वह अपने प्रण पर अटल रहेगा। वह धोखा नहीं देगा क्योंकि अब वह नन्दलाल शाह था। घरवालों ने उसके विवाह की कई जगह बात चलाई, पर वह राज़ी न हुआ। क्वाँरा रहने का उसका प्रण अडिग था।

कॉलिज की पढ़ाई का क्रम भी टूट गया, क्योंकि उसे भारत की सेना में कमीशन मिल गया। अपने गाँव से, अपने परिवार से, अपने काठियावाड़ से दूर—बहुत दूर वह होता चला गया। जिस रेतीले पथरीले तट से उसके प्रण को दृढ़ता मिलती थी उसी की तरह वह उसका टूटा हुआ,

लुढ़कता हुआ, सूखा पत्थर बन गया। पास के सागर की तरंगें भी उसके अन्तर को गीला न कर सकीं।

वह द्वितीय विश्व-युद्ध में उत्तरी अफ्रीका के रेगिस्तानों में जर्मन सेना से डटकर लड़ा। जर्मन फ़ौजों के पीछे हटने पर मिस्र की हरियाली में आया। क़ाहिरा में रहा। वहाँ से वापस आकर भारत में रहा और युद्ध समाप्त होने पर मलाया भेज दिया गया। क़ाहिरा के क्लबों में, सिंगापुर की नृत्यशालाओं में अनेकों रमणियों के साथ वह नाचा था। वह मेघा के सौन्दर्य को उनमें खोज रहा था लेकिन उस स्निग्ध सौन्दर्य, उस निर्मल सौम्य के कहीं दर्शन नहीं हुए। अतः अपने विषाद को वह बोतल की रंगीनी में घोलता रहता। अतीत को भुलाने के, डुबोने के प्रयत्न में।

*

शाम धुँधली हो चली थी पर रात का अँधेरा अभी क्षितिज में ही छिपा था। सागर की लहरें नीचे जहाज में थपेड़े मार रही थीं, मगर ऊपर डेक पर शीतल मन्द बयार बह रही थी। कैप्टेन नन्दलाल शाह और मैं चाय पी रहे थे। वह कहने लगा, 'मेजर! यह चाय मेरे खुश्क गले को तर नहीं कर पाती। मुझे तो कोई और गहरी चीज़ चाहिए—रंगीन और रसीली।'

मैंने हँस कर उत्तर दिया, 'रेगिस्तान को कौन तर कर सकता है? तुम सहारा के सूखे मरुस्थल के समान हो। सारे समुद्र भी मिलकर तुम को हरा नहीं कर पायेंगे।'

'ऐसा नहीं है मेजर! मैंने सिंगापुर के गीलेपन में अपने को भुला दिया।'

'पर फिर भी तुम्हारी प्यास न बुझी।'

'प्यास कैसे बुझ सकती थी! अगर वह बुझ जाती तब तो ज़िन्दगी

ख़त्म हो जाती । मेजर ! सिंगापुर के लोग कितने मस्त हैं ! उनकी मस्ती मैंने 'न्यू वर्ल्ड' (New World) और 'ग्रेट वर्ल्ड'(Great World) के 'कैबरे' (Cabaret) में,देखी है । क्या रंग-बिरंगे वस्त्रों को पहिनकर वहाँ की युवतियाँ नाचती हैं ! मोरपंख-जैसे रंगीन आवरण और हंसिनी की-सी मदभरी चाल । वाह रे सिंगापुर !'

'सचमुच वहाँ का नृत्य मन को मोहनेवाला और वहाँ के वाद्य यन्त्रों के खिंचे तार मन को खींचनेवाले ।' मैंने उत्तर दिया, 'इसी लिए संसार के सब देशवासी वहाँ के संगीत की प्रशंसा करते हैं ।'

'प्रशंसा करने की बात तो दूर रही, मैं तो वहीं रम जाना चाहता था । कितना सुन्दर हरा-भरा देश ! कैसी लचीली, रंग-भरी, रस-भरी क़ूकती-थिरकती सुन्दरियाँ ।' उसने मेरा दाहिना हाथ धीरे से दबाते हुए कहा । कैप्टेन नन्दलाल की आँखें अपने चारों ओर के काले घेरे में से चमक रही थीं ।

'अंग्रेज और जापानी दोनों इन द्वीप और प्रायद्वीप को छोड़ते समय बहुत दुःखी हुए थे । इसलिए नहीं कि यहाँ की नर्तकियाँ उनसे छूटी जा रही थीं । बल्कि उनके अधिकार की सीमाएँ घट रही थीं । तुम भी नन्दलाल ! किस क्षणिक विलास के चक्कर में पड़े हो ।' मैंने कहा।

नन्दलाल शाह यह सुनकर किसी विचार में मग्न हो गया । माचिस की एक तीली से वह अपने दाँतों को कुरेदने लगा। उसके माथे पर कई सिलवटें पड़ गईं । कुछ देर चुप रहकर वह बोला, 'मेरे मित्र ! मैं विलासी नहीं हूँ । मुझे भी अपना देश प्यारा है । तुम सब-कुछ जानते हो । मैं सूखे देश का रहनेवाला नमी चाहता हूँ; तरी चाहता हूँ ! जहाँ मन को तर करनेवाली चीजें मिलती हैं वहाँ की मैं प्रशंसा करने लगता हूँ । तुमसे बातें करने से मुझे राहत मिलती है इसी लिए मैं तुम्हारी तारीफ़ करता हूँ । कितने नेक और अच्छे हो तुम मेरे दोस्त !।'

'तुम भी तो भारत की सेना के एक कर्मठ और अनुभवी अफ़सर हो नन्दलाल शाह।' मैंने उसकी सराहना की।

हम दोनों बहुत देर तक मलाया और वहाँ के देशवासियों के बारे में बातें करते रहे। कैसे घोर संकट में भी वे हँसते-खेलते निश्चिन्त रहे। घर-द्वार विध्वंस हो जाने पर भी उन्होंने शोक प्रकट नहीं किया। उनके तरल संगीत ने उनकी कर्तव्यनिष्ठा को दृढ़ता प्रदान की। उस देश के विस्तृत हरे मैदान और चौड़ी सड़कें युद्ध स्थलबन गये, जहाँ लाल रक्त की धाराएँ बह निकलीं। सिंगापुर की 'बुकिट-टीमा' रोड का दृश्य आँखों के आगे नाचने लगा। मलाया जानेवाली इस सड़क पर ही तो अँग्रेजों ने जापानियों के आगे हथियार डाले थे। यह सड़क युद्ध के इतिहास में कितनी महत्त्वपूर्ण हो चुकी थी!

मुझे याद आई कि विश्व-युद्ध में कैसे इस क्षेत्र के द्वीप और प्रायद्वीप अँग्रेजों और अमरीका की शक्ति के स्तम्भ बन गये थे। पर जब जापानी सेनाएँ आगे बढ़ने लगीं और उनकी विरोधी सेनाओं का ह्रास होने लगा तो यही द्वीप और प्रायद्वीप जापानियों के प्रभुत्व के प्रहरी हो गये। संसार में यही भू-भाग ऐसा था जहाँ विश्व की श्वेत, पीली और काली जातियों ने अपने कारनामें यहाँ की हरी वसुन्धरा पर अंकित कर दिये। पर वाह रे यह देश, और यहाँ के देशवासी! घोर संकट-काल में भी वह हँसते-खेलते मस्त रहे और यहाँ आनेवालों को विभोर करते रहे। सभी विदेशी, जिन्होंने यहाँ की पुण्य भूमि पर पग रक्खे, मन्त्र-मुग्ध-से होकर रहे। सब पर यहाँ के उच्च सांस्कृतिक विकास का सिक्का जम गया। क्या इंगलैण्ड, क्या अमरीका के निवासी और क्या जापानी—सबने इस देश को छोड़ते समय कलेजा थामा। सब यहाँ की रसीली, रंगीनी निश्चिन्तता पर मुग्ध होकर गये। आज यही स्थिति हम लोगों की भी थी।

सिंगापुर बहुत पीछे छुट गया था लेकिन मैं और कैप्टेन नन्दलाल शाह सिंगापुर के रसमय जीवन की चुस्कियाँ ले रहे थे। पर अब अन्धेरा गहरा हो गया था। जहाज़ तेजी से चल रहा था। इस अन्धकार और गति के प्रदेश में से टूटकर हमारी स्मृतियाँ सागर की व्यग्रता में डूबने लगीं।

२

हमारा जहाज कुछ मनचले सम्पन्न यात्रियों के संसार-भ्रमण का साधन नहीं था, जहाँ सन्ध्या होते ही खेल-तमाशे और रास-रंग होने लगते। जहाँ लोग मदहोश हो लड़खड़ाते पैरों पर नाचने लगते। जहाँ मदिरा की बोतलें खाली कर समुद्र में फेंककर लोग लहरों पर उनका उतराना देखकर अपनी रगों में भरी रंगीनी में तैरने लगते। न यहाँ रमणियाँ थीं और न उनके सौन्दर्य के पुजारी। न कोई अलबेली नायिका और न कोई तड़पता विदग्ध-मन नायक।

यह माल लादने का विशालकाय, मन्दगति जलपोत भी नहीं था जहाँ नाविक थककर अन्यमनस्क हो एक कोने में बैठ जाते। कभी कोई थका हुआ चालक एक सिरे पर अकेला बैठा हुआ किसी गीत की टूटी कड़ियाँ गुनगुनाने लगता और फिर अपनी सिगरेट का कश खींचकर चुप हो जाता। जहाँ न कोई कौतूहल और न कोई रंगरेलियाँ। जहाँ अँधेरा होते ही सूनेपन का पर्दा गहरा-सा होता जाता।

यह सामुद्रिक सेना का शस्त्र सुसज्जित, तीव्र गति का जहाज था। यहाँ हर ओर चमक-दमक, चुस्ती और तेजी, तरतीब और अनुशासन। हम सब यात्री भारत की सेना के वे दस्ते थे जो द्वितीय विश्व-युद्ध के समाप्त होने पर अगस्त १९४६ में जापान को जा रहे थे। सिंगापुर में भारत

की सेना में से छाँटकर यह दस्ते बने थे—कर्मशील, दिलेर और चुस्त सैनिकों के। अमरीका और अँग्रेज़ों की सेना के साथ हम जापान को अपने आधिपत्य में करेंगे, वहाँ हमारा मान होगा, लोगों पर रोबदाब होगा, वह देश हमारे बूटों के नीचे होगा, यही भावना सब लोगों के दिलों में समाई थी। सबके व्यक्तित्व उन्मत्तता के छलकते पात्र में जैसे घुले हों। सब एकता की अटूट डोर में बँधे हों। सब में जोश और खरोश। आँखों में खुशी की चमक और मन में विजय का दर्प। सब में भविष्य के सुखद स्वप्नों की लालसा।

गुरखा राइफ़िल्स का हवलदार नाकिन गुरंग अपने नाटेपन की कसर गर्व से सीना फुलाकर निकाल रहा था। मराठा पल्टन के नायक नरसिंहराव की कमर ऐंठ में ऐंठी रह गई थी। राजपूत रेजीमेंट का लान्स नायक हिम्मतसिंह अकड़ में सीधा रह गया था और मद्रासी यूनिट का सैनिक गोपालस्वामी नायडू अपनी फूल-सी हँसी को अपने काले होंठ और श्वेत दन्त-पंक्ति से दबाकर गम्भीरता की मुद्रा में परिणत करना चाहता।

'इक....दो....इक....दो....इक....दो'

रोज सवेरे हवलदार अपने भारी गले की आवाज को दाँत भींचकर सुरीली-सी कर पी० टी० कराता। उसके शब्द पर सबकी भुजाएँ ऊपर-नीचे उठतीं-गिरतीं, टाँगें इधर-उधर उछलतीं। डेक पर कसरतें होतीं। उछल कूद होती।

जब वर्दी पहिनकर जवान जमा होते तो वही भर्राई-सी गरजती-सी आवाज उठती, 'जवानो! ज़ापान में सब चुस्ती और मुस्तैदी से रहो। वहाँ के लोगों से न दोस्ती और न दुश्मनी। उनसे दूर रहते हुए उन पर रोब-दाब का ऐसा असर डालो जिससे हमारी फ़तेह का उनको गुमान हो। हमने जंग जीता है। वे हारे हैं।'

यह सब समझाकर जवानों को नियन्त्रण में बाँधा जाता। जापा-

नियों को हेच और अपने को उच्च बनाया जाता। सबको भविष्य के कर्त्तव्यों का भास कराया जाता।

दिन ढलते-ढलते नियन्त्रण की शृंखलाएँ भी ढीली पड़ने लगतीं। जीवन की कठोरता में रसमय संगीत उभरने लगता। सब डैक पर साथ बैठकर संगीत में मस्त हो जाते। कभी राग छिड़ता :

'काहे....मोय....छेड़ौ....रे....नन्दलाल....उमरिया....मोरी बारी....रे....'

और फिर कोई फाग गाता :

'फागुन....की....ऋतु....आई....रे....फिर बाजे....बँसुरिया....हो....बाजे....बँसुरिया....'

ढोलक की गमक के साथ मथुरा वृन्दावन का फाग जमता।

कभी हाथ हिला-हिलाकर गानेवाले यह कहकर उछल पड़ते : 'खट....खट....खट....खट....तेगा बोले....छपक....छपक बोले तलवार....' और तब बुन्देलखण्ड के आल्हा से दिल बल्लियों उछलने लगता।

किसी दिन पंजाबी गानों की बल खाती तान, तो किसी दिन पहाड़ी लोक-गीत की लहराती मधुर लय।

जिस दिन सबके गले खुश्क होते उस दिन किस्से-कहानी कहे जाते, युद्ध के अनुभव दुहराये जाते।

किसी शाम को जब सूर्य का लाल गोला समुद्र की हिलती-डुलती सिलवटों में समाने लगता तो मालूम होता कि महान् प्रशान्त महासागर सचमुच शान्त है। ठण्डी समीर इठलाती; जवानों के दिलों को गुद-गुदाती। जब नीचे समुद्र शान्त होता तो जहाज पर मस्ती का सागर लहराता।

★

अन्धेरी रात में यदि आकाश स्वच्छ हो तो तारिकाओं का झिल-

मिलाना और उनका प्रकम्पित जल-पट में से झाँकना शायद ऐसा मनोहारी दृश्य है जिसके अनूठेपन के आगे धवल ज्योत्सना भी फीकी पड़ जाती है। ऐसी ही वह शाम थी। धुँधलापन मानो ऊपर शत-शत जुगनुओं से मढ़ी कालिमा को उठकर छू लेना चाहता हो। उधर दूर अकेला ध्रुव तारा चमक रहा था। मेरी दृष्टि उसी पर अटक गई। कितना ज्योतिर्मय वह था। पास के और तारों से कितना बड़ा, कितना भिन्न ! लोगों का पथ-प्रदर्शक !

मुझे ध्यान आ गया हवलदार मेजर गुरुदयालसिंह का, जो हमारी कम्पनी का निर्देशक था....उसको ध्रुव तारा ही समझिए। डील-डौल में सबसे लम्बा-चौड़ा, भारी बदनवाला वह सिक्ख, जिसकी बाह्य कठोरता उसके कोमल अन्तर को छिपाये रहती। हमारी कम्पनी के अनुशासन और कर्त्तव्य-निष्ठा की उसी पर जिम्मेवारी थी, जिसको वह खूब निभा रहा था। उसकी घनी दाढ़ी-मूँछ और बदली हुई त्यौरी वह काम कर देती जो शायद अँग्रेज़ी फ़ौज का सार्जेण्ट मेजर अपना पूरा गला फाड़ के चिल्लाने से भी नहीं करा पाता था। हवलदार मेजर की चढ़ी भृकुटी के आगे सैनिक भेड़ के बच्चे बन जाते। उसे बहुत कम गुर्राना पड़ता, क्योंकि उसके इशारे-मात्र से ही जवान थर्रा जाते।

गुरुदयालसिंह की सहानुभूति भी सैनिकों को उतनी ही सहज थी, जितनी उसकी वक्र-दृष्टि। क्षण-भर में ज़हरीली आँखों में अमृत-सा घुलने लगता। टेढ़ेपन में लचीली कोमलता प्रकट हो जाती। जब कोई जवान मुसीबत में पड़ जाता, हवलदार मेजर की मजबूत भुजाएँ उसका उद्धार कर देतीं। बायें नथने के पास का उठा हुआ मसा उसके मनोभावों का परिचायक था। जब वह फैलते नथनों के साथ ऊपर-नीचे होता तब कम्पनीवाले समझते कि हवलदार मेजर के मिजाज में भूचाल आनेवाला है। पर जब वह गालों की रेखा के चौड़ेपन में आधा

छिप जाता तब जवान समझते, अब अमृत-वृष्टि होगी।

'मेजर साहब ! मेरी कम्पनी हमेशा सबसे आगे रही है और रहेगी। जापान में भी ऐसा काम करेगी जिससे हम लोगों का नाम वहाँ अमर रहे।' वह कभी मुझसे कहता।

'क्यों नहीं। जरूर। यह तो कम्पनी के हवलदार मेजर पर निर्भर है।' मैं जवाब देता।

वह कुछ खुश होकर, कुछ झेंपते हुए मुस्करा देता—'आपकी मेहरबानी साहब।' इसके आगे वह और कुछ न कह सकता। कम्पनी के जवानों के लिए रौद्र-रूप सिंह इस समय किशोर-सा शरमीला लगता।

गुरुदयालसिंह ने मुझे सुनाये थे सेना में भर्ती के समय के अनुभव। उसके पहिले अपने ग्रामीण परिवार में उठती विप्लव की वेदना के बारे में। वह रावी नदी के किनारे गुरुदासपुर जिले के ग्राम का निवासी था, जहाँ लोग अधिकतर खेती करते। मवेशी रखते। दूध, मट्ठा, और लस्सी पीते और कसरत करते। वह अपने बड़े भाई के साथ हिलमिलकर रहता। दोनो जुटकर खेत में काम करते। भाई कहता, 'ओये! दयाल, अब तू ही सब काम सँभाल। मेरी तो शादी होनेवाली है।' और वह आँखें बन्द कर अपनी दुलहिन के स्वप्न देखने लगता। गुरुदयाल हँसकर काम में लग जाता। उसके भाई का सपना सच्चा हो गया। दूसरे गाँव से वह शादी कर लाया। पर गुरुदयाल काम करते-करते स्वप्न के संसार में उतर गया। अचानक गाँव के एक सरदार ने अपनी जवान बेटी की गाँठ उससे बाँध दी। 'दोनों की जोड़ी अच्छी बनेगी....खूब बनेगी।' कहते-कहते सरदारिनी और गाँव की औरतों ने गुरुदयाल का ब्याह रचा डाला। उसकी घरवाली अच्छी निकली, मेहनत करनेवाली, भैंस का दूध काढ़नेवाली। पर भाभी तो टेढ़ी थी....तलवार की-सी टेढ़ी और पैनी। वह काम के वक्त आराम करती, और आराम के समय

खरी-खोटी बातें उगलती। गाँव में चार जगह बैठ घर की चर्चा करती, घर की बुराई करती। देवरानी की जब तबीयत खराब रहने लगी, जब यह जाना कि वह माँ बनने को है तो जिठानी के मिजाज का पारा और ऊपर चढ़ गया। उसका सर भिन्नाने लगा क्योंकि वह अभी निपूती थी। तरह-तरह की गालियाँ और अपशब्द उसने बकना शुरू किया। शायद वह सब श्राप गुरुदयाल की सरदारिनी को ऐसे लगे कि बच्चा होते समय वह और नवजात शिशु दोनो इस संसार से चल बसे। गुरुदयाल का सुख-स्वप्न विनष्ट हो गया। वह अपना माथा ठोककर रह गया। उसकी भाभी निपूती की निपूती रही।

एक साँझ गुरुदयालसिंह कन्धे पर हल रखे घर आया। उसकी तबीयत कुछ गिरी-गिरी-सी थी। बैठक में बैठते हुए भाभी से एक गिलास ठण्डी लस्सी माँगी। उसके बदले गरम गालियों की मटकी उँडेलते हुए वह तड़पकर कहने लगी, 'भैंसों का कुछ काम भी करते हो या माल ही खाना चाहते हो !'

'कैसे बात करती हो भाभी ?' गुरुदयाल ने पूछा।

'तेरे ऐसी मीठी कटारी चलानी मुझे नहीं आती। जो मेरे मन में है वह कह देती हूँ। सच तो है, हराम का खा-खाकर मोटा हो रहा है।' वह बोली।

गुरुदयाल का माथा तमतमा गया। फिर भी गुस्सा रोककर उसने कहा, 'क्यों बिगड़ती हो ? मैं यहाँ से चला जाऊँगा। सिर्फ़ भैया की मदद को यहाँ रहता हूँ।'

'बड़ा भैया का दास बना है। भैया, भैया, भैया, बड़ा भैयावाला आया है। सारी खेती सत्यानाश कर दी तूने, अब भैया को पूरी तरह बरबाद करना बाक़ी है।'

इतने में भैया घर से निकल आया। उसने बीच-बचाव करना

चाहा, पर भाभी उस पर भी उफन पड़ी। वह कुछ न बोल सका। गुरुदयालसिंह ने उठकर भैया के पैर छुए और अपनी गठरी उठा घर से निकल पड़ा।

अमृतसर आकर उसने सिक्खों के स्वर्ण मन्दिर में शपथ ली कि अब कभी भी घर वापस नहीं जायगा। वह दूसरे ही दिन भर्ती के दफ्तर जाकर फ़ौज में भर्ती हो गया। तब से वह घर नहीं गया और न वहाँ कभी भी जाने का उसका विचार है।

'फ़ौज ही मेरी जिन्दगी है। यही मेरा घर है।' वह अक्सर कह देता। 'जंग में दुश्मन मैंने बहुत देखे पर घर के दुश्मन से भगवान बचाये।'

★

तीसरे पहर से ही दिन ढलता मालूम हो रहा था। घटा घिरी थी और बरसात की फुहार पड़ रही थी। ठण्डी हवा की हिलोरों ने नन्दलाल शाह के रूखे बालों को बिखेर दिया था। उसकी आँखों के नीचे के घेरे और काले मालूम होने लगे। हम दोनो डेक पर एक ओर बैठे थे। उसने अपनी कमीज की बटन को अपने दाहिने हाथ के अँगूठे और बीच की बड़ी उँगली से घुमाते हुए कहा, 'मेजर! आप तो इस भाग के देशों में खूब घूमे हैं।'

'हाँ, मैंने यहाँ के द्वीप और प्रायद्वीप का भ्रमण किया है। छुट्टी लेकर मैं दूर-दूर जा चुका हूँ।'

'यहाँ के लोग कैसे हैं? इन द्वीपों में कौन-सी अच्छी जगह देखने की है?'

'तुमको क्या-क्या बताऊँ नन्दलाल। यह भू-भाग, जो इण्डोनेशिया कहलाता है कला का भण्डार है। मैंने यहाँ का इतिहास पढ़ा है। यहाँ की पुरानी सभ्यता के केन्द्र देखे हैं, यहाँ के लोगों से मिला हूँ। वे

कितने निश्चिन्त और प्रसन्न।' मैंने सिगरेट का धुआँ उड़ाते हुए कहा। मेरे मस्तिष्क में एक निमिष जावा के बोरोबुदूर (Borobudur) में बनी पत्थर की प्रतिमाएँ उभरने लगीं, वे प्रतिमाएँ जो अपना सानी नहीं रखतीं। जो गौतम बुद्ध की कोमल वाणी को पत्थर में अंकित कर अमर किये हैं। कैसी भगवान बुद्ध के गौरव और सत्य की ये अमल मूर्तियाँ! उनके आदर्शों के ये सफल रूप। उनके आदेशों के प्रचार के यह दृढ़ साधन !

'मेजर, इण्डोनेशिया का इण्डिया से शायद कोई सम्बन्ध रहा होगा।' नन्दलाल की इस बात से मेरा ध्यान टूटा ।

'नन्दलाल, बड़ा पुराना और गहरा सम्बन्ध है यह, इस सागर से भी गहरा। इस सम्बन्ध को जानने के लिए यहाँ की सभ्यता के बारे में जानो। यहाँ की भाषा को सुनो और यहाँ के नाच और रास-रंग देखो।'

'सच ? क्या आप सच कहते हैं ?' नन्दलाल के चेहरे पर नाच की बात सुनकर मुस्कान छा गई।

'और क्या झूठ ! मध्य जावा में जोगजकार्ता में जाकर देखो, बोरो-बुदूर में देखो। गौतम बुद्ध की, पत्थर में बनी प्रतिमाएँ, वैसी ही हैं जैसी भारत में। वही शान्ति की मुद्रा। लोगों की बोलचाल में बहुत-से शब्द संस्कृत भाषा से मिलते-जुलते। और नाच बिल्कुल कथाकाली नृत्य-जैसा। तुम तो नाच-गाने में मस्त रहनेवाले हो।

नन्दलाल शाह कुछ झेंपते हुए कहने लगा, 'नाच-रंग की तो मेरी कमजोरी है मेजर। मगर जावा के नाच की खूबी के बारे में तो कहो। क्या यहाँ भी रँगीली युवतियाँ वैसे ही इठलाती हैं जैसे सिंगापुर में ?'

यहाँ का नाच देखकर तुम ऋषि-मुनि बन जाओगे नन्दलाल। लोग कितना अच्छा अभिनय करते हैं, महाभारत और रामायण के दृश्य

के। अर्जुन, युधिष्ठिर, राम, सीता और लक्ष्मण का रूप ऐसा दिखाते हैं जो अपने देश की रामलीला से भी बढ़े-चढ़े। पुराना इतिहास आँखों के आगे झूलने लगता है।'

'यहाँ की बातें तो बड़ी दिलचस्प हैं। शायद अपने देश से कुछ लोग कभी जरूर यहाँ आये होंगे ?'

इस देश के अमर इतिहास की रेखाएँ मानो उस शाम की उठती घटाओं को चीरकर स्पष्ट होने लगीं, अचानक बिजली कड़की। क्षणिक ज्योति की टेढ़ी-मेढ़ी दरारों में से मैंने देखा—अम्बर पर लदी युग-युग की कालिमा के पार उसका अन्तर। फिर ऐसा लगा मानो हमारा जहाज अधिक जोर से डगमगा रहा है। मैंने क्षितिज की ओर इशारा करते नन्दलाल से कहा, 'इस पुराने आकाश ने शायद देखा होगा, ईसा के बाद पहिली से लेकर पाँचवीं शताब्दी तक कुछ भारत के व्यापारियों को यहाँ आते। वे बोर्नियो, सुमात्रा और जावा में बस गये। वहाँ राज्य स्थापित किये। सुमात्रा में तो उड़ीसा से आये हुए शैलेन्द्र वंश के राजाओं ने राज्य किया। इस डगमगाते जहाज की तरह प्राचीन काल के जीर्ण जलपोतों ने व्यापारियों की सामग्री के साथ-साथ बुद्ध-धर्म के विचार भी यहीं उतार दिये। मैंने पढ़ा है, ऐसे ही दो व्यापारियों के बारे में जिनके नाम त्रपूसो और भल्लिक थे। उड़ीसा के रहनेवाले, ये बैल-गाड़ी में जा रहे थे। यह दन्तकथा है कि बोधिवृक्ष के नीचे पहुँचकर इनकी बैलगाड़ी के पहिये स्वतः ही रुक गये और बैलों ने आगे चलना बन्द कर दिया। पर जावा में आने पर बुद्ध-धर्म के प्रचार का चक्र इनके द्वारा खूब चला। लोगों ने बोरोबुदूर में गौतम बुद्ध का विशाल स्तूप बना डाला। इस धर्म की व्यापकता और दृढ़ता का परिचायक।'

'कैसा अचरज है ? जहाँ गौतम बुद्ध का शान्ति और एकता का सन्देश लोगों को मिला वहीं भीषण द्वितीय विश्व-युद्ध हुआ, जिसमें हम

सब ने हिस्सा लिया। मैं भी वह स्तूप देखना चाहता हूँ।' कैप्टेन नन्द-लाल शाह ने एक दार्शनिक की भाँति कहा।

'वह देखने की चीज भी है। विश्व-युद्ध के बाद विश्व-शान्ति का प्रचार वहीं से होगा। मनुष्यता के पुराने सिद्धान्त उसी पुरातन दृढ़ स्तूप से प्रसारित होंगे।' मैंने उत्तर दिया।

उस स्तूप की विशालता मेरी आँखों के आगे सजीव होने लगी, फैलने लगी। पत्थर के मजबूत पुश्तों पर उठता हुआ, ऊँचे ज्वालामुखी पहाड़ों के दामन में जैसे वह बुद्ध के महामन्त्रों को जगा रहा हो। पर नश्वरता ने उसे भी अछूता नहीं छोड़ा। जगह-जगह दीवालों पर मोटी काई की सतह जमकर स्थिर-सी हो गई। कुछ भाग फूलकर बाहर झुकने लगे। सीढ़ियाँ चटकने लगीं। फूटे हुए भागों पर घास और जंगली बेलें जमने लगीं। फिर ध्यान गया गौतम बुद्ध के जीवन के उन दृष्टान्तों की ओर जो अब भी इस जीर्णता में कोमल और दृढ़ बने हैं। सिद्धार्थ का यशोधरा को प्राप्त करने के लिए धनुष-बाण की प्रतियोगिता में भाग लेना, उनका संसार के सुख और ऐश्वर्य त्यागने का दृश्य, और उनका सुजाता से व्रत के पश्चात दूध और चावल ग्रहण करने के समय की पत्थर में अंकित प्रतिमाएँ, एक-एक कर प्रत्यक्ष मूर्तिमान-सी होने लगीं।

सामने ऊपर घटा छँटने लगी थी। पश्चिम दिशा में सूर्य झाँकने लगा था और पूर्व की ओर आकाश में इन्द्रधनुष का बड़ा अर्द्ध गोला-कार रंग भर रहा था। मैंने नन्दलाल से कहा, 'देखो आकाश में इन सतरंगों को। जावा में भी स्त्रियाँ ऐसे ही रंग-बिरंगे वस्त्र पहिनती हैं। हाथ के बने गहरे रंग के "केन" (एक तरह का घाँघरा), "कबाजा" (एक तरह की जाकेट) और, "स्तागन" (एक तरह की पेटी)।'

'मैं भी किसी दिन ये देश देखूँगा—कैसे रंगीन और कैसे मन-मोहक!' नन्दलाल बच्चों की तरह कहने लगा।

३

जीवन के उन क्षणों में भी कैसी मधुरता है जब समय की द्रुत-गामी गति का उल्लंघन कर मन बीती हुई अनुभूतियों की झाँकी लेने लगता है। धुँधले, भूले हुए स्वप्नों को संजीव करना चाहता है। पथिक का आँचल जैसे मग के कण्टकों में फिर-फिर ऐसे उलझ जाय कि बर-बस उसे मुड़कर बारम्बार देखना पड़ता हो। वह अपने पीछे छुटे हुए पद-चिन्हों को ढूँढ़ने लगता है। आयु के पलों के बीतने पर हृदय की उत्कण्ठा बिछुड़ी हुई मंजिल पर पहुँचने की होती है। जिन्दगी के पत-झड़ में बसन्त के रंग-बिरगे प्रसून प्रस्फुटित करने की इच्छा, और ढलती सन्ध्या में ऊषा की लाली समाविष्ट कर डालने की आतुरता उभरती है। संसार के कठोर यथार्थ में आदर्शों के सुखद स्वप्न कोमल रेशमी धागों में आन्दोलित होने लगते हैं। यह भावना कवियों में ही नहीं होती, वरन् युद्ध-स्थल में घोर संघर्ष करनेवाले सैनिकों के शुष्क जीवन में भी कभी फूट पड़ती है। शायद यही मानसिक स्थिति उस समय हवलदार मेजर गुरुदयालसिंह की रही हो जब वह उस शाम अपने अनुभवों को दोहरा रहा था। वे सच्चे और ठोस अनुभव जो सिंगापुर के रणस्थल में उसे प्राप्त हुए थे। उसने कहा, 'सिंगापुर के जंग की कहानी दिलचस्प भी है और भयानक भी।' उसका चेहरा सचमुच भयानक बन गया। आँखों के लाल डोरों में रक्त चढ़ आया। दाढ़ी के बाल भालों की नोकों की तरह खड़े होने लगे। मुख की आकृति गम्भीर हो गई और दाँत पीसकर वह बोला, 'मैंने इस मुल्क की चप्पा-चप्पा जमीन देखी है। यहाँ जापा-नियों के आगे बढ़ते मजबूत कदम देखे हैं और खदेड़े जाने पर उनकी काँपती हुई, भागती हुई टाँगें भी। कैसे वे जंगलों और पहाड़ियों में लुकते-छिपते पीछे हटते चले गये।'

'हमको बताइए सिंगापुर हमारे हाथ से कैसे निकल गया ?' किसी ने प्रश्न किया ।

'हाँ । हाँ । मैं तुमको बताऊँगा ।' गुरुदयालसिंह ने अपने बाएँ हाथ की उँगलियों से मूँछों को मरोड़ते हुए कहा, 'सिंगापुर के जंग में बड़े-बड़े अँग्रेज़ जनरलों के दिमाग चकरा गये, फिर हम सिपाहियों का क्या कहना ! वह हमारे जंगी जहाजों का बड़ा अड्डा था । बहरूनी फ़ौज की पनडुब्बियाँ दूर-दूर तक गश्त करतीं । पैदल फ़ौजें इस ज़जीरे की सरहद पर पहरा देतीं । जगह-जगह बड़ी तोपें मुँह निकाले दुश्मन पर गोले बरसाने को तैयार ।'

'फिर भी जापानी वहाँ घुस आये । हमको मात दे दिया ?' प्रश्न करनेवाले ने कहा ।

'जंग भी शतरंज है । पहिली बाज़ी में हम मात खा गये, मगर दूसरी बाज़ी में हमने जापानियों को ऐसी किश्त दी कि फिर वह कोई चाल न चल सके । उनको भागना ही पड़ा ।'

'हाँ ! यह बात तो ठीक है, पर हमारा भी तो नुकसान बहुत हुआ । पहिले वहाँ से हार के आने में और फिर फतह करके वहाँ जाने में ।' उसने कहा ।

'तुम तो बनिये के बेटे मालूम होते हो जो इतना हिसाब फैलाते हो ।' गुरुदयालसिंह झल्लाकर बोला, 'अगर तुम सिंगापुर के जनरल होते तो तुमको भी वहाँ से हटना पड़ता ।'

'मैं नहीं हटता ।' उसने ज़िद की ।

'तभी तो तुम सिपाही के सिपाही ही रह गये । दूर की बात सोचने के लिए जनरलों का दिमाग चाहिए । वह तुममें कहाँ है ?'

'हवलदार मेजर साहब ! आप नाराज हो गये । मैं माफ़ी चाहता हूँ ।'

'छोड़ो इन झंझटों को। असली बात बोलो गुरुदयालसिंह।' कैप्टेन नन्दलाल शाह ने समझाकर कहा।

'हाँ। तो सिंगापुर में बड़ी फौलादी तोपें ईंट और पत्थर के मजबूत मोर्चों में मुस्तकिल तौर पर जमाकर लगा दी गई थीं। अंग्रेज़ जनरलों ने अपनी समझ में बहुत कड़ी नाकाबन्दी की थी, पर वह कारगर साबित नहीं हुई।'

'यह कैसे ?' एक नायक ने अचम्भे में प्रश्न किया।

गुरुदयालसिंह ने अपना साफा सम्भाला, आँखें सिकोड़ लीं। उसके माथे पर कई सिलवटें पड़ गईं। मालूम होने लगा जैसे वह बीते हुए क्षणों में छिपा कोई सत्य अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से खोज निकालेगा। वह कहने लगा, 'वे बड़ी तोपें सिर्फ समुद्र की ओर निशान लगा सकती थीं। यह मजबूती फौजी कमजोरी बन गई। जापानियों को यहाँ का सब पता था। इसी लिए उन्होंने उत्तरी मलाया पर पहिले कब्जा कर लिया और वहाँ से पैदल फौजों ने सिंगापुर पर हमला बोल दिया। दुश्मन समुद्र के रास्ते से बिल्कुल नहीं आया। वे बड़ी तोपें बेकार रहीं क्योंकि पीछे घुमाई नहीं जा सकती थीं। जिधर उनका निशान लग सकता था उधर दुश्मन नहीं था। कैसी यह चालाकी थी और कैसी यह आँख-मिचौनी।' गुरुदयालसिंह ने सचमुच अपनी आँखें मिचकाकर कहा।

मैंने देखा, सुननेवालों के चेहरों पर आश्चर्य और उत्सुकता। किसी ने कहा, 'हवलदार मेजर साहब ने क्या फ़ौजी पेचीदगी और लड़ाई की कमजोरी पकड़ी है !'

वह कुछ प्रसन्न हुआ और कुछ झेंप गया। फैलती हुई मुस्कराहट उसकी घनी दाढ़ी-मूँछों में समा गई। ठीक वैसी ही मुस्कराहट—सहज सहानुभूति-भरी मीठी मुस्कराहट जो मेरे मन-पट पर अमर हो चुकी थी। सहसा मेरी आँखों के आगे सिंगापुर के घमासान युद्ध के चित्र चलने

लगे। मैं भी तो वहाँ समर में उतरा था। मैंने भी तो जापानियों से मुठभेड़ की थी। सिंगापुर के द्वीप और मलाया से नाता जोड़नेवाला, समुद्र पर बना मजबूत लम्बा बाँध ही तो युद्ध का निर्णय-स्थल था। जापानी सैनिक आगे बढ़ रहे थे। हम सब उनको वहाँ रोकना चाहते थे, जिससे सिंगापुर खाली करने के लिए कुछ समय मिल सके। दुश्मन के पैदल सैनिकों के जत्थे आगे बढ़ते। ऊपर से जापानी हवाई जहाज गोले बरसाते। वहाँ मौत मुँह बाये खड़ी थी और सैकड़ों जवानों को निगल रही थी। अचानक कुछ दूर पर धड़-से आवाज हुई और मेरे बायें बाजू में चहकता हुआ बिजली का टुकड़ा जैसे आसमान से टूटकर पार हो गया। दूसरे ही क्षण मालूम हुआ कि राइफ़िल की गोली पार हो चुकी है। मैंने दूसरे हाथ से बाजू थामा पर खून का फ़व्वारा क्यों बन्द होने लगा। मैं एक ओर गिरने लगा। मालूम होता था कि मेरी चेतन-शक्ति भी रक्त के साथ बही जा रही है। आँखों के आगे धुन्ध छाने लगा। उस धुन्ध को चीरता हुआ गुरुदयालसिंह का केशों और दाढ़ी-मूँछवाला चेहरा कितना बड़ा होता हुआ मालूम दिया। उसने अपना साफा उतारकर एक बड़ी पट्टी चीरी और मेरे बाजू के घाव पर कसकर बाँधने लगा। जैसे-जैसे वह पट्टी बाँधता वैसे-वैसे ही मेरी अर्ध-सुप्त चेतना पर उसकी समवेदना-युक्त मधुर मुस्कान अंकित होती जाती। मैं शायद अचेत हो गया पर इस मुस्कान की रेखाएँ इतनी गहरी हो गईं कि गुरुदयालसिंह की इस समय की मुस्कान में मैंने ठीक वही समानता पाई और उसने मेरी यह स्मृति जागृत कर दी। मैं कमीज के ऊपर से ही अपने सूखे हुए पुराने घाव को उँगलियों से टटोलने लगा।

'सिंगापुर का जंग तो बड़े काँटे का जंग रहा होगा हवलदार मेजर साहब ?' किसी ने कहा।

'उस जंग का क्या कहना ! वह काँटे का नहीं, ठण्डी स्टील की

नुकीली बैनेटों का द्वन्द्व था। जिसको मौका मिलता वह ठण्डी नुकीली धार से दुश्मन का गर्म खून बहा देता। जापानी अजीब आवाजें करते : 'कौन-चिकु-शौ' (जिसका अर्थ है यह पातकी पुरुष), 'वा-आ-आ-आ-'। हम चिल्लाते, 'जै बजरंग बली की' 'जै शिवाजी महाराज की' 'बोल फ़तेह जी खालसा'। मैंने जब एक जापानी सैनिक का पेट अपनी बैनेट से चीर डाला तो वह ओ-का-सा-न—ओ-का-सा-न (हे माँ-हे माँ) कराहते-कराहते धरती माँ की गोद में सदा के लिए सो गया।'

'हवलदार मेजर साहब के तभी तो बाजू गठे हुए हैं। बैनेट चलाते-चलाते फ़ौलाद हो गये हैं।' एक ने प्रशंसा की।

'पर शेर की-सी हिम्मत के साथ-साथ दिल कमल के फूल की तरह नर्म है!' दूसरे ने कहा।

'लेकिन वह नर्मी हम सबके लिए। दुश्मन के लिए नहीं।' तीसरा बोला।

'क्यों हवलदार मेजर साहब? इसके मानी तो यह है कि वह लड़ाई जंगली जानवरों की-सी रही होगी।' चौथे ने सवाल किया।

'तुम ठीक कहते हो। मलाया के जंगलों में हम जंगली तेंदुओं और भालुओं की तरह जापानियों से भिड़े थे। जिसका पंजा पहिले पड़ा उसी ने दुश्मन का मांस चीर डाला। घायल, खून से लथपथ लोग सैकड़ों की तादाद में थे। किसी का सर से धड़ अलग, किसी का धड़ बाजू-विहीन और किसी की टाँगें दूर कटी हुईं। उस वक्त मालूम हुआ कि तलवार और छुरा चलाने के फ़न की जरूरत आजकल के जंग में भी होती है। अगर इनके चलाने की आदत न रहे तो शायद लोहे की पैनी बैनेट भी अपना काम न कर सके।' गुरुदयालसिंह ने कहा।

डेक पर एक ओर लोहे का मुड़ा हुआ नुकीला लंगर पड़ा था। कुछ मोटी जंजीरें एक सिरे पर भारी अकेले लोहे के छोटे खंभे में लिपटी

थीं। मेरी उँगलियाँ रेलिंग का सहारा ले रही थीं जिसकी ठंडक मेरे शरीर में उँगलियों के सिरों में से होकर घुसी जा रही थी।

गुरुदयालसिंह कहता जा रहा था, 'जवानो, देखो लोहे के खम्भे को। वह अकेला खड़ा है—ठण्डा, मजबूत और स्थिर। ऐसे ही हम भी उस जंग में खड़े थे। मरघट में जैसे जल्लाद। स्नेह की शृंखलाओं से मुक्त। खड्ग हाथ में लिये, लोहू के प्यासे।' वह कुछ रुककर अपने दाहिने हाथ से मूँछों पर ताव देकर अपनी जीभ से होठों को चाटकर कहने लगा, 'सिंगापुर की सब्ज जमीन का वह चप्पा मुर्दों से खचाखच भरने लगा। फिर भी हम सब जो जीवित बचे थे जिन्दा दुश्मन को मुर्दा बनाना चाहते थे। दिमाग इसी काम में मशगूल और दिल संग की तरह कड़ा। आदमी के सर पर हैवान सवार था।'

'मगर गुरुदयालसिंह उस वक्त भी आदमी के आदमी ही रहे। हैवान नहीं।' मैंने अपने बाजू के घाव को सहलाते हुए कहा। गुरु-दयाल ने मेरी ओर देखा। शायद उसे पुरानी बात याद आ गई। वह कुछ झेंपकर, कुछ हँसकर कहने लगा, 'मेजर साहब! अपने साथियों को बचाने की ख्वाहिश किसे नहीं होती? दुश्मन के खिलाफ़ खूँख्वारी और अपने साथियों के लिए हमदर्दी अपने-आप आ जाती है। ये दोनो हविस एक ही दिल में सिमट जाती हैं।'

फिर वार्त्तालाप युद्ध की कर्कशता से हटकर शान्ति-काल में सैनिकों के जीवन की मधुरता और निश्चिन्तता की ओर मुड़ गया। सब हँसने लगे, चहकने लगे। सब अपनी अनुभूतियों की लहरों पर उतराने लगे—इस तैरते हुए जल-पोत की भाँति।

★

वह शाम कुछ धुँधली हो चली थी—बुझती हुई ज्योति की क्षीण आभा को घने बादलों ने अपने में छिपा लिया। मालूम होता जैसे भीगा,

काला, भूरा विशाल कम्बल ऊपर फैला हो, जिसमें से छनकर छोटी बूँदें गिर रही हों। पानी की फुहार कभी हल्की हो जाती और कभी तेज।

लान्स नायक हिम्मतसिंह अपनी कहानी सुना रहा था। उसकी मनोभावनाओं का रथ शायद भारत के सुदूर पूर्वी भाग के कोहिमा क्षेत्र के दलदल में फँस रहा था जब उसने कहा, 'भारत का ऊपरी भाग, जिसमें मणिपुर का इलाका शामिल था, बरसात में एक समस्या बन गई। चारों ओर पानी, दलदल और घना जंगल, जहाँ चलना मुश्किल। सब जंगली रास्ते पानी में डूबने लगे। सिर्फ दीमापुर और कोहिमा की सड़क हमारी जिन्दगी का साधन थी। इसी सड़क से हमारी फौजों को रसद और सामान पहुँचाया जाता। यह सड़क भी कहीं-कहीं पानी से भर जाती। छप-छपकर आदमी और खच्चर चलते। लम्बे वृक्षों के पत्तों में से सर-सर खड़-खड़ तेज हवा चलती और घनी बौछार गिरती। खच्चर चलानेवाले और रात में गश्त करनेवाले सैनिक, पीठ झुकाये, सर नीचा किये, फिर भी चलते रहते। यहाँ तक कि खच्चर भी न कान फड़काते और न सर हिलाते। वे अपनी गर्दन लम्बी कर लेते और उनके कान ऊपर उठने के बजाय गधों की तरह कुछ नीचे और कुछ चौड़े-से हो जाते। सबकी पीठों पर तेज पानी की मार कोड़ों की तरह पड़ती।'

'इसी लिए शायद तुम्हारी कमर भी कमान-सी झुकी रह गई है। मणिपुर और इम्फाल में बोझ ढोते-ढोते देखो यह बेचारा कैसा हो गया है—सूखे झुके बेंत की तरह।' हवलदार नाकिन गुरंग ने शरारत से भरी आँखें सिकोड़कर कहा।

'मेरी कमर कहाँ झुकी है ? यह शेरों की तरह पतली और मजबूत है, हवलदारजी !' हिम्मतसिंह ने अपनी कमर के खम को अकड़कर सीधा करना चाहा। सब हँसने लगे। वह कहने लगा, 'आप लोग हँसते क्या हैं ? वहाँ की परेशानियाँ वही जानते हैं जिन्होंने वहाँ युद्ध

लड़ा है। चलते-चलते थकान और ऊपर से जापानी हवाई जहाजों की गोलियाँ और बम। कई रात हम चलते रहे, जैसे पैरों में कोई मशीन लग गई हो। शरीर चकनाचूर। जी चाहता कि उन जंगलों में किसी गीली झाड़ियों की ओट में हम पड़े सोते रहें। पीठ पर भारी "पैक" का बोझ और कन्धे में लटकी राइफ़िल। हर चीज भारी मालूम होती। यहाँ तक कि पलक भी भारी हो मुँदने लगते। पर पैर चलते रहते।'

'वहाँ के युद्ध का असर सब पर पड़ गया है। देखो गोपाल नायडू इसी लिए ऊँघने लगा है। शायद वहाँ की थकान अभी तक नहीं उतरी।' गुरुंग ने सैनिक गोपाल नायडू को छेड़ा।

वह एक ओर सहारा लिये आँखें बन्द किये जैसे किसी पिनक में पड़ा था। वह हड़बड़ा के जाग पड़ा और कहने लगा, 'मैं सो नहीं रहा था। सब सुन रहा था। हाँ, नायकजी कह रहे थे कि हम कोहिमा में थे। वहाँ की सड़कों पर।'

सब लोग यह सुनकर ठहाका मारकर हँस पड़े। नायडू अपनी झेंप मिटाने को अपनी आँखें हथेलियों से मलने लगा।

'अरे नायडू! मैं कोहिमा की सड़कों की नहीं वहाँ के जंगलों की बात कर रहा था। जापानियों की बमबारी के बारे में कह रहा था।' हिम्मतसिंह बोला।

'और हमारे हवाई जहाज कहाँ चले गये थे? जापानियों का मुकाबिला क्या हवाई ताकत से नहीं हुआ?' एक ने प्रश्न किया।

अब तक सैनिक नायडू सतर्क हो गया था। वह चट से कहने लगा, 'अपने हवाई जहाज कहाँ से आते? अपना पलेल का हवाई अड्डा तो जापानियों के हाथों में आ गया था।'

'नायडू ठीक कहता है। दीमापुर और कोहिमा की सड़क के सैंतीसवें और अड़तीसवें मील के बीच का भाग जापानी ले चुके थे। उधर

इम्फाल को उन्होंने तीन तरफ से घेर लिया था। हमारी बुरी हालत होने लगी थी।'

'तब तो अपनी फ़ौजों का काम मुश्किल हो गया होगा उस पहाड़ी और दलदल के इलाके में।' किसी ने कहा।

नायक हिम्मतसिंह अपनी पतली ऊँची गर्दन और ऊपर उठाकर सारस की तरह सागर की ओर देखने लगा। उसके गले की नली का तिकोना उभार और आगे निकल आया।

इस समय ऊँची उठती, गुर्राती लहरें हमारे जहाज से टक्कर ले रही थीं। वह कहने लगा, 'ठीक इसी तरह जापान की विजय की लहरें आगे बढ़ी आ रही थीं। बर्मा और आराकान पर अधिकार कर वे भारतवर्ष के पूर्वी प्रदेशों में घुसने लगे थे। टिड्डिम और इम्फाल की सड़क पर वे बिशनपुर तक बढ़ आये। उधर उनकी जीत का बढ़ता और फैलता सैलाब और इधर ऊपर वर्षा के देवता का कोप। हम सब दो पाटों के बीच में फँसे थे।'

'दो पाटन के बीच में साबित बचा न कोय,—यह तो किसी कवि ने भी कहा है।' एक ने हाँ-में-हाँ मिलाते हुए कहा।

'पर हम इन दोनो पाटों के बीच में भी जिन्दा बच निकले, सिर्फ अपने जवानों की दिलेरी की बदौलत।' हिम्मतसिंह यह कहते-कहते किसी विचार में निमग्न हो गया। दोनो झुके कन्धों को उसने और अन्दर खींच लिया। मालूम होता कि वह कपोत की भाँति पंख सिकोड़-कर उड़ने की तैयारी कर रहा हो। छोटे कटे बालों के नीचे आगे को निकला माथा फड़कने लगा। पिचके गालों की खिची खाल और उठी हड्डियों के बीच दोनो ओर दो रेखाएँ उभर आईं। पतली ऊँची गर्दन पर लम्बे मुँह की आगे निकली हुई ठोढ़ी नाक की ओर कुछ और ऊपर उठ गई। वक्रता का वह समूह था। लम्बी टाँगों पर उसका दुबला

शरीर ऐसा मालूम देता जैसे वह रेगिस्तानी ऊँट हो। वह राजस्थान के रेगिस्तान का राजपूत तो था ही जिसके चींचड़ हाड़-मांस ने उसे कठिन-से-कठिन कार्य करने के उपयुक्त बना दिया। बिना खाना खाये और पानी पिये मीलों चलने की ऊँट की अनुपम शक्ति भी उसमें विद्यमान थी। इसी लिए राजपूत रेजीमेण्ट में से खासतौर से छाँटकर वह कार्य-परायणता की जगह रक्खा जाता। उसकी बाह्य असुन्दरता उसके आत्मिक बल को न छिपा सकी थी। उसकी खिंची हुई खाल उसके टेढ़े-मेढ़े ढाँचे पर उस मृदंग की भाँति मढ़ी थी जिसके अन्तर से देश-भक्ति की झंकार निकलती। अपने देश के गौरव की रक्षा करने ही तो वह रेगिस्तान का निवासी आसाम के गीले जंगलों में जापानियों से संघर्ष कर रहा था।

उसने अपने बड़े दाँतों को कसकर भींचा और कहना शुरू किया, 'हम लोग एक जगह मोर्चा बनाकर डट गये। वहाँ से शत्रु की पूरी शक्ति भी हमको नहीं डिगा सकी। कोहिमा के आस-पास पहाड़ियाँ पाँच-छः हज़ार फुट ऊँची हैं जिनकी नीची तराई में बेहद घने जंगल। इतने घने कि दिन में भी रात मालूम होती। हमारा बैटेलियन हैड-क्वार्टर ऐसी ही एक छिपी जगह था। बाँस, पत्ती और घास के घोंसले-से हमने रहने के लिए बना लिये पर अधिकतर तो हम लोगों को रात पहाड़ियों की खोह में, या पेड़ पर, या जंगल में लुक-छिपकर चलते-चलते बितानी पड़ती। ऊपर से पानी बरसता और नीचे छप-छप हम चलते। अगर कभी कहीं सुस्ताने को बैठते तो कई जोंक हमारे लग जातीं। एक बार एक जोंक मेरी गर्दन के पीछे लग गई और खून चूस-चूस कर फूलने लगी। मेरे एक साथी ने उसे बड़ी मुश्किल से छुड़ाया।" उसने कमीज़ का कालर हटाकर वह जगह दिखाई जहाँ से जोंक ने उसका रक्त पिया था।

'वह जोंक आसानी से कैसे छूटती। उसमें तो बहादुर राजपूत का खून पहुँच चुका था।' हवलदार मेजर गुरुदयालसिंह ने कहा।

'और यह देखो।' नाकिन गुरंग एक मरे मच्छर को अपनी हथेली पर रखकर बोला, 'यह मेरे बाजू का खून पी रहा था। मुझे मालूम होने लगा कि शायद मुझे भी कोई जोंक चिपट गई है। पर मैंने इसे मार डाला।'

'आप नेपाल के बहादुर हैं। मच्छर का शिकार करनेवाले।' किसी ने कहा। सब हँस पड़े। हिम्मतसिंह ने भी अपनी खीसें निपोड़ दीं। कुछ रुककर वह फिर कहने लगा :

'हम मच्छरों, कीड़ों-मकोड़ों के देश में तो थे ही। एक अँधेरी रात को हमारा प्लैटून "रैकी ड्यूटी" (दुश्मन की खोज-बीन) पर भेजा गया। बरसात की रात थी और जगह-जगह पानी भरा था। एक घने पेड़ की गहरी काली छाया में जब हम थककर रुके और आगे बढ़ने ही वाले थे कि एक ओर से अचानक पत्तों में खड़खड़ाहट हुई और कई बिज-लियाँ-सी हम पर टूट पड़ीं। तड़-से हमारे प्लैटून कमाण्डर के सीने पर गोली लगी। फिर तड़तड़ाहट और उसके बाद गहरी शान्ति। मैंने उसके सीने के घाव को ज़ोर से अपनी हथेली से दबाया। वहाँ तो गर्म खून का झरना बह रहा था! उस बहादुर ने ज़ोर से आह भी न की, इस डर से कि कहीं दुश्मन को हमारा पता न चल जाये। तेज़ हवा पेड़ के पत्तों को झकझोरकर साँय-साँय चल रही थी। उस साँय-साँय में अपना कान उसके मुँह के पास रखकर मैंने केवल यही फुसफुसाहट सुनी, "बस....करो....बस....करो....मु....झे....जा....ने दो....तु....म....स....ब ....अ....म....र....र....हो....मैं....मैं....च....ला....च....ला...." कहते-कहते मेरी गोद में उसका सर लुढ़क गया और वह वीर सचमुच चल बसा।' हिम्मतसिंह की आँखों की कोरों से छलकता पानी उसके पूरे नेत्रों पर छा गया।

गुरुदयालसिंह तसल्ली देते हुए बोला, 'हिम्मतसिंह ! ज़िन्दगी और मौत जंग के मैदान में दिन और रात की तरह है। उससे घबराना क्या ? बहादुर ज़िन्दा रहा तो आगे बढ़ता गया और मौत की नींद में सोया तो अपने मुल्क के लिए कुर्बान होकर अमर हो गया।'

'मृत्यु जीवन की अन्तिम चरम सीमा है, जिसके पार सबको जाना है। जो इस सीमा तक वीरता से पहुँचा उसकी सबने सराहना की। और जो घिसटता हुआ, बिलखता हुआ पहुँचा उसको सबने धिक्कारा।' कैप्टेन नन्दलाल शाह ने एक दार्शनिक की भाँति यह बात क़ही।

'कैप्टेन साहब ! जिन्दगी और मौत का ऐसा नज़ारा मैंने उस रात देखा। अपने प्लैटून कमाण्डर की जान जाने के बाद हम लोगों ने इरादा कर लिया कि उस पेड़ को, जहाँ से गोलियाँ चलीं थी, हम लोग रात-भर घेरे रहेंगे। हम चुपचाप ज़मीन से चिपटे पड़े रहे। जब सुबह का झुटपुटा हुआ तो पेड़ के पत्तों में से फिर गोली की बौछार हुई। इस बार हममें से कोई भी घायल नहीं हुआ क्योंकि हमने बचाव के लिए आड़ ले ली थी। हम चौकन्ने हो गये। उस समय का इन्तज़ार करने लगे कि कब जापानी बन्दूकची पेड़ के नीचे उतरते हैं। थोड़ी देर में पत्तों में खड़बड़ हुई और दो जापानी डाल की टहनी पकड़ते हुए पेड़ से उतरने लगे। हमारे लिए यह मौक़ा अच्छा था। जैसे ही उनमें से, जो युवक था, लद-से एक बड़ी डाल से नीचे कूदा और तेज़ी से भागा, प्लैटून के कुछ जवानों ने फ़ायर किया। उसकी बाईं टाँग में गोली लगी और वह गिर गया। कुछ लोग उसकी ओर लपके और उसको घेरकर बन्दी कर लिया।'

हिम्मतसिंह ने लम्बी साँस लेकर बताया कि दूसरा जापानी बन्दूकची अधेड़ था। पेड़ के नीचे आते ही उसने अपनी राइफ़िल डाल

दी। वह पकड़ लिया गया और उसकी तलाशी शुरू हुई। जब तक लोग इन दोनों में उलझे थे, पास के दूसरे बड़े पेड़ से अचानक एक तीसरा जापानी युवक ऊँची डाल से एक ओर को कूदा और अपनी राइफ़िल से फ़ायर करता हुआ घने जंगल में अदृश्य हो गया। बहुत पीछा करने पर भी वह हाथ न आ सका।

'इधर अधेड़ जापानी ने यकायक ज़ोर से शोर मचाया और अपनी पेटी में से एक कागज़ निकाल, उसे मरोड़ मुँह में रखकर निगल गया। दूसरे क्षण ही उसने अपनी तेज़ कुकरी से वक्ष से नाभी तक अपना पेट चीर डाला। लोहू और मांस के साथ उसकी अँतड़ियाँ बाहर को आने लगीं। वह जापानी भाषा में चिल्लाने लगा, "तेनो....हेइका बेन्ज़ाई तेनो....हेइका....बेन्ज़ाई....बेन्ज़ाई....बे....न्ज़ाई.... बे....न्ज़ा....ई...." (जिसका अर्थ है जापान का सम्राट् अमर रहे)। उसकी पतली छोटी आँखों की पुतलियाँ पलटने लगीं पर "बेन्ज़ाई" शब्द अन्तिम काल तक होंठों से निकलता रहा। उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। लोगों ने उसके मुँह से कागज़ के कुछ टुकड़े बड़ी मुश्किल से निकाले। उनमें से कुछ पर नक्शा-सा बना था और जापानी भाषा में कुछ लिखा था। उन कागज़ के टुकड़ों से किसी ख़ास बात का पता न चल सका। शायद वे जापानी स्नाइपर भारत की सेना के बारे में जानकारी करने को वहाँ छिपे थे।'

लान्स नायक ने अपनी कटी हुई चौड़ी मूँछों पर हाथ फेरते हुए कहा, 'हम लोग दो शव और एक लँगड़े जापानी को लेकर अपने कैम्प वापस लौटे। हमारा प्लैटून-कमाण्डर दुश्मन की गोली का निशाना बना था। अधेड़ जापानी सैनिक ने अपने सम्राट् के लिए "हराकिरी" (आत्म-हत्या) की थी। कैसा भयावना वह दृश्य था! हवलदार मेज़र साहब! वहाँ मालूम हुआ कि जापानियों के लिए मौत एक खेल है।

चोट खाये हुए जापानी ने कोई बात नहीं बताई। वह गूँगा-सा बना चुपचाप हमारे साथ रहा। हमने उसे बैटेलियन हेड-क्वार्टर पहुँचा दिया।'

'ऐसी ही बहादुरी के करिश्मों से तो तुम लोगों ने जापानियों को पीछे हटाना शुरू कर दिया हिम्मतसिंह! तभी तो वह इरावदी नदी के तट पर हारकर, मिक्टीला (Miktila) और मोलमीन (Molmein) युद्ध में परास्त होकर बर्मा से भी खदेड़े गये। वे पीले रंग के सैनिक और हम काले रंगवाले योद्धा। पीले पर काला रंग क्यों न चढ़ता?'

'सूरदास काली कमली पै चढ़ै न दूजो रंग।' सैनिक मुरलीधर पाण्डे ने मुस्कराकर कहा।

यह बात सुनकर सब प्रसन्न हो गये।

लान्स नायक हिम्मतसिंह के टेढ़े-मेढ़े दाँत होठों के बाहर बिखरे-से, उसके सूखे चेहरे की हँसी को और भी विनोदपूर्ण बना रहे थे।

वीरता का यह अनुभूतिपूर्ण दृष्टान्त उसने सुलभ चतुराई से सुना डाला।

४

उस शाम हमारी कम्पनी के सैनिक मुरलीधर पाण्डे ने अपनी वंशी की मोहिनी से सब को मन्त्र-मुग्ध कर दिया। जब उसने बाँसुरी बजाना बन्द किया तब भी उसकी मधुर लय मानो आकाश को भेदते हुए उसमें समाने लगी। दूर फैलती हुई वह स्वर-लहरी अब भी गूँज रही थी। मथुरा का वह निवासी मानो लोगों के मन चुराने में उतना ही निपुण और अभ्यस्त था जितना उसका नामराशी आराध्य देव।

उसने फिर मल्हार की तान छेड़ी। उसके गौरवर्ण चेहरे पर गोल गाल ऊपर उठकर चमकने लगे। होठ चौड़े हो फैल गये, सर हिलने लगा, काले घुँघराले बाल माथे पर लटक गये, आँखें बन्द हो गईं और गले की नसें खिंच गईं। वह तन्मय होकर गाने लगा। रह-रहकर अपना पैर हिलाकर वह ताल देता। उसके राग के स्वर शायद इन्द्र-लोक तक पहुँच गये थे। तभी तो चारों ओर से घटाएँ घिरने लगीं और बादल उठने लगे। कहते हैं कि तानसेन ने जब दीपक राग गाया था तो दीप स्वयं जलने लगे थे, पर यहाँ तो मुरलीधर ने अपने मल्हार से जलद में प्रत्यक्ष गति ला दी। मन्थर गतिवाली बयार में उग्रता आने लगी और लहरों में उभार। दूर पर सफेद डैने फैलाये 'सी-गल' हवा को काटते हुए दूर दिशा में ओझल होने लगे। बिखरे काले बादल सिमटने लगे, एक-दूसरे से टकराने लगे। अचानक बिजली कौंधी और जैसे हमारे जहाज की ओर लपकी। फिर घोर गर्जन और तड़ित् की तड़तड़ाहट। मूसलाधार वर्षा होने लगी। गाना बन्द हो गाया, पर मल्हार के स्वर क्षितिज पर छा गये।

जंग की बातें फिर छिड़ गईं। मराठा पल्टन के नायक नरसिंहराव ने अराकान के मायेवोन के युद्ध का वृत्तान्त कहना शुरू किया और मैं आँखें बन्दकर उस समय की स्मृति में डूबने लगा। मैं भी तो उस युद्ध में लड़ा था। मैंने भी तो वहाँ ऐसी मुसीबतों का सामना किया था जिससे ज़िन्दगी में अडिग दृढ़ता आ गई थी। कठोर यथार्थ और सत्यों को देखते-देखते मानसिक स्थिति ऐसी हो चुकी थी जहाँ मानव का मरना-जीना मन को अप्रभावित छोड़ देता। रण के वीर साथी मिट्टी के खिलौने-से टूटकर बिखर जाते। शायद बच्चों को अपने प्यारे खिलौनों के टूटने का कहीं अधिक क्षोभ होता होगा, पर हम निर्मम, पाषाण-हृदय वीरगति पाने-वाले अपने सैनिकों के लिए दो बूँद आँसू भी न बहाते। वहाँ साथियों

के प्रति सहृदयता के स्थान पर शत्रु के लिए घृणा और विरोध की भावना अधिक उत्कट थी। हम सब नृशंस हत्या के उल्लंग नृत्य के पात्र थे।

नायक नरसिंहराव कहने लगा, 'जापानी फ़ौजें पीछे हटने लगी थीं। उन्होंने अराकान का बहुत-सा भाग खाली कर दिया था। पर मायेवोन प्रायद्वीप में उनका मोर्चा मजबूत था। अकयाब से लगभग पैंतीस मील दूरस्थित यह स्थान जंग के इतिहास में अमर हो चुका था। समुद्र के किनारे की हरी ऊँची उठती हुई पहाड़ियों में जगह-जगह जापानी छिपे थे। उनको वहाँ से निकाल भगाने का खतरनाक काम फ़ौज के पन्द्रहवें कोर (XV Corps) को मिला था। जनवरी सन् १९४५ में वहाँ हमला बोल दिया गया। हमारे मेज़र साहब भी हमारे साथ थे।' उसने मेरी ओर इशारा करते हुए कहा। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में चमक और पतले छोटे होठों पर मुस्कान झलकने लगी। उसने गहरी साँस खींचकर अपने सीने को ऐसे फुलाया जैसे कोई पहलवान कुश्ती लड़ने के पहिले तैयारी करता हो। दोनो बाजुओं की मांसल पेशियाँ खिंच गईं और वह कहने लगा, 'इन भुजाओं ने बहुत-से शत्रुओं का संहार किया है, पर मायेवोन के युद्ध में यही हविस रह गई कि जापानियों से आमने-सामने डटकर लड़ाई न लड़ सका। हम लोग जब वहाँ खाइयों में छिपकर राइफिल चलाते-चलाते थक गये, तब एक साथी ने लाख रुपये की बात कही कि आजकल की लड़ाई में यही समझ में नहीं आता कि कौन दिलेर है और कौन बुजदिल। सब छिपकर लड़ते हैं। पहिले मैदान में जंग होता था जहाँ भुजाओं का बल देखा जाता था, रण-चातुरी परखी जाती थी और कलेजे की हिम्मत आँकी जाती थी। शिवा-जी ने इन गुणों के कारण अपने शत्रुओं पर विजय पायी थी। पर अब तो लड़नेवाले कीड़ों-मकोड़ों की तरह जमीन को खोदकर अन्दर छिपते हैं या पत्थरों और पहाड़ों की ओट लेते हैं। खाइयों और खन्दकों में

कितनी गन्दगी और कितनी सीलन। खुले, हवादार लड़ाई के मैदान का अब मज़ा ही जाता रहा।'

मेरी कमीज़ की एक आस्तीन वर्षा की बौछार से कुछ भीग गई थी। मुझे अनुभव होने लगा कि उसमें से फैलती हुई सीलन मेरे सारे शरीर में घुसी जा रही है, ठीक वैसी ही सीलन जैसी मायेबोन के युद्ध में मेरी खाई में थी। मुझे लगने लगा कि मैं उसी खाई में पहुँच गया हूँ और पास में बैठे लोगों के पसीने की खट्टी-सी गन्ध मेरी नाक में वैसे ही बसी जा रही है जैसे खाई में सटकर बैठनेवाले सैनिकों के रेत और धूल-मिश्रित स्वेद की। एक अजब गीलापन मेरी स्मृति को गीला और हरा करने लगा। खाइयों में हम लोग कैसे लम्बे दिन और छोटी रातें काटते थे—ठिठुरे हुए, सिमटे हुए हम वहाँ भेड़ों के झुण्ड की तरह चुपचाप दुबके हुए पड़े रहते। ऊपर से जापानी बम और मशीनगन की गोलियाँ सन-से निकल जातीं। कहीं धड़ाका होता। बम फटता और समुद्र के किनारे के पत्थर, धूल, घोंघे और सीप हमारे ऊपर बरस पड़ते। बिखरे सूखे बालों में रेत और मिट्टी, बढ़ी दाढ़ी, लाल-सी आधी खुली आँखें, जिनमें नींद न मिलने के कारण छोटी कँकड़ी-सी एक कोने से दूसरे कोने तक बराबर चला करती, पीले मुर्झाये चेहरे और शिथिल-से हाथ-पाँव, हम लोग सब शिवजी के औगढ़ साथी लगते। एक-दूसरे से बहुत कम बात होती। जब कभी दुश्मन की ओर कुछ खटका या चलत-फिरत होती हम अपनी राइफ़िल सँभाल तड़-से निशाना मारते और फिर लद-से एक ओर पड़ जाते। एक बार हमारे साथी के दाहिने कन्धे को रगड़ती हुई दुश्मन की मशीनगन की गोली निकल गई। थोड़ा मांस भी अपने साथ उड़ा ले गई। खून बह निकला और लाल मांस के छितड़े लटक गये। हमारे पास पानी की कमी थी जिससे घाव को धो सकते। एक हवलदार ने चट-से माचिस जलाई और अपने रूमाल को जलाकर

उसकी गर्म राख घाव पर थोप दी। राइफ़िल की बट में से तेल की कुप्पी निकाल थोड़ा "राइफ़िल आयल" उस राख पर चुपड़ दिया। आश्चर्य था कि इस इलाज से हमारे साथी को आराम भी मिला और उसका खून बहना भी रुक गया।

पानी की कमी के कारण न हम दाढ़ी बनाते और न मुँह धोते। हर बूँद जैसे स्वाती की बूँद थी और हम उसके चातक।

नायक नरसिंहराव ने फिर कहना शुरू किया, 'पन्द्रहवें कार में अंग्रेज़ सेना थी और भारत सेना का ५३ नम्बर का ब्रिगेड था। यह सेनाएँ बड़े जंगी जहाजों पर मायेवोन विजय करने को भेजी गई थीं। दो दिन तक उन जहाजों ने मायेवोन के प्रायद्वीप पर रात-दिन गोले-बारी की। बड़ी और मँझोली तोपों से सामने का रेतीला किनारा और उसके ऊपर हरी पहाड़ियों का इलाका छलनी कर दिया गया। तीसरे दिन पौ फटने के पहिले "कमाण्डो ब्रिगेड' छोटी किश्तियों में किनारे की ओर चला। जापानियों ने ऐसी गोलियों और बम की वर्षा की जो जिन्दगी-भर याद रहेगी। बहुत-से सैनिक मारे गये। कुछ किश्तियाँ डूब गईं। फिर भी हमारी बहादुर फौजें किनारे पर उतर गईं और जमीन खोदकर डट गईं। ५३ नम्बर के ब्रिगेड ने भी खाइयों में मोर्चे बना लिये। दिन-भर जापानी मशीनगन और राइफ़िल की गोलियाँ हम पर प्रहार करतीं और हम शुतुर्मुर्ग की तरह रेत में अपना सर गाड़े पड़े रहते। वे दिन कितने लम्बे मालूम होते! सब इन्तजार करते कि कब शाम का अँधेरा हो और जी को चैन मिले। सब चाहते कि कभी भी सूरज न निकले और कभी भी सबेरा न हो। हरएक प्रभात में सैंकड़ों सैनिकों की जीवन-ज्योति अस्त हो जाती। कैसा यह खेल-तमाशा था! जीवन देनेवाला प्रकाश बहुतों का प्राणलेवा होता। हम सब थकने लगे थे। मुझे याद है खाइयों में पड़े-पड़े लोग कभी जापानियों को और

कभी अपने भाग्य को कोसते।

'कैसे साले, पाजी, जापानी, जो चैन नहीं लेने देते !

'साले दुश्मन के सिपाहियों के कोढ़ हो जाय। उनके घावों में कीड़े पड़ जायँ। उनके हथियार बर्बाद हो जायँ।

'हम सबने क्या पाप किया है जो केंचुओं और गिजाइयों की तरह जमीन के अन्दर पड़े हैं। यह भी कोई लड़ाई का तरीका है !'

यही सब बातें खाइयों में पड़े-पड़े होतीं।

'फिर भी हर रात को नई खाइयाँ खोदी जातीं। नये मोर्चे बनाये जाते। फौजें आगे बढ़तीं। दुश्मन की गोलियों की बौछार जारी रहती। हम उसकी अवहेलना करते।'

अब वर्षा घनघोर होने लगी थी। जल की बड़ी बूँदें टप-टप जहाज की छत पर पड़ रही थीं। चारों ओर प्रबल जल-बिन्दुओं का अटूट अवतरण, जिसके परे कुछ भी न दीख पड़ता। यह आभास होने लगा जैसे हम सब मायेवोन के रणस्थल में पहुँच गये हैं और जापानियों की गोलियाँ सहस्रों की संख्या में हमारे ऊपर टूट पड़ी हैं। सहसा मेघों का बृहद् नाद; जैसे कई बमों का विस्फोट एकाकार हो गया हो। मैं स्वतः ही कुछ सिमट-सा गया। शायद चटपट मैं वहीं औंधा हो बम के प्रहार से बचने को लेट जाता—अपनी ट्रेनिंग की आदत के अनुसार। पर दूसरे क्षण यथार्थ का बोध हुआ कि हम सब तो जल और तड़ित् के प्रदेश में हैं, बमों और मशीनगनों के वीभत्स जाल में नहीं। फिर भी मायेवोन के आक्रमण का दृश्य आँखों के आगे था। कैसे हमारी खन्दकों में रात के अँधेरे में सैनिक अपनी जान पर खेलकर चौबीस घण्टों की रसद और पानी पहुँचाते। खाना समुद्र में दूर बड़े जहाजों में दिन-भर बनता। रात में चुपके-चुपके छोटी किश्तियों में लादकर, किनारे के रेतीले मैदान को पारकर हर खाई में पहुँचाया जाता।

अक्सर खाना ले जानेवाले जापानी गोली के शिकार हो जाते और हममें से कुछ को भूखा और प्यासा रहना पड़ता। मुझे ऐसा अनुभव हुआ था जब दो दिन तक भूखा रहना पड़ा था। पानी भी समाप्त हो चुका था और हम सूखे होठों पर गीली जीभ फेरकर उनको तर कर रहे थे। गले में खुश्की ऊपर रेंगने लगी थी। अचानक दैवी लीला से प्राण बचे। काले बादल घिरने लगे और लगभग एक घण्टे वर्षा हुई। अपनी खाइयों में हम आकाश की ओर मुँह खोले पड़े रहे। अपनी-अपनी 'स्टील-हेलमेट' (लोहे के टोपी) को दोनों हाथों में साधे उसमें पानी जमा करते रहे। वह जल वर्षा नहीं, अमृत-वृष्टि थी।'

नरसिंहराव ने बताया कैसे जब उसके मोर्चे में तीन दिन तक उसे पानी नहीं मिला, वह रात के अँधेरे में बाहर निकलकर स्वयम् जल की खोज करने लगा। कुछ खण्डित शवों में से रास्ता टटोलते हुए, कुछ छिन्न-भिन्न मूर्छित सैनिकों की अन्तिम कराह सुनते वह आगे बढ़ा। एक मृतक सैनिक के ठण्डे शरीर से वह टकराया। उसका हाथ उस सैनिक की कमर में लटकती हुई पानी की बोतल में लगा। वह भारी थी, जल से भरी थी। उसने चट-से वह बोतल खींच ली। वहीं घुटने टेक, मुँह लगाकर पानी पीया। बोतल हाथ में ले अपने मोर्चे की ओर भागा। तड़-से एक गोली उसकी बाईं पिंडली में लगी। वह लड़खड़ाता हुआ अपनी खाई में आ गिरा। उसके साथियों ने उसकी मरहम-पट्टी की, देख-भाल की। वह अपने गोली के घाव को दिखाते हुए कहने लगा, 'अगर यह गोली कमर के ऊपर लगी होती तो यह कहानी सुनाने-वाला यहाँ न होता।'

'ऐसी अनहोनी बात क्यों होती? शेर तो गोली लगने के बाद और खूँख्वार हो जाता है। ऐसे ही घायल शेर की तरह तुमने जापानियों पर झपट की होगी नरसिंहराव!' हवलदार मेजर गुरुदयालसिंह ने

मुस्कराते हुए कहा, 'हर गोली अपनी निर्धारित जगह ही पड़ेगी। भगवान जैसे मनुष्य के भाग्य की लीला रचता है वैसे ही वह प्रत्येक गोली के ढलने के वक्त उसके लगने की जगह नियत करता है। मजाल क्या कि वह जगह टल जाय। यह ईश्वर की मर्जी थी कि जापानियों की वह गोली तुम्हारी पिण्डली में लगे। वह कमर के ऊपर कैसे पड़ सकती थी!'

यह बात सुनकर सब हँस पड़े। छरहरे शरीरवाला, चौड़े वक्षवाला और सिंह के-से पतले और लचीले पुट्ठोंवाला नायक नरसिंहराव भी प्रसन्न हो गया। चौड़े माथे पर धनुष के आकार की-सी कई रेखाएँ पड़ गईं। लम्बी नाक के नथुने उभर आये और सुडौल कटी मूँछों के नीचे उसके होठ चौड़े हो गये। उसकी श्वेत दन्त-पंक्ति चमकने लगी।

मैंने लोगों को बताया कि अँग्रेज़ और भारत की सेनाओं को आगे बढ़ने से जापानी पाँच दिन तक रोके रहे। मालूम नहीं कितने टन गोले-बारूद और कारतूस खर्च हुए होंगे। शत्रु की गोलियों की वर्षा कभी किसी पहाड़ी से, कभी किसी बंकर से बराबर होती रहती। शायद जापानियों ने अपनी पूरी शक्ति यहाँ जुटा दी थी। उनके सैनिक असंख्य मालूम देते। छठवें दिन जापानियों का फायर कुछ कम हुआ और रुक-रुककर गोलियाँ आने लगीं। हमारी सेना रात में आगे बढ़ी। सातवें दिन गहरी शान्ति छा गई। कभी-कभी जापानियों की मशीनगन टर्र-टर्र करती और फिर बन्द हो जाती। यह निश्चय हुआ कि रातभर में मायेवोन की बस्ती पर हमला करने की पूरी तैयारी कर ली जाय।

नायक नरसिंहराव ने कहानी की कड़ी जोड़ते हुए कहा, 'सुबह होते-होते मायेवोन पर हमारा आक्रमण शुरू हो गया। अपनी राइफ़िलों पर बैनेट लगाये हुए, दुश्मन को ललकारते हम आगे बढ़े। पर आश्चर्य यह था कि दूसरी ओर से कोई भी शब्द नहीं! जब हम बस्ती में पहुँचे,

तो देखा वहाँ के बाँस और बल्लियों के बने घर बर्बाद हो चुके थे। कुछ जला दिये गये थे और कुछ विध्वंस कर दिये गये थे। बहुत-से पेड़ गिर गये थे। कुछ वृक्षों की पत्तियाँ जली और झुलसी थीं, कुछ केवल शुष्क ठूँठ-मात्र रह गये थे। न वहाँ कोई रहनेवाले और न कोई मरा या जीवित जापानी सैनिक। चारों ओर श्मशान का-सा सूनापन। एक घर की टूटी दीवार पर अँग्रेज़ी के बड़े अक्षरों में लिखा था, 'हम जाते हैं। यहाँ तुम अपना क़ब्रिस्तान बनाओ।' जापानी जाते-जाते हम पर व्यंग कस गये थे।

'बाद में छान-बीन और खोज करने पर पता चला कि जापानियों की केवल एक बटालियन ने वहाँ हमारे पूरे ब्रिगेड का मुकाबिला किया और हमको गहरी क्षति पहुँचाई। वहाँ की ऊँची पहाड़ियाँ और नीची घाटियाँ हमारे अधिकार में थीं, पर दुश्मन घने जंगलों में भाग निकलने में सफल हो चुके थे।

'दूसरे दिन हरी पहाड़ियों की चोटियों पर झाँकते हुए प्रभाकर ने हमको चलते-फिरते हँसते-खेलते मस्त देखा। उस ऊषा के उभरते झुटपुटेपन में जीवन-सन्ध्या के ढलते धुँधलेपन का समावेश नहीं था। वह लाली जीवनदायिनी थी।'

अब तूफानी हवा शान्त हो चुकी थी। वर्षा भी रुक गई और अँधेरा सघन हो चला। हम सबका भोजन का समय हो गया था।

मैंने नायक नरसिंहराव से कहा, 'खाना खाकर तुम इस ठण्डी हवा में रात में ठीक तरह से सोना। रात में युद्ध के स्वप्न देखकर चिल्लाने मत लगना। यहाँ कोई जापानी सैनिक नहीं है जिसकी तलाश में तुम परेशान होते हो या जिस पर हमला करने को तुम उतावले हो रहे हो।'

★

तारों की काँपती हुई छाया में हम उस शाम डेक पर बैठे थे। टिम-टिमाते असंख्य जुगनू जैसे स्वच्छ नील गगन की विशालता में राह भूल स्थिर-से हो गये हों। ध्रुव तारा अकेला, ज्योतिर्मय, हमारे अधिक सन्निकट मालूम होता। उसी पर आँख गड़ाकर गुरखा पल्टन का हविल्दार नाकिन गुरंग कहने लगा, 'इस बड़े तारे से मैंने कई दिन मन बहलाया था जब हम लोग १९४१ में अपने बंकर में थे। बरसात की वजह से ऊपर तिरपाल पड़ा रहता और हम काली-सी कोठरी में बन्द हल्की, धुँधली बत्ती की ज्योति में कुछ अधिक प्रकाश खोजते। दिन-रात-वर्षा होती। न सूर्य के दर्शन और न चन्द्रमा की झाँकी। जब कभी पानी बन्द होता और तिरपाल हटता तो केवल यही ध्रुव तारा चमकता दिखाई देता। हम सात तारों (सप्तऋषि) से रेखा खींचते और ध्रुव तारे तक ले जाते। फिर ध्रुव तारे से लकीर फेरते हुए सात तारों तक ले आते। इसी तरह जिन्दगी की पलों की स्मृति आगे-पीछे चलती। कहते हैं कि यह बड़ा तारा समुद्र में जहाजों को रास्ता बताता है, पर मुझे तो यह घने जंगलों में भी राह दिखाता रहा है।'

हम सब ध्रुव तारे की ओर देखने लगे। फिर मेरी दृष्टि उस नाटे गठीले चटक गुरखे पर आ रुकी। वह हँस रहा था और उसके गालों की चौड़ी उठी हड्डी और ऊँची हो गई थी। छोटी आँखें सिकुड़ गईं और उनके दोनो बाहरी कोनों से बहुत-सी पतली सिकुड़नें कनपटी तक फैलती हुई पहुँच गईं। उसकी हँसी में शरारत भरी थी। वह बार-बार अपना दाहिना हाथ वर्दी की कमीज की बाईं जेब पर ले जाता जो कुछ उठी थी। हम लोगों ने समझा शायद वह पाकेट बुक निकालकर अपनी याद ताजा करेगा। नाकिन गुरंग अपनी पल्टन के साथ मलाया की 'जोहोर' स्टेट में जापानियों के आक्रमण को रोक रहा था। वहाँ से लगभग पाँच मील दूर 'कुलाई' की रबड़ के पेड़ों की रियासत थी और

उसके आगे 'सीलांग' का गहरा घना जंगल जहाँ दुश्मन छिपे रहते। गुरखा पल्टन ने एक लम्बी कतार में मोटे लट्ठों और बाँसों के 'बंकर' बना लिये थे। उनके अन्दर खाई खोदकर सैनिक शत्रु की बाट जोहते। बंकर के आगे काँटेदार तार और 'माइन' का जाल बिछा था। कभी जंगली जानवर के चलने से कोई माइन धड़-से फटती। लोग समझते, जापानी जाल में फँस गये। सब अपनी राइफ़िल और स्टेन गनें सँभालते। पर वहाँ कोई चीखता जंगली सुअर या जख्मी रंभाता हुआ जंगली भैंसा दिखाई देता।

शत्रु से मुठभेड़ को सब उत्सुक, उसके रक्त के सब प्यासे। इसी आशा में समय बीतता। रात-दिन शत्रु से मिलन और संघर्ष की अटपटी बेला, जहाँ सब की आकांक्षाएँ अतृप्त रहतीं। या यों कहिए कि अटूट, विस्तृत रात का सघन अँधेरा, जहाँ न दिन का रात से सम्पर्क और न उससे बिछोह, घोर वर्षा ने प्रकृति के इस नियम को भी डुबो दिया था। बंकर में तिरपाल के तले सदा रात्रि का अंधकार और सदा लालटेन की विकल मन्द ज्योति। कभी पत्थर, बाँस, बल्लियों में रिसती हुई पतली जल-धारा खाई को भिगोती रहती और उसमें से उठती हुई पाताल-गंगा से जा मिलती। यहाँ दोनो का संगम होता। अदृश्य सरस्वती भी यहाँ तिरपाल के छिद्रों में दर्शन देने लगती और सैनिक मिट्टी से लथपथ भारी बूटों का बोझ उठाकर, पैरों को सिकोड़कर पतले तखतों पर टँगे रहते। नीचे कभी झींगुर झनझनाते तो कभी मेंढक टर्राते। सब कपड़े और शरीर भीगने से आत्मा तक तर रहती। खाई में दलदल हो जाता। इस गीलेपन में गर्मी लाने के लिए लोग अपनी सीली हुई नम सिगरेट पीते। भीगी हुई माचिस जल न पाती। उसकी सैकड़ों तीली माचिस के गीले मसाले पर रगड़-रगड़ के सब रह जाते। आखिर में निराश हो कोई लालटेन की चिमनी थोड़ी ऊपर उठाकर

उसकी जलती बत्ती से सिगरेट सुलगाता। फिर क्या, जैसे नई जिन्दगी मिल जाती। सब उसी एक जलती सिगरेट से अपनी सिगरेट का एक सिरा होठों में दबाकर, कश लेकर दूसरे सिरे को चहकाते। बारी-बारी से सबकी सिगरेटें जलती। कश पर कश खींचे जाते और खाई की गीली मिट्टी की गन्ध में, मिट्टी के तेल से टिमटिमाती लैम्प की बदबू समाने लगती और वहाँ सिगरेटों का धुआँ भारी हो तिरपाल के अन्दर घुमड़ने लगता। कभी दम घुटने लगता, और बरसात होते हुए भी लोग तिरपाल को राइफ़िल की बैनेट से या तो ऊँचा उठाते या एक ओर हटा देते।

इस समय मैं अपनी सिगरेट को जलाने का प्रयास कर रहा था। मैं माचिस पर कई तीलियाँ रगड़ चुका था, उनमें से कोई भी नहीं जली थी। माचिस को अपनी मुट्ठी में स्पर्श कर मैंने समझा कि वह कुछ गीली हो चुकी है। मैंने कैप्टेन नन्दलाल शाह का सिगरेट-लाइटर लेकर अपनी सिगरेट जलाई। जब मुँह से निकला छल्लेदार घुँघराला धुआँ ऊपर उठने लगा तब मेरी समझ में आया कि इस समय वर्षा नहीं हो रही और हम लोग किसी बंकर में नहीं वरन् खुले डेक पर हैं।

नाकिन गुरुंग अपनी कमीज की बाई जेब की बटन दाहिने हाथ की उँगलियों से अब भी घुमा रहा था और कह रहा था, 'जब कभी थोड़ी देर को भी पानी बरसना बन्द होता तो हम कुछ मन-बहलाव करने लगते। अपने भारी ओवरकोट या कम्बल को खाई की गीली जमीन पर बिछाकर बैठ जाते और ताश खेलते।' उसने कमीज की बाई जेब से एक ताश का पैकेट निकाला। 'यह मैं हमेशा अपने साथ रखता हूँ। यह मुसीबत का सहारा है और अकेलेपन का साथी।'

'वाह, क्या साथी है और क्या शौक है!' किसी ने मज़ाक करते हुए कहा।

गुरंग ने अपनी आँखें फिर सिकोड़ते हुए, शरारत से कहा, 'इसमें क्या हर्ज है। इन पत्तों में बादशाहों को देखो तो मन बादशाहों का-सा हो जाता है और अगर मेम की जरूरत हो तो तरह-तरह की रंगीन मेमों को ले सकते हो। एक बार बंकर में मेरे एक साथी ने अपनी पाकेट बुक में पेन्सिल से एक औरत की तस्वीर बनाई। क्या खूबसूरत शक्ल और क्या गालों पर बल खाते हुए उसके गेसू! ऐसा लगा जैसे कोई परी उस खाई में उतर आई हो। सब की आँखें बरछी-सी उसी पर लग गईं। वह होशियार था और अच्छी तस्वीर बनाता था पर वह तस्वीर उसकी पाकेट बुक में देर तक न रह सकी। दूसरे साथी ने वह पन्ना फाड़-कर अपनी जेब में रख लिया। सबने इच्छा की कि वह भी कुछ देर के लिए वह तस्वीर अपने पास रखना चाहते हैं। बारी-बारी से वह कागज का टुकड़ा सबकी जेबों में रहा और सब अपनी जेब को अपने दिलों में दबाते रहे।'

'वाह रे गुरंग, मुझे नहीं मालूम था नैपाल के जंगलों का गुरखा ऐसा रँगीला है! हाँ, फिर उस परी को तुमने कितनी देर अपने पास रक्खा?' हवलदार मेजर गुरुदयालसिंह ने हँसते हुए और नाकिन गुरंग की पीठ को अपने भारी हाथ से थपथपाते हुए कहा।

गुरंग कुछ शरमा गया, पर मुस्कराते हुए वह बोला, 'हवलदार मेजर, वह कागज सबके हाथ लगने से गीला हो गया। लोगों ने उसे मसल डाला। तस्वीर फीकी पड़ गई। वह परी परिस्तान को चली गई। हमारे बंकर में और भीगी खाइयों में भला वह क्यों रहती?'

उसने बताया कि लगभग बीस दिन तक ऐसे ही समय बीता। वर्षा की झड़ी अनवरत लगी रही। एक सुबह काली घटाओं की गड़-गड़ाहट के साथ अचानक एक अद्भुत घोर गर्जन! फिर बम फटने का और माइन विध्वंस होने का धड़ाका। सब सतर्क हो गये। दुरबीन लगाकर

देखने से मालूम हुआ कि दूर पर जापानी टैंक आगे बढ़ते चले आ रहे हैं। सब युद्ध के लिए तत्पर हो गये। बंकर में सबने अपना नियत स्थान ले लिया और राइफ़िल और मशीनगन का निशाना भी साध लिया। पास में धड़-से एक बम गिरा और फटा। गीली मिट्टी के लोंदे खाई में आ गिरे। ऊपर से बाँस-बल्ली उड़ गई, तहस-नहस हो दूर जा पड़ी। तिरपाल भी गुब्बारे की तरह कुछ ऊपर उड़कर मालूम नहीं कहाँ गायब हो गया। खाई की दीवालें आगे झुकने लगीं और उनमें लम्बी दरारें पड़ गईं। मालूम होने लगा कि वे धँसकर आपस में मिल जायँगी। सब बंकर से बाहर निकल आये और बाँसों के झुरमुट की आड़ लेकर लेट गये।

'टैंकों की धड़धड़ाहट बिल्कुल सर पर आ गई। जो आगे पड़ता उसे वह कुचलकर पीस डालते। अब समय लड़ने का था। कुत्ते की मौत मरने का नहीं।

'मैं और मेरे साथी उठ खड़े हुए और गोली चलाना शुरू कर दिया। एक टैंक बहुत पास था और उसमें से फायर होती हुई गोलियाँ लोगों को भून रही थीं। लोग भुनगों की तरह मरकर गिर रहे थे। मैंने बाँस के ठूँठों की आड़ लेकर एक "हेण्ड-ग्रैनेड" फेंका जो टैंक के मुहाने में से अन्दर जा गिरा। एक भड़ाका हुआ और शायद टैंक ड्राइवर वहीं खत्म हो गया होगा, क्योंकि मैंने भागते हुए जब पीछे मुड़कर एक बार देखा तब टैंक लड़खड़ाता-सा एक गहरी खाई में गिर रहा था। मैं तेज भागा और मेरा दम टूटने लगा।' कहते-कहते नाकिन गुरंग सचमुच हाँफने लगा।

'घबराने की कोई जरूरत नहीं है। तुम रुककर, साँस लेकर आगे की बात कहो।' कैप्टेन नन्दलाल शाह ने समझाते हुए कहा।

उसने एक लम्बी साँस खींची और वह बोलने लगा, 'जैसे ही मैं

कुछ देर रुका, मैंने देखा कि एक सैनिक का बाँया हाथ शरीर से दूर कट-कर गिर गया है। वह एक ओर को झुक रहा था और खून की धार पर-नाले की तरह बह रही थी। कन्धे में मांस के लोथड़े लटक रहे थे। वह कुछ होश में था। उसने दाहिने हाथ से मुझे बुलाने का इशारा किया। मैं वहाँ पहुँच गया और उसने मेरे कान में धीमे स्वर में कहा—मेरी घड़ी और अँगूठी उस हाथ में है, उसे लाकर इस हाथ में पहिना दो। मैंने बढ़कर उसके कटे हाथ से घड़ी और अँगूठी निकालकर उसके दाहिने हाथ की कलाई और उँगली में पहिना दी। मुझे मालूम था कि उस सैनिक की यह अन्तिम इच्छा थी, जिसे पूरा करना मेरा फ़र्ज़ था। वह बेहोश हो गया और मैं पास के जंगल में भागते हुए दूर निकल गया। मशीनगन और गोलों का शब्द ऐसा मालूम होने लगा जैसे मोटे कपड़े चढ़े हुए नगाड़ों का। मैं भागता रहा, भागता रहा और अन्त में एक घने पेड़ के नीचे थककर गिर गया।'

'आपकी पल्टन के और सैनिक कहाँ गये।' एक जवान ने प्रश्न किया।

'वे सब शायद ऊपर आसमान में चले गये। चमकते तारे बन गये होंगे तभी तो आकाश तारों से भरा जगमगा रहा है।' उसने ऊपर की ओर इशारा किया।

'और आप कहाँ रहे?'

'मैं जंगल का जंगली जानवर बन गया।'

'यह कैसे?'

'मनुष्यों से दूर मैं अकेला जंगल के पशु-पक्षियों के बीच रहने लगा। उस शाम जब मैंने राह खोजने की कोशिश की तो मुझे रास्ता ही न मिला। जिधर जाता उधर घना जंगल। मैं भटकता, भूला-सा रह गया।'

'कितने दिन के बाद आप वापस आये ?'

'मुझे नहीं मालूम। मैं दिन गिनना भूल गया। समय का ज्ञान भी मुझे नहीं रहा क्योंकि वहाँ पत्तों में से छनकर कभी-कभी सूर्य भगवान के दर्शन होते। मैं बनमानुष-सा बन गया, क्योंकि रात पेड़ के ऊपर बिताता।'

'वैसे भी तुम्हारी सब शक्ल लंगूर की फकत दुम की कसर है।' गुरु-दयालसिंह ने उसकी चुटकी लेते हुए कहा।

सब हँस दिये। उसने भी अपनी खीसें निपोरकर कहा, 'और मेरी दाढ़ी भी आपकी-सी बढ़ गई।'

इस उत्तर से गुरुदयालसिंह झेंप-सा गया। नाकिन गुरंग ने कुछ देर चुप रहकर फिर कहना शुरू किया, 'मैं वैसे ही रहने लगा जैसे आदि-काल में लोग रहते थे। पत्थर से पत्थर मारकर मैं बड़ी मुश्किल से आग जलाता। कभी अपनी राइफ़िल से शिकार कर हिरन का गोश्त कच्चा खाता। बैनेट की मदद से उसकी खाल उतारता। एक-एक कार-तूस मैं सँभालकर रखता। खाली कारतूस को पीटकर और काटकर मैंने मछली पकड़ने का हुक बनाया और बेलों की रस्सी बटकर मैंने डोरी बनाई। बाँस में बाँधकर बंसी बनी और मैंने उससे मालूम नहीं कितनी मछलियाँ पकड़ीं और उनको ऊदबिलाव की तरह खाया। बहुत दिनों मैंने जंगल से बाहर निकलने की कोशिश की। दिन में दिशा-भ्रम होने लगा तो कई रातों ध्रुव तारे को देखता-देखता मैं चलता। पर मैं तो घने जंगल के जाल में फँस चुका था। मुझे निश्चय हो गया कि वहीं मेरा अन्त होगा।'

'अरे भई ! शेर भी तो जंगल में अकेला ही रहता है। उस समय नाकिन गुरंग उस जंगल का राजा रहा होगा।' दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए गुरुदयालसिंह बोला।

'आदमी और जानवर में यही फर्क है। मैं जंगल का राजा नहीं था। जंगल मुझे घेरे था और मैं उसके बाहर निकल भागना चाहता था। वहाँ से निकलने में असमर्थ हो मैंने एक जगह मुस्तकिल रहने का इरादा किया। एक नाले से कुछ दूर बड़े पेड़ के नीचे मैंने बाँसों की छोटी झोंपड़ी बना डाली। जानवरों से बचने के लिए चारों तरफ नुकीले बाँस गाड़कर मैंने बाड़ा बनाया। वहाँ मैं रहने लगा। कन्द-मूल मैं खाता। एक जगह शकरकन्द के कुछ पौधे मुझे दिखाई दिये। मैंने उनको खोदकर खाया। कुछ शकरकन्द अपनी झोपड़ी के पास बो दी। ऐसे ही तरह-तरह की वनस्पति मैं खाता रहा। कभी मैं जब ज़ोर से गाता तो चिड़ियाँ चहकती हुई उड़ने लगतीं। वहाँ मुझे तेंदुओं, जंगली हाथियों के झुण्डों और खतरनाक सुअरों के दर्शन हुए। इनको देखते ही मैं पेड़ पर चढ़ जाता और पत्तों में छिप जाता। तब नीचे आता जब वे बहुत दूर निकल जाते। मैं अपनी कुटिया में आ जाता और ताशों से अकेला घण्टों तक खेलता रहता। ताश का पैकेट मेरे पाकेट में था जब मैं भागा था। उस दिन से मैं हमेशा ताश अपने साथ रखता हूँ।'

'तुम कब और कैसे उन जंगलों से निकले?' मैंने प्रश्न किया।

'मेजर साहब! शायद कुछ साल या महीने बीत गये होंगे, मैंने एक दिन बहुत मनुष्यों की आवाज सुनी। मैं उधर ही चल दिया। दूर पर कुछ लोग अपनी ही भाषा में बातचीत कर रहे थे। मैं भी चिल्लाने लगा और दौड़ने लगा। मैंने कुछ लोग देखे और उनके पास पहुँच उनसे लिपट गया। मेरी आँखों से आँसू अपने-आप बह निकले। मेरी धज देखकर वे लोग हैरान हो गये। बढ़े बाल, बढ़ी दाढ़ी, पत्तियों और बेलों से बँधा लँगोट और कन्धे पर लटकती राइफ़िल। उन्होंने शायद मुझे जंगली जाति का कोई शिकारी समझा हो या दुश्मन का जासूस।

कुछ देर तक किसी ने बात भी न की। पर जब मैंने अपनी राम-कहानी कहना शुरू किया तो सबने वह सहानुभूति दिखाई जो मेरे दिल में अमर हो गई है। वे सब भारत की सेना के सैनिक थे जो जापानियों को खदेड़कर उन जंगलों पर अपना अधिकार कर रहे थे। मैं फौजी कैम्प में पहुँच गया, पर वहाँ पहुँचते ही मुझे तेज बुखार चढ़ आया।'

'कितने दिन आप बीमार रहे?' एक सैनिक ने पूछा।

'कई दिन। मुझे मलेरिया बुखार रहा। एक दिन मैं अच्छा रहता और दूसरे दिन दाँती काँपती और ज्वर चढ़ आता। मैं कैम्प के अस्पताल में था जहाँ मेरी तरह का ही एक गुरखा डाक्टर था। मैंने समझा कि अपने देश का है शायद अच्छा इलाज करेगा। पर जब बुखार में कुछ मूर्छित-सा और कुछ होश में पड़ा मैं तड़प रहा था, डाक्टर ने कम्पाउण्डर से कहा कि इस मरीज़ को दस नम्बरवाला बुखार का मिक्स्चर दे दो। कम्पाउण्डर बोला कि दस नम्बर की दवाई खत्म हो गई है। डाक्टर ने कड़ककर आज्ञा दी कि फिर छः नम्बर का और चार नम्बर का मिक्स्चर मिला के दे दो।

'कम्पाउण्डर गिड़गिड़ाकर कहने लगा कि छः नम्बर का मिक्स्चर जुकाम के लिए है और चार नम्बर का पेट के दर्द के लिए।

'डाक्टर ने ज़ोर से कहा—कोई परवाह नहीं, तुमको गिनती नहीं आती। दोनों को जोड़कर दस नम्बर हो जायेगा। बहस मत करो।

'फिर भी मैं ठीक हो गया। शायद मौत मेरी शक्ल से दूर भागती थी।'

'तुम सदा अमर रहो! खूब फलो-फूलो!' हवलदार मेजर गुरुदयालसिंह ने कहा।

मैंने देखा कि शरारत-भरी मुस्कान नाकिन गुरंग के चेहरे पर छा गई।

५

जीवन के वे कैसे क्षण जब सहसा अस्पष्ट स्मृति मन में उभरने लगती है। वर्तमान को भूलकर बिछुड़ी अनुभूतियाँ भविष्य की अनिश्चित कार्य-शैली का सृजन करना चाहती हैं। पुरानी, मटमैली, धुँधली तस्वीरों की गहरी रेखाएँ ऊपर उठने लगतीं। भूतकाल की सुप्त प्रतिमाओं में प्रकम्पन होने लगता। वे जीवित होती प्रतीत होतीं और उनके साथ स्वप्न देखनेवाले प्राणी की भविष्य की कार्य-प्रणाली भी अचानक करवटें बदलना चाहती। मन उद्वेलित हो निश्चित सीधी राह छोड़, आवेग में, पथभ्रष्ट हो जाता। वर्तमान के शान्ति और नीरवता के वातावरण में सोया हुआ, भूला हुआ कलह एक दानव की भाँति उठ खड़ा होता और आगे आनेवाले समय पर उसकी परछाईं लम्बी और विस्तृत होती जाती। भविष्य कौतूहलमय होने लगता।

शायद यही मनोस्तिथि उस समय हवलदार मेजर गुरुदयालसिंह, हवलदार नाकिन गुरंग, नायक नरसिंहराव और कुछ अन्य लोगों की रही होगी जब वे एक गुट बनाकर डेक पर एक ओर खड़े उस सुबह बातचीत कर रहे थे। आकाश स्वच्छ था और धूप की तिरछी किरणें डेक पर जाली-सी बुन रही थीं। मैं और कैप्टन नन्दलाल शाह दूर एक ओर रेलिंग के सहारे ललित रश्मियों का नृत्य स्वच्छ सलिल पर देखने में निमग्न थे। सहसा समीर की हिलोर ने यह शब्द हमारे कानों तक पहुँचा दिये, 'जापानियों ने जंग में हमारे साथ जो जुल्म किये हैं उनका बदला लेने का अब अच्छा मौका आ रहा है।'

'क्यों नहीं, क्यों नहीं, अब हम जापान को फ़तह करने जा रहे हैं। साले जापानियों को मज़ा चखायेंगे। उन चालाक लोमड़ियों को कुत्तों की मौत मरना पड़ेगा।' दूसरा बोला।

'भाई! यह तो दुनिया का तरीक़ा है। कभी नाव नदी पर तो कभी

नदी नाव पर। अब उनको कैसा लगेगा जब हमारे भारी बूट उनके जजीरों को मसल डालेंगे और हमारे मज़बूत बाज़ू उनके गलों को घोटेंगे रबर के बैलून की तरह ऐसे और ऐसे।'

सबने खुश होकर ठहाका मारा और हँसते-हँसते गुरुदयालसिंह ने अपनी भारी आवाज ऊँची करके कहा, 'क्या बात कही है ! उन सालों को अपने जुजित्सु (एक तरह की जापानी कुश्ती) पर नाज़ था। सुना था बड़े बड़ों की नस पकड़कर वे उन्हें बेकार कर देते हैं। मैंने भी यह फ़न सीखा है। अब हम उनको वही जुजित्सु दिखायेंगे। हरामज़ादों की नस पकड़ेंगे नहीं खींचकर फेंक देंगे।

'हवलदार मेजर साहब ! जंग में ही उनकी जुजित्सु हो गई। अब वे बेकार पड़े हैं और अँग्रेज़ और अमरीकावाले उनकी नसों से खून चूसे बगैर नहीं छोड़ेंगे।'

'उनमें खून भी कहीं है। पीले-पीले चलते-फिरते मुर्दों की तरह, मगर डंक मारने में ततैयों से तेज।' किसी ने कहा।

'उन डंकों को हम डंकों की चोट पर खींचेंगे और तोड़ेंगे, हा.... हा....हा....हा।'

'जीते रहो, जीते रहो नरसिंहराव। क्या दिल की बात बोले हो?'

मैं और नन्दलाल शाह सतर्क हो यह वार्त्तालाप सुनने लगे। 'क्या बकवास इन लोगों ने लगाई है।' मैंने उससे कहा। उसने केवल 'हूँ' कह दिया और वह सिगरेट पीने लगा।

कुछ रुककर किसी ने कहना आरम्भ किया, 'नाटे छोटे जापानी खूँख्वार थे, पर यार, यह मानना पड़ेगा कि थे बहादुर।'

'क्या बहादुर थे, जंगलों में छिपकर लड़ना क्या बहादुरी है? सामने मैदान में हम लोगों का मुकाबिला नहीं कर सकते थे इसी लिए पेड़ों में और टहनियों में दुबकते-फिरते थे।'

'फिर भी जंगल की लड़ाई में हमसे आगे बढ़े थे।' पहिले बात करने-वाले ने कहा।

'तुम नहीं जानते, मैं जानता हूँ,' गुरुदयालसिंह कहने लगा, 'जब तक हम लोगों ने जंगल की लड़ाई के बारे में पूरी जानकारी नहीं की थी जापानी आगे बढ़ते रहे और जब हम वही तरीके जान गए, हमने उनको पीछे मार भगाया। अब तुम कुछ समझे या नहीं?'

'यह क्या समझेंगे। ये बन्दरों की लड़ाई को बड़ा युद्ध समझते हैं! बन्दरों की-सी शक्ल बनाकर हाथ-मुँह पर लेप लगाकर पत्तियों में छिप-कर गोली चलाना कुछ बहादुरी है! अगर जापानी बन्दर थे तो हम शेर और चीते थे।' हवलदार नाकिन गुरंग ने कहा।

'आप शेर-चीते नहीं हैं, आप तो बन्दरों से ही ज्यादा मिलते-जुलते हैं।' किसी ने कहा। सब खिलखिलाकर हँस पड़े।

'अच्छा-अच्छा, मुझे बड़ा बन्दर समझो जो तुम्हारे ऐसे छोटे बन्दरों के साथ दूसरे किस्म के पीले बन्दरों के मुल्क में जा रहा है।' गुरंग बोला।

'अब छोड़ो भी बन्दरों की बातों को। हम सब आदमी हैं और हैवानों पर हमने विजय पाई है। वहाँ हम मस्त रहेंगे।'

'सुना है वहाँ चावल की अच्छी शराब बनती है। उसी को पीकर हम सब मदहोश रहेंगे। शराब उनकी, पर दिल अपना। जो मन में आया करेंगे। वहाँ की सब्ज जमीन पर ऐश करने का हमारा हक़ है।'

'तुमने ठीक कहा। जब तक हम वहाँ रहेंगे जापान हमारे दुश्मनों का देश नहीं, हमारी ऐशगाह होगा। जो हमारी तबीयत होगी वही उनको करना पड़ेगा। हम राजा होंगे और वे हमारे दास।

यह शब्द सुनकर मुझसे नहीं रहा गया। नन्दलाल और मैं उस टोली के पास पहुँच गये। मैंने डाटकर कहा, 'आप लोगों को शर्म आनी चाहिए कि आपके विचार जापानियों के लिए ऐसे हैं। मैंने आपकी

कुछ बातें सुनी हैं। बहादुर सैनिकों को ऐसी फिजूल बातें नहीं करनी चाहिए।'

उस टोली के सब लोग चुस्ती से खड़े हो गये। हवलदार मेजर गुरुदयालसिंह गिड़गिड़ाकर कहने लगा, 'मेजर साहब ! यह हम लोगों की आपस की बातें थीं। मखौल की और हँसी की बातें। इनका कुछ ख़्याल न कीजिए। हमको नहीं मालूम था कि आप सब सुन रहे थे।'

'हमारे सुनने-न सुनने से कोई फ़र्क नहीं पड़ता। मगर आप लोगों को जापानियों के खिलाफ़ ज़हर उगलने से यहाँ क्या तसल्ली मिलती है ?' कैप्टेन नन्दलाल ने अपनी सिगरेट को उँगलियों में घुमाते हुए समझदारी से कहा।

मैंने उसका समर्थन किया।

'आप लोग सब बहादुर होते हुए ऐसी गैरजिम्मेवारी की बात करते हैं ! जापानियों से बदला जंग के मैदान में लेना था। अब वह मौका निकल गया। अब तो वह वैसे ही दबे हुए हैं। दबे लोगों पर किसी तरह की ज्यादती करना उन पर अत्याचार करना है।'

यह शब्द सुनकर सब लोग चुप हो गये। केवल एक हिम्मत करके बोला, 'साहब ! आप ठीक कहते हैं, पर जापानियों ने हम पर वह क़हर ढाये हैं जिनको हम भूल नहीं सकते।'

'जंग में सब पर मुसीबत पड़ती है। जिसका दाँव लगा वही दुश्मन पर वार करता है। लेकिन जंग के बाद बदला लेने की भावना बुरी है। जापानियों ने हथियार डालते वक्त हमारी शर्तें मंजूर की थीं, फिर बदले का क्या सवाल ?'

कहने को तो मैं ये शब्द कह गया, पर दूसरे क्षण ही ध्यान आया कि संसार के शक्तिशाली राष्ट्र भी तो इन आदर्शों को भूले हुए हैं। प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् विजयी देशों ने जर्मनी के प्रति क्या अना-

चार नहीं किये ? किन प्रतिक्रियावादी शक्तियों ने उसके आर्थिक जीवन को तहस-नहस करने में क्या कसर नहीं उठा रखी ? फिर दूसरे विश्व-युद्ध में यही भावनाएँ द्विगुण रूप से प्रदर्शित होने लगीं। उसी के फलस्वरूप हम लोग भी जापान की ओर जा रहे थे—वहाँ रहने, वहाँ अपना प्रभुत्व जमाने। संसार में कुछ ऐसी ही प्रथा चली आई है। विजय के साथ उच्छृङ्खलता और विनय के आगे धृष्टता, पराजित राष्ट्रों को पराजय का आभास कराने की स्वाभाविक रीति-सी बन गई है। तभी तो मनुष्य की बर्बरता की अलौकिक प्रशंसा और उसकी मनुष्यता को भुलाने की अदृष्ट चेष्टा निरन्तर होती रहती है। हमारे जवानों का फिर क्या अपराध ? वे भी तो उसी धारा के प्रवाह के साथ बह रहे थे। वे भी तो उसी रंग में रँगे थे। वे भी तो युद्ध के कटु अनुभवों से विकल हो अपने शत्रुओं के प्रति असीम कटुता का प्रदर्शन कर अपने अन्तर को शान्ति देना चाहते थे। शायद वे इस वार्त्तालाप के द्वारा अपनी घृणा और द्वेश को निचोड़कर अपने मन के आँचल को हलका करना चाहते हों।

कुछ भी हो पर मैंने निश्चय कर लिया कि जापान की धरा पर पग रखने के पूर्व ही मैं इन सब के नियन्त्रण को अधिक कड़ा कराऊँगा। मैं इस कुरीति और कुविचारों का प्रतिरोध करूँगा। मजाल क्या कि कोई भी भारत की सेना का सैनिक किसी जापानी नागरिक से दुर्व्यवहार करके मेरे महान देश की परम्पराओं को कलुषित करे !

मैं विचार करने लगा कि जैसे सागर के जल को कुचलता और चीरता हुआ हमारा जहाज आगे चल रहा है, उसी तरह क्या उसके फ़ौजी यात्री जापान की भूमि पर उतरते ही वहाँ के निवासियों की मनोवांछनाओं को कुचलना आरम्भ कर देंगे। क्या अपनी निर्ममता से इस सुरम्य देश की संस्कृति को विच्छिन्न करने लगेंगे, उस देश के हृदय

को विदीर्ण कर डालेंगे ? ऐसा कभी भी नहीं हो सकता। मैं ऐसा नहीं होने दूँगा। मेरा मन मनुष्यता के आदर्शों की झाँकी ले रहा था। पूर्व दिशा से उदय हुआ प्रकाश क्षितिज पर फैल चुका था।

सागर की उद्वेलित लहरों में कभी भविष्य के स्वप्न छलकने लगते, कभी छलकने के पहिले ही घुलकर विलीन हो जाते। कभी आकाश में सफेद और ऊदे बादलों की चलती परछाइयाँ मेरी स्मृति को छिपा लेतीं। मैं उनकी स्वर्णिम कोरों पर आँख लगाकर भविष्य में अधिक ज्योति भरना चाहता। उठती हुई बड़ी लहरों के टकराने से कभी जहाज अचानक हिल जाता ! मेरे मन में भी रणक्षेत्र की क्रूरता और मानव-जीवन की सहृदयता आपस में टकराने लगती। ऐसे समय मेरे पैर डगमगा जाते। मैं डेक की रेलिंग का सहारा ले लेता।

६

हमारा जल-पोत अब दक्षिणी जापान के इनलेण्ड-सी के शान्त वक्ष को चीरता हुआ आगे बढ़ रहा था। अनेकों फेनिल, गोलाकार और लम्बी लहरें पीछे उठती और दूर तक बिखरती जातीं। यहाँ के अटूट निर्मल जल-कणों की तरंगों को हम मरोड़ रहे थे, कुचल रहे थे।

जहाज के कैप्टेन ने शाम को ही घोषित कर दिया कि दूसरे दिन पौ फटते ही हम कूरे बन्दरगाह में पहुँच जायेंगे। यह इस जल-यात्रा की अन्तिम रात्रि थी। हम सब एक अजीब उत्सुकता और अधीरता का अनुभव करते रहे। सब अपना सामान समेटने और बाँधने में व्यस्त थे। शायद ही कोई उस रात अपनी पूरी नींद सोया हो।

रात-भर वर्षा की झड़ी लगी रही। यह पता भी न चलता कि कब

रात्रि के गहन अन्धकार का अन्त होगा। निशा की कालिमा प्रभात की धुंध पर देर तक छाई रही। आकाश पर गहरी घटाएँ और चारों ओर कुहासे की-सी झिलमिली इनलेण्ड-सी के नीले जल को भी मलिन किये डाल रही थी। लेकिन इस गीले मौसम में भी हम सब में फुर्ती और उत्साह की गरमी थी। हम सब उस क्षण की प्रतीक्षा में थे, जब हम कूरे बन्दरगाह की भूमि पर पग रखेंगे।

'मेजर ! अब अपने सफर का एक हिस्सा खत्म होने को है।'

'हाँ नन्दलाल।'

'और जिन्दगी का दूसरा पहलू देखना है।'

'अपनी जिन्दगी का या जापानियों की जिन्दगी का।'

'दोनो का मेजर, दोनो का।'

कैप्टन नन्दलाल ने मेरे कन्धे पर जोर से हाथ रखा।

'तुम्हारा क्या मतलब ? नन्दलाल ?'

'मतलब नहीं समझे ?'

'यही कि अब पानी पर उतराते हुए मछली की-सी यात्रा खत्म और जापान की सब्ज जमीन पर नई जिन्दगी शुरू।' उसके काले घेरों में से आँखें चमकने लगीं।

'मगर यहाँ की साके (एक तरह की जापनी मदिरा) में तुम मछली की तरह ही उतारने लगोगे।' मैंने उसकी चुटकी ली।

'साके में ही नहीं गेशा-हाऊस (जापानी नर्तकियों का नृत्यालय) में साके और साके में डूबा मैं। क्या जिन्दगी और क्या मज़ा ?'

'तुम कैसी बातें करते हो ? जापान में अभी पहुँचे नहीं और वहाँ के गेशा-हाऊस के बारे में सोचने लगे !'

'मेजर ! मैं वह मछली हूँ कि दुनिया के किसी दरिया में छोड़ दो वहीं खुश रहूँगा। हा-हा-हा-हा !' वह अल्हड़पन से कहने लगा।

'और ऐसी एक मछली जो सारे जल को गन्दा कर दे।' मैं बिगड़ने लगा।

'नाराज़ मत हो मेरे दोस्त! यह सब तो मज़ाक है। मनुष्य का जीवन भी तो मज़ाक है। मज़े से भरा बड़ा मज़ाक! देखो सुदूर पूर्व में झाँकता सूर्य भी तो बादलों की टुकड़ियों से मज़ाक कर रहा है, अठखेलियों में उलझा है।'

मैंने उस ओर देखा। वर्षा रुक चुकी थी। कुहासा छँट चला था। पूर्व दिशा से उदय हुई ज्योति क्षितिज पर फैलने लगी थी। दूर पर कूरे नगर की सुरमई रेखा दिखने लगी थी और जहाज की गति भी मन्द हो चली थी।

जैसे-जैसे हम बन्दरगाह के पास आते जा रहे थे उसका करुण और भग्न-शेष दृश्य भी अधिक स्पष्ट होता जाता था। किनारे की टूटी बिखरी इमारतें एक चलचित्र की भाँति अटूट शृंखला में बँधी-सी लगतीं। मेरा स्वप्न भी इस विध्वंस के प्रदर्शन से टकराकर छिन्न हो गया। सब लोगों की चहल-पहल में मुझमें भी जापान की भूमि पर उतरने की आतुरता व्याकुल होने लगी।

कूरे की नगरी प्रातः की धूप-छाँह की ओट में खण्डित और भग्न! न वहाँ जीवन-विहीनता की विस्तृत निस्तब्धता और न प्राण-युक्त प्रांगण की सहज उत्फुल्लता। जीवन और मरण का यहाँ अद्भुत सम्मिश्रण! जीवित लोग पीले, क्षीण जिनके चेहरों पर मुर्दनी छाई हुई थी। सामान उतारते-रखते वहाँ साँझ हो गई। खण्डित, जर्जरित, बिखरी मरी हुई-सी इमारतों में, सन्ध्या की गहन छाया में जीवन-दीप टिमटिमाने लगे। ऐसा मालूम होता जैसे किसी कब्रिस्तान में हजारों मज़ार आलोकित हो रहे हों। सब ओर उदासी और अन्यमनस्कता। काली-काली घटाएँ आसमान से उतरकर उस नगर के हृदय में समा चुकी थीं। हर घर के हर

कोने में सीलन घुसी थी और हर छत में अश्रु बिन्दु झलक रहे थे।

हमारी सेना के रहने का कुछ बड़ी इमारतों में प्रबन्ध था, जिनके कुछ भाग बम गिरने से विध्वंस हो चुके थे और कहीं गहरे गड्ढे थे। कहीं छत में लगे बड़े शहतीर लटक पड़े थे, तो कहीं उनका भार साधे दीवारों में लम्बी-टेढ़ी दरारें थीं। मुझे भी एक ऐसे ही मकान के एक कोने में रहने को जगह मिल गई। यह शायद पहिले कोई माल रखने का गोदाम रहा होगा। मैं सेना के अन्य अधिकारियों के साथ वहाँ रहता।

वहाँ पहुँचकर पहिला काम हमने यह किया कि हमारे उच्चतम फ़ौजी कमाण्डर ने हम लोगों के परामर्श से सैनिकों के लिए अनुशासन सम्बन्धी आज्ञाएँ हरएक इमारत पर लगवा दीं। उन आज्ञाओं में शिष्टता के उल्लंघन के अपराधों के लिए कड़े दण्ड का संकेत किया गया था। कभी उन आज्ञाओं को कार्यान्वित करने की देखरेख के लिए मैं नगर के कुछ भाग का निरीक्षण करता, कभी अपने कार्य से थककर मित्रों के साथ हँसी-खुशी होती। पर अकसर इतने लोगों के बीच में रहते हुए भी मेरे हृदय को अकेलापन और सूनापन द्रवित करने लगता। तब मैं अकेला मीलों दूर तक घूमने निकल जाता। यहाँ के नये स्थानों को देखने की चाह मेरे अकेलेपन को भुला देती। कुछ दिनों में मैंने कूरे नगर और उसके आसपास के स्थान पैदल चलकर देख डाले। हर ओर विगत महायुद्ध के विध्वंस का ताण्डव। मीलों तक मैंने चलकर देखा, मानव के वर्षों के संचित प्रयत्नों और आकांक्षाओं का महा-नाश। टूटे कारखाने, ऐंठे हुए गर्डर और फैक्ट्रियों के कंकाल। वहाँ था खण्डहरों का विस्तृत मूक प्रदर्शन।

लोग भी भग्नमन, उत्साहविहीन, जर्जरित, अर्धजीवित-से अपने कार्य में व्यस्त रहते। न किसी से बात, न चीत। न होठों पर मुस्कान और न उनकी तिरछी-पतली अधखुली आँखों में जीवन की चमक। सब एक-से

ढले पुतले-से। समान वेश-भूषाएँ।। सभी मटमैले-से ढीले-ढाले वस्त्र पहिने। सब चलती-फिरती ऐसी समाधियाँ जिनमें युद्ध की पराजय उनके अन्तस्तल तक में समा चुकी थीं। मौन रहकर काम करना शायद उन समाधियों की अमर साधना थी—अपने देश का निवनिर्माण करने की पुनीत साधना। सहस्रों जीवन आहुति दे चुकने के पश्चात् भी मातृभूमि की बुझती-सी ज्योति को अक्षुण्ण रखने—उसे पुनः प्रज्वलित करने की साधना में लीन।

एक दिन जब इस सुनसान और निःस्पन्द भूमि से मेरी तबीयत बहुत ऊब गई तब मैंने लहराते सागर की ओर मन चलाया। टूटे 'डाक्स' में से होता हुआ मैं किनारे पर पहुँच गया। दूर पर हरी पहड़ियाँ और पाइन के वृक्ष मुझे आमन्त्रित-सा कर रहे थे। दिन ढल रहा था और प्रकृति की छटा निहारने को नयन आतुर थे। एक जापानी पुरुष मोटर-बोट चलाने की तैयारी कर रहा था। मैं उसकी मोटर-बोट में पहिले बैठ गया और फिर अभिवादन किया! वह कुछ झिझका और फिर मुस्कान की रेखा उसके मुँह पर उभर आई। मैंने पहिली बार कूरे के निवासी को हँसने की चेष्टा करते देख उससे जापानी भाषा में प्रश्न कर ही तो डाला।

'आपको प्रसन्न देखकर मुझे आपार आनन्द मिल रहा है। आप यहाँ कितने दिनों से रह रहे हैं?'

'मैं तो यहाँ जन्मकाल से हूँ।' उसने छोटा-सा उत्तर दिया।

'अच्छा, तब तो आप कूरे नगर के बारे में सब-कुछ जानते होंगे?'

'क्यों नहीं! क्यों नहीं!'

'कभी यह भी उन्नतिशील स्थान रहा होगा।'

'अब भी है। बहुत उन्नतिशील, उद्योगशील!'

'पर मुझे तो यहाँ खण्डहर-ही-खण्डहर नज़र आये।' मेरे मुँह से निकल गया।

'आप विदेशी हैं। सब विदेशियों की आँखों में जापान आज खण्डहर नज़र आता है।'

मैं अपनी कही बात पर शर्मा कर कहने लगा, 'आप बुरा मान गये ! मेरा कहने का मतलब था कि यहाँ के घर अधिक संख्या में टूट-फूट गये हैं।'

'इसमें हम लोगों का क्या दोष है। यह विदेशियों की कृपा है।' उसने गम्भीर होकर उत्तर दिया।

'पर मैं वैसा विदेशी नहीं हूँ। मैं तो एशिया का रहनेवाला हूँ।'

'किस देश के ?'

'इण्डिया, या हिन्दुस्तान का।'

'यहाँ कैसे आये ?'

'अपने देश की सेना के साथ।'

'ओह ! तो आप भी अमरीका के जनरल मेकआर्थर की फ़ौजों के साथ हमारे देश को विदीर्ण करने आये हैं !' उसकी मुस्कराहट उसके कसकर भिंचे होठों में समा गई। उसकी गाल की चौड़ी हड्डियाँ ऊपर उठ गईं और आँखें और छोटी हो गईं। उसकी मुखाकृति पर घृणा का भाव गर्दन नीचे करके बोट चलाने में भी, नहीं छिप सका। उसके उठे हुए बाजू और मजबूत कलाइयाँ बोट को निर्धारित पथ पर लिये जा रहे थे।

मुझे आश्चर्य हुआ कि एक मोटर-बोट चलानेवाला मामूली जापानी भी विश्व की राजनीति और अमरीका के जनरल के नाम से परिचित है ! मैंने बात बदलते हुए कहा, 'हम लोग तो कुछ ही दिन पहिले यहाँ आये हैं। यहाँ के मामलों के बारे में कुछ नहीं जानते। मैं तो यहाँ की रमणीकता में उलझा आपकी मोटर-बोट में तैर रहा हूँ।'

वह कुछ न बोला।

'यहाँ के दृश्य अच्छे हैं।' मैंने फिर कहा।

उसने अपनी गर्दन दूसरी ओर मोड़ ली। वह बोट चलाने में व्यस्त था।

हम लोग कूरे की खाड़ी के एक किनारे के पास थे, जहाँ से हरी पहाड़ियाँ ऊपर उठी हुई बड़ी भली मालूम दे रही थीं। दूर तक फैले हुए शान्त गहरे नीले जल-पट के अन्तर में उनकी छाया अंकित थी।

मैं कहने लगा, 'यहाँ के दृश्य अच्छे, यहाँ के लोग अच्छे!'

वह चुप रहा।

'आपका नाम जानने की मेरी इच्छा है।'

'मेरा नाम तेरुओ ओकादा है।'

'और आपका काम क्या है?'

'मछली मारना।'

'सिर्फ मछली मारना या विदेशियों को भी पराजित करना?'

वह हँस के कहने लगा, 'नहीं, विदेशियों को मोटर-बोट में सैर कराना और उनके सवालों का जवाब देना।'

'श्रीमान् तेरुओ ओकादा, आप तो तीव्र बुद्धि के मछलीमार हैं।'

'बाहर की फ़ौजवालों से बचकर ही रहना चाहिए।' उसने कहा।

'मगर मैं तो आपके निकट आता जा रहा हूँ।'

मैंने अनुभव किया कि उसकी दृढ़ भाव-व्यंजना में कभी कभी कोमलता प्रस्फुटित हो जाती। इसी लिए मैं उस कमल की-सी कोमलता को भ्रमर की भाँति भेदकर छू लेना चाहता था।

आकाश और जल की परिधि में अस्त होते हुए अंशुमाली का आधा गोला डूब चुका था। उसकी पिघलती स्वर्णिम आभा काँपते सलिल में समाई जा रही थी। हम भी अब किनारे की ओर जा रहे थे।

★

कुछ ही दिनों में हमको मालूम हो गया कि कूरे जापान की सामुद्रिक युद्ध-कला का महत्वपूर्ण केन्द्र था। विश्व-युद्ध के पहिले से यहाँ पनडुब्बी (सबमेरीन) बनाई जाती। तोप के गोले ढाले जाते। बड़े-बड़े कारखाने दिन-रात चलते। चारों ओर से द्वीपों से घिरा, पर्वत-मालाओं से सुरक्षित 'इनलैंड सी' का लबालब भरा प्याला, जहाँ पन-डुब्बियाँ और जापानी नाविक गोताखोरी करते। उनकी युद्ध-कला के अभ्यास का बाहर के देशों को पता भी न चलता। यहाँ से तीन मील दूर एताजिमा द्वीप पर 'जापानी नैवेल ऐकेडेमी' (सामुद्रिक युद्ध-कला का शिक्षण-केन्द्र) थी, जहाँ जापानी युवक थोड़े ही काल की ट्रेनिंग के बाद जल-युद्ध के लिए सुसज्जित सैनिकों में परिणत कर दिये जाते। कूरे बन्दरगाह के 'डाक्स' भी विशाल रहे होंगे, जहाँ बड़े-से-बड़े जहाज आ सकते थे।

विगत महायुद्ध के अन्तिम काल में अमेरीका के बमबारों ने कूरे पर अन्धाधुन्ध बम-वर्षा की थी। वहाँ के बहुत-से निवासियों और सैनिकों के जीवन का अनायास ही अन्त हो गया। कितने ही समुद्र की अथाह गहराइयों में समा गये। युद्ध का यह भीषण कांड इस नगर के प्रत्येक भाग पर अंकित था।

एक दिन फिर जब इस खण्डहरों की नगरी में मेरा मन उकताने लगा, मैं स्वतः ही समुद्र के किनारे जा पहुँचा। इठलाती, अलबेली प्रभात की समीर मन को छूने लगी। दूर पर मैंने देखा : कुछ मोटर-बोट जल पर भागी जा रही थीं, कुछ चलने को तैयार और कुछ किनारे पर बँधी थीं।

तेरुओ ओकादा के साथ बोट की सैर की याद आ गई। कितनी मज़े-दार, मर्म-स्पर्शी वह सैर थी और कैसे बाह्य रूखेपन की अस्पष्ट मधुरता का सामंजस्य लिये बोट का वह अधेड़ चालक था। भूला-भूला-सा मैं

मोटर-बोट और किश्तियों के जमघट के पास पहुँचकर ज़ोर से पुकारने लगा, 'मिस्टर तेरुओ ओकादा! मिस्टर तेरुओ ओकादा! क्या वह यहाँ हैं? मोटर-बोटवाले तेरुओ ओकादा!'

कुछ लोग मेरी ओर देखने लगे। वे सब एक-से लग रहे थे। उनमें से एक व्यक्ति ने तेरुओ ओकादा का नाम ज़ोर से लिया। मुझे लगा जैसे जल को स्पर्श करती हुई इस शब्द की ध्वनि जापानी स्वर में प्रतिध्वनित होने लगी हो। एक मोटर-बोट में जाल और रस्से सँभालता हुआ जापानी उधर देखने लगा। मैंने पहिचान लिया कि वह तेरुओ ओकादा है। मैंने हाथ ऊपरकर उसे अपनी ओर आने का इशारा किया और वह हँसने लगा।

क्षण-भर में मैं उसकी मोटर-बोट में पहुँच गया।

'आप फिर आ गये?' उसने पूछा।

'हाँ, मेरा मन था कि आज फिर आपके साथ समुद्र की सैर करूँ।'

'पर इस समय तो मैं मछली पकड़ने जा रहा हूँ।'

'मैं भी चलूँगा।'

'चलिए। यदि आप चाहते हैं!'

'शायद आपकी तबीयत ज़मीन पर कम लगती है और पानी में ज़्यादा। क्या आप भारत की जल-सेना के सैनिक हैं?' उसने हँसकर कहा और उसकी श्वेत दन्त-पंक्ति दिखने लगी।

'नहीं, मैं तो पैदल-सेना में हूँ, मगर आपके इस सागर की छटा ने मेरे मन को हर लिया है।'

वह फिर चुप हो गया।

'आप इतना कम क्यों बोलते हैं? क्या मुझ पर विश्वास नहीं करते?'

उसने फिर भी कुछ उत्तर नहीं दिया। नीची गर्दन करके उसने

मोटर-बोट को चलाया। बोट का अगला भाग जल के ऊपर उठ गया और वह तीव्र गति से लहरों पर भागने लगी। तेज़ हवा से हमारी आँखें बन्द हुई जा रही थीं और हमारे कपड़े उड़े जा रहे थे। तेरुओ ओकादा कोई गीत गुनगुनाता बोट को ठीक राह पर ले जा रहा था। हम लोग एक अर्ध जल-मग्न जापानी युद्धपोत 'हरूना' के पास से निकले। हरूना टूटा पड़ा था—जिसका अधिक भाग जल में डूबा, केवल थोड़ा-सा भाग जल के ऊपर टेढ़ा उठा हुआ। उठे भाग के अन्तिम छोर पर एक सफेद बगुला एक पंजा सिकोड़े दूसरी टाँग पर खड़ा था। मूर्तिवत्-सा वह भक्ति की उस मुद्रा में था, जहाँ मत्स्य-रूपी प्रसाद पास आने पर वह सहज से ही एक झपट में ग्रहण कर सकता था। हमारी बोट की घड़-घड़ाहट से भी वह विचलित नहीं हुआ।

लगभग पाँच मील दूर जाने के बाद तेरुओ ओकादा ने एक छोटे द्वीप के किनारे मोटर-बोट रोक दी। उसने जाल पानी में बिछाना शुरू किया और मैंने उसकी सहायता की। यह सब करते हुए भी न कोई बात, न चीत। चुप रहते हुए मुझे काफ़ी समय हो गया था और मेरी जिह्वा में खुजली-सी होने लगी थी। मैंने बोलने का निश्चय करके कहा, 'ओकादा सान (मिस्टर) इस स्थान से एताजिमा का द्वीप कितनी दूर है?'

'पास ही है। पर आपने इस द्वीप के बारे में प्रश्न क्यों किया?' उसने आश्चर्य से कहा।

'मैं भी तो अब कूरे का निवासी हो चुका हूँ। उसके आसपास के मुख्य स्थान जानना भी चाहिए। और फिर एताजिमा में तो जापानियों का बड़ा शिक्षण केन्द्र भी था।'

वह कुछ संशंकित हो पूछने लगा, 'आप हमारे देश के मामलों को जानने की चेष्टा करनेवाले फ़ौजी गुप्तचर तो नहीं हैं? विदेशी बड़े ख़तरनाक होते हैं।'

'नहीं, नहीं, मेरे मित्र ओकादा ! मैं ऐसा कोई काम नहीं करता। मैं आपको धोखा नहीं दूँगा। सत्य पर अटल रहना हमारे देश की पुरातन परम्परा है। मेरा विश्वास करो।' मैंने उसके कन्धे पर अपना पूरा हाथ रखते हुए कहा।

वह फिर भी चुप रहा। उसने अपनी आँखें सिकोड़ लीं और एक ओर सागर की लहरों पर एकटक देखता रहा।

मैंने उसे थोड़ा झकझोर डाला और मैं बोलने लगा, 'आप लोगों में अविश्वास बहुत गहरा हो गया मालूम देता है। किसी देश में जन्म लेने के नाते एक प्राणी उस देश का निवासी तो अवश्य कहलाता है पर तो भी उसे सारे संसार का मनुष्य कहलाने का तो अधिकार है ही। मनुष्यता से मनुष्य विश्व का नागरिक हो सकता है—देश और जाति की परिधियों के परे, धर्म और परिवार के बन्धनों से मुक्त।

'ऐसा भी हो सकता है।' तेरुओ ओकादा का चौड़ा वक्ष जल्दी साँस लेने से ऊपर-नीचे हो रहा था।

'फिर आप मेरा विश्वास क्यों नहीं करते ?'

'मैं विश्वास करूँगा। मैं भी जापानी सैनिक था। एक सैनिक दूसरे सैनिक को जब वचन देता है तो वह अटल विश्वास से प्रेरित होकर।' उसने मेरा गर्म हाथ अपने ठण्डे, भीगे हुए हाथ में ले लिया। वह कहने लगा, 'मैं एताजिमा ऐकेडेमी का छात्र रह चुका हूँ। मैं अपने देश की ज़ल-सेना का अफ़सर था। आज जापानी जल-सेना का नाविक विरोधी दल के सैनिक से सन्धि करता है।' उसने मेरा हाथ ज़ोर से दबाया और उसकी सहज मुस्कान पूरे मुख पर छा गई।

'और यह सन्धि युग-युग तक स्थिर रहेगी।' मैंने भी दृढ़ता से कहा।

एक निमिष जापानियों और भारत के बीच लड़े गये कठोर युद्धों की स्मृति बिजली की तरह मेरे मन में कौंध गई। फिर जैसे विदीर्ण

क्षितिज के वक्ष की गहरी दरारों को रुपहले, हल्के, रंगीन बादलों ने भर दिया। ऐसे ही दो बादल के टुकड़े पश्चिम और पूर्व से उड़ते हुए आ मिले। दोनों के मिलन में अदृश्य उद्‌गार उभरने लगे। घटाएँ उठने लगीं। सम्पूर्ण आकाश अटूट मद-भरे बादलों का प्रांगण बन गया। सारी वायु में सुगन्ध भर गई। दूर पर हरी-हरी सोई-सी पहाड़ियाँ जागने लगीं और फिर प्रेम-बिन्दु छलकने लगे—रंग-भरे, स्नेह से बोझिल बरसात के बड़े-बड़े जल-बिन्दु।

७

एक शाम मैं अकेलेपन को भुलाने के लिए लगभग पाँच मील नगर से दूर निकल गया। चलते-चलते पैर भारी होने लगे और पिंडलियों में मीठी-मीठी पीड़ा रेंगकर नसों में एक जगह रुकने लगी। माथे पर छलकते मोती, गालों पर से बहती हुई धारा और गर्दन से उद्‌गारित स्वेद-निर्झरिणी सब मिलकर मेरे वक्ष पर बहने लगी। मैंने अपनी कमीज की बटनें खोल डालीं। पास के वृक्ष से एक टहनी तोड़ मैं अपने ऊपर पत्तों का चँवर डुलाने लगा। कुछ चैन मिलने के बजाय मेरे जल-युक्त शरीर के अन्तर में रेगिस्तान का सूखापन समाने लगा। जैसे-जैसे गले के ऊपर पसीना बहता उसके अन्दर खुश्की की अनेक नालियाँ-सी बनती जातीं—ठीक वैसी ही जैसी मायेबोन के विकट युद्ध-स्थल में खाई में पड़े-पड़े कभी पानी समाप्त हो जाने पर गहरी होती जाती थीं। कैसे सूखे और कठोर वे अनुभव, कैसे रोमांचकारी और कैसे निर्जल, विकल तड़पानेवाले! प्यास से गला सूखता और गोलियों से प्राण सूखते! कहीं जल की खोज करना भी दुर्लभ!

मेरा तर तालू सचमुच सूखा हो तड़कने लगा। होठों के कोने चिप-

कने लगे। रस-भरी जिह्वा उन पर अपने-आप चलने लगी। जहाँ मैं दम लेने को रुका था उसी स्थान की नम ज़मीन पर अपनी छड़ी के नुकीले छोर से मैं कई रेखाएँ कुरेदने लगा। जैसे-जैसे वे रेखाएँ स्पष्ट होतीं मेरे गले की सूखी नालियों में गहरापन बढ़ता जाता। जी चाहता कि उनको जल से लबालब भरकर कितनी बड़ी नहरें बना डालूँ।

सड़क छोड़कर मैं एक जंगली मार्ग पर हो लिया। ऐसा लगा मानो दूर पर पहाड़ियों के खुरदुरे कंगूरे बादलों में निहित जल-राशि से तृप्ति करना चाहते हों। मैं उन पहाड़ियों को फोड़कर बहनेवाली किसी निष्क-लुष जल-धारा को ढूँढ़ निकालना चाहता था। यही खोज-बीन करते-करते मैं उस राह के अन्तिम छोर तक पहुँच गया, जहाँ नीची चहारदीवारी के अन्दर पत्थर, ईंट और लकड़ी की बनी अनेकों छोटी-बड़ी इमारतें थीं। एक अधेड़ जापानी टहलते-टहलते मुझे देखकर रुक गया। आश्चर्य और शंका उसके चेहरे पर प्रकट हो ही रहे थे कि मैंने जापानी भाषा में उससे अभिवादन किया, 'कोन्निचिवा' (जिसका अर्थ है सन्ध्या समय का प्रणाम) फिर कुछ रुककर पीने को जल माँगा।

वह पास की इमारत में से एक गिलास जल ले आया और मैं एक साँस में उसे सोख गया। फिर दूसरा गिलास और तीसरा गिलास खाली करके जब चौथे गिलास को मैं रुक-रुक पीने लगा तब उसने कहा, 'बहुत प्यासे मालूम होते हो?'

'हाँ, बहुत प्यासा? दूर से चलकर आ रहा हूँ। यदि आप आज्ञा दें तो उस बेञ्च पर बैठ जाऊँ?' पास में पड़ी लकड़ी की एक बेञ्च का सहारा लेते हुए मैंने कहा।

'अवश्य। आप कहाँ से आ रहे हैं?'

'कूरे नगर से।'

'पैदल?'

'हाँ !!'

'ओह, इतनी दूर से। यहाँ क्यों आना हुआ ?' मैंने देखा उसकी पतली-नुकीली आँखें मुझ आगन्तुक पर बरछी की तरह लगी थीं। शायद मुझे चीरकर वे अन्दर तक का भेद ले लेना चाहती थीं।

'मैं थका-हारा भटकता पथिक इसी राह पर आ निकला।'

'इस जंगल के रास्ते ! क्यों ? यहाँ तो कोई आसानी से पहुँच नहीं सकता।'

जल पीने के बाद मेरी तबीयत हरी हो चली थी और बातचीत करने की उत्कण्ठा भी जगने लगी थी।

मैंने उत्तर दिया, 'आप समझते हैं कि घने पाइन के वृक्ष इस मग को रोक सकते हैं ? जब मैं इतने सागर पारकर आपके देश में आ सकता हूँ तो क्या क्रूरे नगर से यहाँ पहुँचना सम्भव नहीं ?'

'सम्भव है। पर अधिकतर विदेशी यहाँ नहीं आते। दुर्गम रास्ते की वजह से।' उसने नम्रता से कहा।

'मैं बहुत प्यासा था। आपने मुझे जल नहीं अमृत पिला दिया। इसी अमृत को संचित किये हुए यहाँ की लतिकाएँ और बनस्पति मुझे आपके निकट ले आईं।'

'आपको जंगल का दृश्य शायद अच्छा लगता है।'

'बहुत अच्छा, क्योंकि मेरे भी देश में प्राकृतिक सौन्दर्य है।'

'किस देश में ?'

'इण्डिया या भारतवर्ष में।'

'हाँ, इण्डिया भी तो एशिया का ही एक भाग है।' उसने कहा।

मुझे एक निमिष बर्मा और अराकान के घने जंगलों की याद आ गई। उन जंगलों में मैं कितना पैदल चला था ! कैसे टेढ़े-मेढ़े रास्ते, जिनको पारकर हम थककर किसी बड़े वृक्ष के तने के सहारे बैठ जाते ! ठंडी

समीर के साथ नीचे गिरी पत्तियों की नम, गीली बदबू नाक में जाने लगती। नथुने फैलने लगते, फड़कने लगते। एक अजब तरह की दवाइयों की-सी बदबू वायु के एक झोंके के साथ मेरी नाक में भरने लगी। मैंने चट से सवाल कर दिया, 'क्यों महाशय ! यह क्या स्थान है ? इन इमारतों में क्या होता है ?'

वह चुप रहा। सशंकित-सा वह अपने मोटे चश्मे में दूसरी ओर देखने लगा। उसकी छोटी आँखें चश्मे में से और छोटी लगने लगीं।

मैंने फिर कहा, 'आपने मेरे सूखे गले की प्यास तो बुझाई पर अब मेरी मानसिक प्यास तो शान्त कीजिए।'

वह फिर भी कुछ नहीं बोला। बातों के क्रम को मोड़ने की चेष्टा करते हुए वह कुछ देर बाद बोला, 'और आप मेरी शंका का समाधान पहिले कीजिए। इतने दूर देश से आप यहाँ क्यों आये ?'

मैंने समझा कि हम दोनो में होड़-सी लगी है कि कौन किसके विषय में पहिले जानकारी करने में सफल हो। इस द्वन्द्व की निरर्थकता को समझते हुए मैंने अपने शिथिल शरीर को ढीला कर बेञ्च के सहारे आराम दिया और फिर मैं कहने लगा, 'महाशयजी ! हमारे देश में सत्य को हम छिपाने का प्रयास नहीं करते। सत्य सूर्य की तरह जाज्वल्यमान होता है। इसी लिए मैं आपको बताता हूँ कि मैं अपने देश की तेजस्वी सेना का सैनिक हूँ। हम लोग कूरे में रहते हैं।'

यह सुनकर वह एक कदम पीछे हट गया। आश्चर्य में उसने केवल इतना ही कहा, 'ओह ! दूसरे देश की सेना के सैनिक !'

'हाँ, हाँ, पर अब तो कहिए कि यह स्थान क्या है ?'

'यह स्थान....यह स्थान....इसको जंगली जगह समझिए।'

'देखिए, आप मुझसे सब बातें पूछकर अपनी बातों पर पर्दा डालने का प्रयत्न कर रहे हैं।'

'नहीं तो ।' वह कुछ घबरा-सा गया ।

'तो फिर मैं जंगली जगह का क्या अर्थ समझूँ ?'

'यही कि यह जगह जंगल में है ।'

मुझे हँसी आ गई और मैं कहने लगा, 'आप तो मुझसे पहेली-सी बुझा रहे हैं । इस समय हम-आप सब जंगल में हैं ।'

'हाँ !' उसने छोटा-सा उत्तर दिया ।

'आप तो इस पास की पहाड़ी के पत्थर-से लगते हैं जो मनुष्य के सम्पर्क से भी नहीं पसीजते ।' मैंने कहा ।

'ऐसा नहीं है । मैं मनुष्य-जाति का सेवक हूँ ।'

'क्या मतलब ?'

'मैं डाक्टर हूँ ।'

हवा के दूसरे झोंके ने मेरी नाक के भीतर तक दवाइयों की दुर्गंधि भर दी ।

मैंने पूछा, 'तो क्या यह कोई अस्पताल है ?'

'हाँ । पर किसी से कहना नहीं । तुम्हें मेरी सौगन्ध ।' उस अधेड़ जापानी ने मेरे कन्धे पर अपना हाथ रखते हुए कहा ।

'मुझ पर विश्वास रखिए । आप डाक्टर, नर-नारियों की पीड़ा हरनेवाले चिकित्सक, मेरा सौभाग्य जो आपके दर्शन कर सका ।'

यह बात सुन उसकी गम्भीर मुद्रा पर मुस्कान की रेखा दौड़ गई । उसकी चौड़ी नाक के नीचे दोनो होंठ फैलने लगे। उसने उत्तर दिया, 'मैं इस चिकित्सालय का मुख्य चिकित्सक हूँ ।'

'डाक्टर ! अब हम सैनिकों का काम भी आपके देशवासियों की सेवा करना है । मुझे आपका देश और यहाँ के निवासी बहुत अच्छे लगते हैं ।'

'वीर सैनिक और विश्वासपात्र डाक्टर सब देशों के लिए आवश्यक हैं ।'

'हम आपके पास दूर देश से आये हैं—आपसे मित्रता का हाथ बढ़ाने, आपकी गम्भीरता को मधुर मुस्कान में परिणत करने।' मैंने उठकर उसका हाथ अपने हाथ में लेकर बातों की झड़ी लगा दी, 'आप लोग कितने परिश्रमशील और अल्पभाषी होते हैं! मेरी तरह से अधिक बोलनेवाले नहीं।'

उसने दूसरे हाथ से अपने मोटे चश्मे को सँभाली। उसके ऊँचे माथे पर एक सिलवट पड़ गई और उसने केवल यही कहा, 'मुझे भी इण्डिया के निवासी कुछ-कुछ भरोसे के लोग लगे। पर वह पिछले युद्ध में मजबूर थे।'

'कैसी मजबूरी?'

'यही कि उनको हमारे देश से लड़ना पड़ा।'

'डाक्टर! आप ठीक कहते हैं। हम लोगों को आपके विरुद्ध कुछ परिस्थितियों के कारण युद्ध करना पड़ा। वैसे हम शान्त स्वभाव के लोग हैं। हमारा देश विश्व-शान्ति चाहता है।'

'क्या यह आपके देश की नीति है?'

'मेरी समझ में तो यही नीति है। हमारा इतिहास इसकी पुष्टि करता है। मनुष्य की समानता और बन्धुत्व का प्रचार हमारे देश में गौतम बुद्ध ने किया था। आपके देश में भी यह धर्म अपनी चरम सीमा पर पहुँचा हुआ है। इससे गहरा बन्धुत्व का नाता और कहाँ मिल सकता है?' मैं एक दार्शनिक की भाँति कहता चला गया।

उसकी मुस्कान अब और चौड़ी होकर सारे चेहरे पर फैल चुकी थी। छोटी आँखें सिकुड़कर और पतली हो गईं। गम्भीरता का बाह्य आवरण भी हटने लगा। वह कहने लगा, 'सैनिकों में शान्ति की चर्चा मैंने आपसे ही सुनी। अधिकतर तो सैनिक अपने अस्त्र-शस्त्रों से असंख्य हृष्ट-पुष्ट लोगों के अंग छिन्न-भिन्नकर हम डाक्टरों के पास भेजते रहते हैं।'

'पर रण में हम सैनिकों में भी कभी सहानुभूति जगने लगती है। यह गुण केवल डाक्टरों की ही धरोहर नहीं है।'

यह सुनकर वह हँसने लगा। उसकी श्वेत दन्त-पंक्ति में दो ऊपर के साने के मढ़े दाँत चमकने लगे। उसकी हँसी में प्राणियों के प्रति सद्भावना निखरती प्रतीत होने लगी। मेरे पूछने पर उसने बताया कि उसका नाम डाक्टर तोशियो तनाका है। इस चिकित्सालय में सुबह से शाम तक काम करके वह रोगियों की सेवा करता है।

अब सन्ध्या ढल रही थी, पर डाक्टर से बातें करने की इच्छा मुझमें प्रबल थी। यह विचारकर कि इस इच्छा की पूर्ति मैं फिर किसी दिन करूँगा मैंने उससे कहा, 'डाक्टर! आप एक व्यस्त व्यक्ति हैं। मुझे भी दूर जाना है। यदि आपको सुविधा हो तो फिर किसी शाम को आपके पास आऊँ।'

'अवश्य आइए। मेरा यह समय खाली रहता है।' डाक्टर ने उत्तर दिया।

मैं वहाँ से चल दिया। कितने विचारों का काफ़िला मेरे मस्तिष्क में चल रहा था? मुझे मालूम ही न हुआ कि वापसी की मेरी मंजिल कब खत्म हो गई।

★

एक सप्ताह बाद मैं सन्ध्या समय फिर डाक्टर तोशियो तनाका के चिकित्सालय पहुँच गया। फाटक के पास टहलते देखकर मैंने अभि-वादन किया और वह निःसंकोच मुझसे कहने लगा:

'मैं तो कई दिन से आपकी बाट जोह रहा था। फिर सोचा कि यह स्थान दूर होने के कारण आप शायद समय न निकाल सकें।'

'नहीं, डाक्टर! फ़ुर्सत तो आप लोगों को कम मिलती है। मुझ-जैसे भ्रमण करनेवाले को समय की क्या कमी? और फिर समय बचाने का

यह साधन तो है।' मैंने अपनी साइकिल एक ओर रखते हुए उत्तर दिया।

'तब तो आपसे कुछ देर बातचीत हो सकेगी। चलिए, मेरे साथ चाय पीने की कृपा कीजिए।' डाक्टर मेरी बाँह पकड़ते हुए बोला।

'चलिए।' और मैं उसके साथ-साथ चलने लगा।

हम लोग डाक्टर के छोटे-से लकड़ी के मकान में पहुँच गये। कमरे में एक चबूतरे पर मोटी 'तातामी' (एक तरह की मोटी चटाई) पर बिछे 'ज़बुतोन' (रुई भरी गद्दी) पर हम बैठ गये। जूते नीचे उतार अपने देश का रीति के अनुसार पैर सिकोड़कर मैं जम गया। कमरे में सादगी मगर सफाई थी। सब वस्तुएँ तरतीब से लगी हुईं। एक ओर 'तुकोनोमा' (आलमारी) में लाल रंग का चिकना गोल एक गुड्डा-सा रक्खा था जिसके न हाथ और न पैर। दूसरी ओर एक कोवीन (गुलदान) में सजाये हुए फूल।

मेरी आँखें उस गोल गुड्डे पर फिर आ अटकीं और मैंने प्रश्न कर ही डाला, 'डाक्टर यह क्या वस्तु है?'

'इसको हम लोग "दरूमा" कहते हैं। यह उस भारतवर्ष के बौद्ध सन्त की प्रतिमा है जो छठवीं शताब्दी में नौ वर्ष तक अडिग तपस्या करता रहा। इसके आगे सर झुकाने से वरदान मिलता है। उसके वस्त्र शायद लाल थे इसलिए इस प्रतिमा का भी रंग लाल है।'

मैंने झुककर दोनों हाथ जोड़ अपने देश के उस सन्त को प्रणाम किया, जिसका मान इतने दूर देशवासी इस अनन्य भक्ति से करते हैं। बौद्ध धर्म की विशालता और दृढ़ता मन में समा गई। मैंने विचार किया कि शायद जापानी शब्द 'दरूमा' अपनी भाषा के 'धर्म' से लिया गया हो और सन्तों के गेरुए वस्त्र यहाँ लाल रंग में परिणत हो गये हों। धूनी रमाये, आराधना में रत, मुझे भारत के साधु-सन्तों का ध्यान हो

आया। नेत्र बन्दकर मैं एक निमिष के लिए धर्म और अनुष्ठान के जगत् में पहुँच गया और किसी ताम्रपात्र में से उठता धुआँ जैसे मेरी नाक में जाने लगा। जब आँखें खोलीं तो मैंने देखा कि डाक्टर तोशियो तनाका अपने 'किसेरू' (एक तरह का जापानी सिगार) में तम्बाखू रखकर पी रहा था और उससे निकले धुएँ के बिखरते छल्ले कमरे में तैर रहे थे।

मैंने कहा, 'डाक्टर! बौद्ध धर्म की विराटता और महानता पर मुझे गर्व होने लगा है क्योंकि उसके निर्माता और अधिष्ठाता हमारे भारत में उत्पन्न हुए थे।'

वह कुछ देर चुप रहकर बोला, 'मैं आपसे एक प्रश्न करना चाहता हूँ। आपको महात्मा बुद्ध पर गर्व है पर आपके देशवासी युद्ध के नये-नये वैज्ञानिक शस्त्रों के बारे में क्या विचार रखते हैं? विज्ञान के नवीन साधन विश्व-शान्ति के लिए उपयोगी होंगे अथवा उसके लिए अभिशाप?'

'डाक्टर तोशियो तनाका! आपका प्रश्न महत्वपूर्ण है। मेरी समझ में हमारा देश तो उसी को उन्नति का पथ मानता है जो संसार को मानसिक और सामाजिक शान्ति की दिशा में ले जाय। यदि विज्ञान के नवीन अन्वेषण देशों को अधिक पास ला सकें तो वह मनुष्य की ज्ञान-वृद्धि में सहायक होंगे।'

'आपने बहुत सही बात कही। मेरे और आपके विचारों में समानता है। आप सैनिक होते हुए भी मुझे अच्छे लगते हैं।' डाक्टर ने अपने 'किसेरू' में एक लम्बा कश खींचकर कहा। उसके चमकते, पीछे को कढ़े बालों के नीचे माथे पर दो-एक सिलवटें उभर आईं।

'लीजिए, अब चाय पी जाय।'

छोटा नाटा एक जापानी 'ओबोन' (एक तरह की ट्रे) में चाय और उसमें सजे मनमोहक खाद्य-पदार्थ ले आया। मैंने जापानी ढंग से प्याले

को अपनी हथेली पर रक्खा और लम्बे घूँट लिये। फिर प्लेट से एक तरह की केक का टुकड़ा खाकर प्रशंसा की।

'अन्को का एक टुकड़ा और लीजिए।'

'अन्को ! क्या चीज ?' मैंने विस्मय से पूछा।

'यही केक। इसको हम अपनी भाषा में अन्को कहते हैं। यह सोयाबीन और शक्कर वगैरह से बनती है।'

'मैं आपसे इसका नुस्खा लूँगा। डाक्टरों से नुस्खा लेना भी चाहिए।' मैंने मजाक में कहा।

'मैं नुस्खा भी देता हूँ। और मरीजों को अच्छा भी करता हूँ।'

'हाँ ! याद आया। उस दिन आपने इस अपने अस्पताल के बारे में कुछ नहीं बताया था। यह यहाँ कब से है ?' मैंने प्रश्न किया।

'छोड़ो इन बातों को। हम लोग तो अधिक महत्त्वपूर्ण विषय पर बात कर रहे थे। विज्ञान के बारे में। संसार की शान्ति-व्यवस्था के बारे में।' उसने अपनी आँखें छोटी करके मोटे चश्मे को सम्भालते हुए कहा।

मुझे ऐसा लगा मानो डाक्टर चिकित्सालय की बात टालना चाहता है। मैंने निश्चय किया कि मैं उससे यह पूछकर रहूँगा। फिर अपना असली उद्देश्य छिपाते हुए मैं कहने लगा, 'आजकल तो संसार के देशों में और जातियों में भय और संशय बहुत गहरा हो गया है।'

'मैं मानता हूँ।'

'और विज्ञान के नवीन साधन तो हमारा सर्वनाश किये दे रहे हैं। हमारा मानसिक और शारीरिक खण्डहर बना रहे हैं।'

'हाँ, चारों ओर खण्डहर-ही-खण्डहर हैं। कूरे नगर तो खण्डहरों का अटूट समूह है।'

'पर आपका चिकित्सालय तो ठीक है। यह शायद युद्ध की भयं-

करता से बचा रहा होगा।'

'नहीं मेरे मित्र ! यह इमारतों का खण्डहर नहीं, वरन् प्राणियों का खण्डहर है।

'यह आप क्या कह रहे हैं ?' मैंने विस्मय से पूछा।

'सच, बिल्कुल सच। यह रोगियों की प्रदर्शनी है। वे एक दिन अच्छे-भले चलते-फिरते व्यक्ति थे और अब नये-नये रोगों से ग्रसित ऐसे रोगी बन गये हैं जो शायद कभी भी अच्छे न हो सकें।' डाक्टर की आँखों में गीलापन था, जिसको उन पर लगा मोटा चश्मा भी न छिपा सका।

'ऐसा कौन-सा रोग? कैसे रोगी? मुझे बताओ। मैं जानना चाहता हूँ। मैं सुनने को अधीर हूँ।' मैंने उद्विग्न हो डाक्टर का हाथ पकड़कर कहा।

'शि ! शि !' उसने अपने मुँह पर एक उँगली रखकर यह शब्द किया। फिर धीमे स्वर में मुझ से कहा, 'मैं किसी को अपने चिकित्सालय और रोगियों के बारे में नहीं बताता। लेकिन आप मेरे मित्र हैं, विश्वासपात्र मित्र। आप किसी से कहेंगे तो नहीं ?'

'नहीं !' मेरी दोनो आँखें आतुरता से बहुत चौड़ी और गोल हो गई थीं।

'मेरे चिकित्सालय में अणु-बम के प्रभाव से पीड़ित रोगी हैं।'

'अणु-बम ! अणु-बम !!'

यह सुनकर मेरे रोंगटे खड़े होने लगे। भय की भयंकरता अपनी सीमा पर पहुँच गई। एक अजब विह्वलता का तूफ़ान मन में उठने लगा, जिसने मेरी अन्तरात्मा को भी कँपा दिया। जी चाहने लगा कि मैं भागकर चिकित्सालय के हर रोगी को गले लगा लूँ, जो मृत्यु की अवहेलना कर अब भी जीवित थे। कैसा वीभत्स और केन्द्रित शक्ति

का अपार रूप—अणु-बम ! सब बमों का दानव रूप—अणु-बम ! नश्वरता का मूल-मन्त्र, अणु-बम !

अचानक एक तेज भड़ाका और फिर शान्त ।

'क्या डर गये ? हवा के तेज झोंके से खिड़की का एक पल्ला बन्द हो गया था । क्या आपने समझा यहाँ बम फूटने लगे ?'

'नहीं, डाक्टर तोशियो ! नहीं, नहीं ! यहाँ बम कहाँ ? अब तो युद्ध समाप्त हो चुका ।' मैंने अपने को संभालते हुए कहा ।

'पर उसकी यादगारें बाकी हैं । लो, एक प्याला चाय और पीयो ।'

मैंने काँपते हाथों में चाय के प्याले को अपने होठों से लगा लिया। मेरे मन में सहानुभूति की सरिता उफनकर अपने कूलों के ऊपर छलकने लगी । डाक्टर का हाथ दबाकर मैं कहने लगा, 'मुझे भी उन रोगियों को देखने का अवसर दीजिएगा । मैं भी उनकी सेवा करना चाहता हूँ ।'

'फिर किसी दिन । सैनिकों का काम तो प्राणियों पर प्रहारकर उनको रोगी बनाना है । रोग का निराकरण, उसका उपचार, और मानव-मात्र की सेवा हम डाक्टरों का कर्त्तव्य है ।'

मैंने खिड़की में से देखा अर्द्ध चन्द्र श्यामपट में से झाँकने लगा था । कुछ तारिकाएँ भी टिमटिमाने लगीं । समय अधिक हो चुका था । डाक्टर तोशियो तनाका को धन्यवाद दे मैं अपनी साइकिल पर चढ़ के चल दिया, अपनी टूटी-फूटी खण्डहर की-सी बैरक की ओर ।

८

तेरुओ ओकादा और उसकी मोटर-बोट मेरी सैर के साधन बन चुके थे । जब जी ऊबता मैं उसके साथ हो लेता। उसके मजबूत बाजुओं के इशारे पर जल पर उतरानेवाला यह वाहन बहता । कभी

मेरा भुजबल भी उसकी गति-वृद्धि करता और मेरे मन में गुदगुदी होने लगती। कभी वह और कभी मैं अपनी-अपनी भाषा में लोक-गीत उच्च स्वर में गाने लगते। भाषा तो अलग-अलग रहती पर गीत के बाद की हँसी और खिलखिलाहट में अपूर्व सामंजस्य और रस भर जाता।

उसकी मोटर-बोट में हम दोनो 'इनलैण्ड सी' में दूर निकल गये थे। सन्ध्या की अनेकों समीर एकाकार हो मानो जल में उत्फुल्लता का ज्वार ले आई। बोट डगमगाने लगी और हम उसको सन्तुलित करने लगे।

'ओकादा ! इस शान्त सागर में यह हलचल कैसी ?'

'इस समय हर ओर उभार है। हर ओर रंग है। वे पहाड़ के शिखर कितने ऊँचे ! शिखरों पर लाल सूर्य का कलश कैसा रंगीन ! उसकी रूपहली, स्वर्णिम राशियाँ मानो ऊँचे आकाश को छू लेना चाहतीं। इसी लिए हमारी छोटी हल्की बोट भी लहरों की चोटी पर रहना चाहती है। डरो नहीं। मैं तो नाविक हूँ।'

'यही इत्मीनान है कि मैं एक अनुभवी नाविक के साथ हूँ, जिसने शायद बहुत-से सागर की गहराइयाँ खोज डाली होंगी।' मैंने कहा।

'बहुत-से सागर की तो नहीं, किन्तु हाँ, मैंने कुछ में तो पनडुब्बी के बेड़े के साथ घण्टों जल के नीचे समय बिताया है। बहुत-से दुश्मन के जहाज़ों की तली को फोड़ डाला—मिट्टी के घड़ों की तरह।'

'आपके देश के वायुयान और सामुद्रिक बेड़े—दोनो ही तो दूसरे देशों के जल-पोतों के पीछे बुरी तरह से पड़ गये थे। सन् १६४१ का पर्ल-हार्बर और हवाई के हवाई-अड्डे पर आक्रमण की याद करके अब भी अमरीका के सेनानी के दिल दहल जाते होंगे।'

'उन दिनों की क्या याद करना ? तब हमारे देश के प्रताप का

प्रसार था। आपने सुना होगा कि हमारी सेनाएँ हांक-कांग, बोर्नियो, और सोलोमन के द्वीप ले चुकी थीं। हमारे वायुयानों ने गुआम और फिलीपीन्स पर बम बरसाये थे। बेटेविया, मलाया और बर्मा तक इस देश का विस्तार था—ऐसा विस्तार और तेज जैसा नवोदित प्रभाकर का।' तेरुओ ओकादा ने क्षण-भर में पूरे युद्ध का दिग्दर्शन-सा करा दिया।

'क्यों नहीं, क्यों नहीं। आपका देश तो संसार का वह भाग है जहाँ से, कहा जाता है कि, सूर्य उदय होता है।'

'इसी-लिए मेरे देश ने सब पूर्वी देशों को एक नया मार्ग दिखाने की ठानी—आर्थिक उन्नति का, स्वावलम्बन का।' ओकादा ने कहा।

मैं इस कथन से सहमत न होकर चुप हो गया। क्यों विवाद किया जाय, क्यों देशों की कूटनीतियों पर टिप्पणी की जाय? हम सबको पूर्ण-तया विदित हो चुका था कि इस क्षेत्र का नेतृत्व करने की जापान को उत्कण्ठा थी। अपनी विजय की चरम सीमा पर उसने चीन के मुख्य भाग मंचूको, मलाया और बर्मा से माल लाद-लादकर जापानी फैक्ट्रियों और मशीनघरों में पहुँचाया था। परन्तु यह विजय और आर्थिक उद्योग का बहाना क्षणभंगुर ही रह सका। और फिर जापान के सागर से उठी विजय की उद्विग्न लहर उसी में समाने लगी।

'तुम क्या विचार करने लगे मेरे मित्र? हमारा यह स्वप्न पूरा भी न होने पाया था कि अमरीका की जल-सेना ने अपनी शक्ति संचित कर हम लोगों पर आक्रमण कर दिया।' वह बोला।

'हाँ, तेरुओ ओकादा! मैंने सुना है जल और थल के उन भीषण युद्धों के बारे में।' मैंने छोटा-सा उत्तर दिया।

'आपने केवल सुना ही है। पर मैं तो कोरल सागर और सोलोमन द्वीप के बीच में किये हुए जल-युद्ध में लड़ा हूँ। कितने हमारे जल पोत

और उन पर कितने सिद्ध-हस्त नाविक जल में समा गये। एक भी अपने स्थान से नहीं डिगा। पर मैं अभागा जीवित बच गया।'

'आप अभागे क्यों? आप तो अपने देश के भाग्य का नव-निर्माण करने को जीवित हैं। अगर आप न होते तो भला मोटर-बोट में यह मज़ेदार सैर कैसे होती?' मैंने उससे कहा।

वह सूखी-सी हँसी हँस दिया। जापान की पराजय शायद उसके अन्तस्तल को द्रवित कर रही थी। वह लहरों की अठखेलियों के परे एकटक आँख गड़ाये देख रहा था। गहरी साँस लेकर वह कहने लगा, 'अब इसी इनलैण्ड सी की छोटी-सी झील में सदा उतराते रहना है। हमारे विशाल सागर तो दूसरों के अधिकार में हैं। मालूम नहीं कभी मैं स्वच्छन्द हो उन जल-क्षेत्रों को अपना बना सकूँगा या नहीं!'

'क्यों नहीं, जापान तो अब भी स्वच्छन्द है। हम लोग तो केवल कुछ काल के लिए आपके अतिथि हैं।'

'अगर सब आपकी तरह के अतिथि होते तो कितना अच्छा था। हम अतिथि-सत्कार करते। उनको सर-आँखों पर रखते।' वह कुछ सोचता रहा फिर सहसा कहने लगा, 'मैं आपको अपना अतिथि समझता हूँ—अपना पक्का मित्र। आपको कल अपने यहाँ भोजन कराऊँगा। मैं दिखाऊँगा कि जापानी भी अतिथि-सत्कार करना जानते हैं। यह निश्चय है कि कल रात्रि मैं आपको बोट में लेकर अपने घर ले चलूँगा।' उसने मेरे कन्धे को अपने भारी हाथ से दबाया।

मैंने अनुमति दे दी और वह प्रसन्न हो गया।

आज उसकी हँसी में गहरे विषाद की छाया-सी समाई थी। बार-बार वह अपने देश की असफलता का ज़िक्र करता। कभी कहता कि विजेता राष्ट्रों ने उसके देश को कितना छोटा कर दिया है। छोटा ही नहीं, वरन् विध्वंस और परवश! वह ऊँचे स्वर में अपने आन्त-

रिक ताप को प्रदर्शित करने लगा।

'विजयी देशों ने हमसे उत्तर में क्यूराइल द्वीप और दक्षिण में र्‍यूक द्वीप ले लिये। कोरिया और मंचूरिया में हमारे आधिपत्य का अन्त हो गया और अब हम अपने ही द्वीपों में बन्दी बन गये।'

'क्यों विकल होते हो ओकादा! प्रत्येक देश और राष्ट्र के भाग्य में सागर की तरह ज्वार-भाटा आया करता है। जापान फिर स्वतन्त्र होगा और फिर शक्तिशाली होगा। आप ऐसे चतुर नाविक ही इसके भाग्य की नौका को पार लगाएँगे।'

हम दोनो को वापस लौटने की जल्दी थी इसी लिए मोटर-बोट की गति उसने तीव्र कर दी। पर्वत-शिखर से उतर सूर्य का अर्द्ध भाग आकाश और सागर की गहरी नीली परिधि में समा चुका था। उसकी कांचन-आभा पिघलकर जल पर फैल चुकी थी।

★

दूसरे दिन मैं नियत समय पर ओकादा की बोट के पास पहुँच गया। वह मेरा इन्तज़ार कर रहा था। आज उसके कपड़ों में नवीनता और स्वच्छता, चेहरे पर चिकनाहट और हँसी, बालों में तेल और पैरों पर पालिश किये हुए जूते थे। इस नयेपन में केवल एक चीज़ पुरानी—वह थी उसकी अल्हड़ता, जो ये आवरण नहीं छिपा सके। वह बहुत भला लग रहा था। गले में बँधा, बल खाता ढूली रूमाल उसमें रंगीनी भर रहा था। हर्ष से हाथ मिलाते हुए उसने मुझसे कहा, 'चलिए आज आप मेरे क़ब्जे में हैं। मैं आपको बहुत देर तक नहीं छोड़ूँगा।'

'आपके क़ब्जे में तो पहिले दिन मिलने के बाद ही से आ गया हूँ। जब तक जी चाहे अपनी बोट में रखिए।'

'बोट में थोड़ी देर और, मकान में बहुत समय तक।'

'मैं तो आपके मकान में बन्दी बनने को तैयार हूँ। मेरी बैरेक से

तो हर जगह अच्छी होगी।'

यह सुनकर वह हँस दिया। हँसी और उल्लास उसके प्रत्येक अवयव को पुलकित-सा कर रहे थे। अपनी मज़बूत कलाइयों से उसने मोटर-बोट चलाना शुरू किया और हम पवन की गति से उड़ने लगे।

वह कहने लगा, 'मित्र ! जैसे आप और हम प्रसन्न हैं कहीं वैसे ही यदि सब राष्ट्रों के नागरिकों में प्रेम हो जाय तो शायद विश्व-युद्ध कभी भी न हो।'

'युद्ध की आवश्यकता ही क्या है। एक दिन हम आपके देशवासियों के विरुद्ध लड़े थे—कितनी भयंकरता और विषमता थी आपस में। पर आज, आज हम और आप एक हैं। कौन कह सकता है कि दो देशों के प्राणी हैं ?'

'परन्तु मेजर ! सब लोग तो ऐसा विचार नहीं करते। तभी तो कुछ शक्तिशाली देशों ने मिलकर यहाँ अपनी फ़ौजें उतार दी हैं। यहाँ सुप्रीम कमाण्डर नियुक्त कर दिया है।'

मैं चुप रहा। उसकी लचीली त्वचा आगे-पीछे हो रही थी। आकाश में बादल भाग रहे थे और शायद उससे भी आगे उसके वक्ष में दबे, सिमटे उद्गार। उसका चौड़ा सीना ऊपर उठने लगा। आँखें सिकुड़कर छोटी हो गईं। सर्प-जैसी फुफकार मारते हुए वह कहने लगा, 'कैसा अंधेर है ! हमारे मुल्क को बरबाद करके यहाँ बाहरी सेना रखना कहाँ का न्याय है ? हमारे देश के छोटे-छोटे द्वीप भला इतना भार सहन कर सकते हैं ? और फिर आपस की घृणा और द्वेष !'

'अब युद्ध समाप्त होने पर भी आप लोगों के मन में आन्तरिक संघर्ष चल ही रहा है। आपके रंगीन द्वीप तैरते कमल-से और हम दूर देश से आये मधुप यदि कुछ रस लेकर चल भी दिये तो आपको इतना क्यों क्षोभ ? आप तो सदा रस-प्लावित रहेंगे ही।' मैंने कहा।

उसकी गम्भीर मुद्रा में फिर कमल खिलने-से लगे। उससे केवल इतना ही कहते बन पड़ा, 'हम लोगों के पुराने विचार धीरे-ही-धीरे बदलेंगे मेजर! शत्रुओं से मित्रता कहीं एक दिन में होती है ?'

'इस नौका ने तो दो शत्रुओं में मित्रता एक दिन में ही करा दी।'

'क्या आप शत्रु थे ? कभी नहीं, ऐसा विचार भी न करना। मेरे गहरे, प्यारे दोस्त! अपने देशवासियों से भी अधिक भरोसे के मेरे साथी!'

मैं अपनी प्रशंसा सुनकर झेंप गया।

बोट हिलोरों के शिखरों को चूमती-सी, अर्जित अरमानों के पर लगाये, रंगीन, निःस्पन्द बादलों की छाया में उड़ती जा रही थी। उसकी उड़ान तब रुकती-सी मालूम हुई जब एक झटके से वह तीर पर जा लगी।

हम दोनो कुछ सीढ़ीनुमा धान के खेतों के किनारों से होकर ऊपर चढ़ने लगे। तेरुओ ओकादा बताता जाता कि यह उसके खेत हैं, जिनकी देखरेख उसकी स्त्री और बच्चे करते। खेत पारकर हम लकड़ी के एक छोटे साफ़ मकान के दरवाज़े पर पहुँच गये। बाहर फुलवारी और उसमें रंग-बिरंगे फूल। वैसी ही रंगीन फूलदार किमोनो पहिने एक स्त्री ने हमारा स्वागत किया।

'यह हैं हमारे इण्डिया के मित्र और यह मेरी स्त्री रेइको।' तेरुओ ओकादा ने कहा।

मैंने झुककर प्रणाम किया। हम सब एक छोटे कमरे में चटाई के ऊपर रंग-बिरंगे छोटे गद्दों पर बैठ गये। जापानियों के कई घरों को मैंने देखा है। वहाँ-जेसी सफ़ाई और चमक शायद ही कहीं मिलती हो। सुथरापन ही नहीं किन्तु, गहरे रंगों की रंगीनी, अद्भुत वस्तुओं से कमरे में सुन्दरता और सब जगह क़ायदा और तरतीब। घर की बनावट से

लेकर उसकी सजावट तक उस देश की भिन्न सभ्यता प्रगट होती है। इस कमरे में भी दीवारें फूलदार रंगीन कागज़ से मढ़ी थीं। एक दीवार में हुक से लटकता हुआ एक कण्डील, जो मैंने पहली बार यहीं देखा। मछली की रंगीन खाल से बना वह लैम्प समझिए जिसके अन्दर प्रकाश होता है। मैं उत्सुक हो पूछने लगा, 'ओकादा! यह क्या मछली की-सी वस्तु।'

'मेरे घर में मछली दीवार पर चढ़ जाती है और वहाँ से लटककर चमकती है।' उसने हँसकर कहा।

'नहीं। तेरुओ कभी सीधी बात नहीं कहता। इसी लिए मैं इस पर बिगड़ जाती हूँ। इसको हम अपनी भाषा में फूगू-जो चिन (Fugu-Jochin) कहते हैं। मछली की खाल से बनी लैम्प। हम मछली मारने-वाले, उसकी खाल तक काम में ले आते हैं।' रेइको ने अपना किमोनो सम्हालते हुए कहा।

दुहरे बदन की मझोले कदवाली वह गोरी बातें करने में मुझे चट-पटी मालूम दी। उसका गोल भरा चेहरा और उसमें पतली सुरमीली आँखें सतर्क-सी। छोटी चिबुक और उसके ऊपर छोटे होठ् जब जल्दी-जल्दी चलने लगते तो वह बातों की झड़ी लगा देती। जब वह हँसती, तो आगे के दाँतों की रक्षा-सी किये हुए अगल-बगल के उठे हुए ऊपर के दाँत पहिले दर्शन देते। उसकी वाक्शक्ति ही कर्मठ नाविक तेरुओ ओकादा पर अंकुश रखती और वह कभी सहम जाता। सबसे अनोखे ढंग के थे उसके लहराते-से केश जो फुलाकर एक अजब तरीके से बाँधे गये थे। बायें हाथ से एक पंखा झलते हुए वह कहने लगी, 'आपके बारे में तेरुओ मुझे सब बता चुका है। हम लोगों को कितनी प्रसन्नता है कि आप यहाँ आज आये।'

'सौभाग्य मेरा, आपके पति तो मेरे प्रगाढ़ मित्र हैं। कितने सहृदय

हैं वे ।'

'उनकी सहृदयता क्षणिक और कठोरता स्वाभाविक, निरन्तर । सहृदयता तो बड़ी-छोटी मछलियाँ जानती होंगी, जिन्हें मार कर ये रोज़ लाते हैं । अपने को चतुर सैनिक और सफल नाविक समझते हैं । पर जैसे हैं मैं जानती हूँ—भूले-से, अटपटे-से, एक आदर्शवादी ।' रेइको ने ओकादा पर फब्ती कसते हुए कहा ।

'मछली न मारूँ तो काम कैसे चले ?' ओकादा बोला ।

'और हम सब खेत में और बाग में काम न करें तो शायद मछली-मार नाव में पड़ा-पड़ा ऊँघता रहे ।' उसने चट से उत्तर दिया ।

'युद्ध-काल में तो आपको अपने खेतों में बहुत काम करना पड़ता होगा ?' मैंने प्रश्न किया ।

'कुछ पूछिए मत । रात-दिन काम । खेत में काम, बाग़ में काम, पड़ोसियों के काम और देश के काम ।'

'यह क्या ? मैं समझा नहीं ।' मैंने कहा ।

'हज़रत तेरुओ ओकादा तो अपने युद्धस्थल पर चले गये और रह गईं हम स्त्रियाँ और बच्चे । हम पर भार पड़ गया हवाई हमलों से बचाव करने का । हम बोरों में रेत भर-भरकर अपनी पीठ पर लाद ऊँची-ऊँची जगह पहुँचाते और मकानों के चारों ओर लगाते । पानी के कनस्तर ढो-ढोकर बड़ी टब भरते । और न मालूम क्या-क्या करते ।'

'तभी तो आपने जापान को बचा लिया । इसी लिए इस देश के बच्चे तक बहादुर और निडर हैं ।' मैंने प्रशंसा की ।

'मगर यह देवीजी समझती हैं कि ज़िन्दगी की कठोरता इन्हीं ने सबसे ज़्यादा झेली है, हम सैनिकों ने नहीं ।' ओकादा बीच में कहने लगा ।

'आप चुप रहिए । जब आप यहाँ थे ही नहीं तो आपको हमारी कठि-

नाइयों के बारे में क्या मालूम ?' उसने ओकादा को झिड़क दिया और कहने लगी, 'कभी हम आग बुझाने की मश्क करते। किसी पेड़ पर तेल का डिब्बा रखकर आग लगा दी जाती और हम स्त्रियाँ उसे लम्बे बाँस और बल्लियों से बुझातीं। जब यह काम खत्म होता तो घर का काम। और सबसे बड़ा काम राशन लाना। लोग चिल्लाते—हाय क्यूगा-मेरी-मशीता (Hai kyu-ga mairi mashita—मतलब राशन आ गया) और हम सब लाइन लगाकर खड़ी हो जातीं और एक-एक करके राशन लेतीं। इसमें बड़ा समय लगता—कभी घण्टों लग जाते।' वह कहती जा रही थी।

'मगर आप लोग तो मछली अधिक खाते हैं। मछली तो आपको खूब मिल सकती होंगी।' मैंने पूछा।

'कहाँ मछली! कुछ दिनों ताज़ी मछली मिली, कुछ हम लोगों ने पकड़ी। और फिर जब हवाई हमले होने लगे तो सूखी-साखी मछली से काम चलाना पड़ा।'

'अच्छा तो मछली की बातें ही करती रहोगी या मछली बनाकर भी खिलाओगी ?' ओकादा ने कहा।

'ज़रूर खिलाऊँगी। कुछ खाना तैयार है, कुछ यहीं बनाऊँगी अपने अतिथि के लिए।' कहकर वह रसोईघर में चली गई।

'बड़ी बातूनी है मेरी रेइको। जब तक इसके पास बैठो बराबर कान खाती रहती है।' ओकादा कहने लगा।

'आपका सौभाग्य है कि आपको इतना काम करनेवाली और मन-बहलाव करनेवाली स्त्री मिली।' मैं बोला।

वह हँस दिया और मैंने अपनी आँखें कमरे में रक्खी सब अनूठी वस्तुओं में उलझाना आरम्भ किया। एक ओर दीवार पर चमकदार और नक्काशी की मूठवाली कुकरी एक दूसरे को क्रास किये लटकी थीं।

दूसरी ओर छोटी मेज़ पर लकड़ी का बना जहाज़ का एक छोटा नमूना। तोकोनोमा के बीचोबीच लगी अत्यन्त चतुराई से बनाई गई एक पेंटिंग, जिसमें बाँस के वृक्ष और उसकी लम्बी पत्तियों के बीच बैठी दो छोटी चिड़ियाँ। उसके नीचे रक्खी अष्टधातु से बनी गौतम बुद्ध की एक प्रतिमा।

मेरे पूछने पर ओकादा ने बताया कि कुकरी एक सैनिक का अस्त्र ही नहीं वरन् उसके घर की शोभा है। बाँस के झुरमुट में अंकित ये दो पक्षी इस घर के दाम्पत्य जीवन के अपार स्नेह के परिचायक हैं।

'यह बुद्ध की प्रतिमा कहाँ की है ?' मैंने पूछा।

'हमारे देश के तीर्थस्थान नारा में अधिष्ठित दायेबुत्सू की महान प्रतिमा की छोटी नकल।'

दायबुत्सू की उस छोटी प्रतिमा की गम्भीर मुद्रा मानो हम लोगों को उपदेश देती-सी प्रतीत होने लगी। मेरे स्वप्निल नयनों के आगे बौद्ध धर्म के उपदेशों की दीप्तिमान अनेकों रश्मियाँ मानो उस छोटे कमरे में और वहाँ से प्रसारित हो पूर्ण निवासस्थान में भरने लगीं। वह मूर्ति ज्योति की केन्द्र-सी बन गई—शतशत किरणों का स्रोत, अनुपम प्रकाश का पुंज। सन्ध्या की अटपटी वेला में प्रभात की-सी आभा निहार मैं चकित होने लगा और मेरे मुँह से यह शब्द बरबस निकल पड़े, 'जापान में तो हर घर मन्दिर है, जहाँ अनेक रूप में एक ही ठाकुर और उसके असंख्य अनन्य पुजारी। फिर भी बाहर अशान्ति और देशों के प्रति द्वेष। कैसी यह विडम्बना ?'

'किन्तु घर के अन्दर तो शान्ति है। परिवार तो यहाँ सुख का स्रोत है। यहाँ स्नेह है। बाहर तो देशों में कलह मचा है। उस द्वन्द्व में कुछ राष्ट्र हमें दबोचना चाहते हैं। उनके लिए वे कुकरी टँगी हैं—वे तेज़ धारदार, बड़े टेढ़े चाकू। यहाँ टेढ़ों के लिए टेढ़े हथियार....' तेरुओ ओकादा ने कुछ रुष्ट होकर आवाज ऊँची करते हुए कहा।

'और यहाँ अच्छे लोगों के लिए स्वादिष्ट भोजन-सामग्री।' बीच में बात काटते हुए रेइको बोली। हमारी बातों की भनक शायद उसके कानों में पड़ चुकी थी जब उसने कमरे में प्रवेश किया।

खाना खाने की नीची मेज़ पर अनेक रंगीन सजे हुए पदार्थ सामने आ गये और हम सब पैर सिकोड़कर तैयार हो गये। मेज़ के एक सिरे पर श्रीमती रेइको अपने फूलदार किमोनो का दामन सम्हालकर बैठीं और बेल-बूटे अंकित प्यालों और प्लेटों पर से ढक्कन हटाये तो गर्म भाप की खुशबू, खिड़की पर चढ़ी लता में लगे गुलाब के फूलों की भीनी सुगन्ध के साथ मिश्रित हो दिमाग़ को तर करने लगी और मुँह में पानी ले आई। ऐसा लगने लगा जैसे इस छोटे-से घर में चारों ओर फूल खिले हैं और हर वस्तु में सुन्दरता का निखार है। प्याले में भरे स्वच्छ सूप में फूल-पत्तियों की शक्ल के कटे सब्जियों के टुकड़ों को उतराता देखकर और एक घूँट लेकर मैं बोला, 'श्रीमती रेइको, आपने तो खाना बनाने में कमाल कर दिया। कितनी सुन्दरता भर दी है हर ओर!'

'अपने मित्रों को प्रसन्न करने की क्यों न चेष्टा की जाय। अब अधिक प्रशंसा न करके आप गर्म गर्म-खाना खाइए।' उसने अपनी गोरी पतली उँगलियों से पास में रक्खी अँगीठी पर 'सुकियाकी' (एक तरह का सब्जी-गोश्त इत्यादि से बना खाद्य-पदार्थ) पकाते हुए कहा।

'हाँ, इस समय भोजन अधिक कीजिए और बातें कम।' तेरुओ ओकादा ने सूप का प्याला खाली करते हुए कहा।

'मुझे याद है इनके एक मित्र ने एक बार भोजन कम किया था और इधर-उधर की बातें अधिक। मैं इस बार ऐसी गलती नहीं होने दूँगी। आपको छककर खाना पड़ेगा।' रेइको ने कहा।

'क्यों नहीं! क्यों नहीं! इस सुन्दर स्वादिष्ट खाने को कौन नहीं जी भरकर खायेगा! और फिर मैं तो फौजी मैस में खाना खानेवाला

हमेशा भूखा-सा ही रहता हूँ ।' मैंने उत्तर दिया ।

वह सुकियाकी बनाकर हम लोगों को परोस रही थी और उसका सर नीचे झुका था । ऊपर-नीचे लहराते-सँवारे उसके केशों पर रोशनी की झलक और परछाइयाँ नाच-सी रही थीं । मैं एकटक उधर देखता रहा । अचानक मेरे मुँह से निकल गया, 'क्षमा कीजिए, आपके केशों की लहरें कितनी चमकती हैं और कितनी भली हैं !'

उसके गालों पर गुलाबी चढ़ने लगी और वह कहने लगी, 'धन्यवाद, लड़ाई के ज़माने में जब हम स्त्रियाँ अपने केश सँवार कर किसी "ब्यूटी पारलर" से निकलतीं तो अधिकतर मुझसे कहतीं "ओ मेडेटो" (O medeto अथवा बधाई-बधाई) ! मेरे केश सदा से अच्छे रहे हैं और उनकी देखभाल भी मैंने बहुत को है ।' रेइको ने कहा ।

'तुम्हारी क्या चीज़ नहीं अच्छी मेरी रेइको !' ओकादा ने हँसकर कहा ।

'हर समय मज़ाक करना अच्छा नहीं ।' रेइको ने अपने सर को हल्का झटका देते और अपनी बातों का तार जोड़ते हुए कहा, 'हाँ तो उस समय सब "पारलर" में बिजली आना बन्द हो गया था और केश सँवारने में कठिनाई होने लगी थी । फिर भी केश सँवारनेवाले हमारे बालों पर जलते कोयले के छोटे-छोटे टुकड़े रखकर गर्म करते और बहुत-सी लहरें डालते । कितने वे चतुर थे ! वहाँ हम स्त्रियों की भीड़ लगी रहती । वे भी क्या दिन थे !' रेइको की बातों का क्रम चल निकला था ।

अँगीठी में से फ़र्श पर गिरे जलते कोयले के एक टुकड़े की ओर इशारा करके, ओकादा बोला, 'तुम सुन्दरता के लिए आग के जलते कोयलों को भी सर पर चढ़ा सकती हो, पर इस कोयले को तो जल्दी हटाओ नहीं तो चटाई जल जायगी ।'

उसने चौप-स्टिक से 'सुकियाकी' को खाना आरम्भ कर दिया था ।

'क्या खूब है आपका यह खाना !' मैंने प्रशंसा की।

'फ़ौजवाले तारीफ़ करना खूब जानते हैं। जब तेरुओ युद्ध में चला गया था, मैं बैरकों में से फौजी गाना "बैन्ज़ाई-बैन्ज़ाई (Banazai)" सुना करती थी। हरएक रात को शायद खाना-पीना होता था और सुबह को सैनिक जहाज़ों में बैठ-बैठकर दूर देशों को चले जाते थे। एक दिन हमारे देश का एक सैनिक इधर से होकर अपनी बैरक की ओर जा रहा था। उस दिन मैंने अपने बच्चों के लिए सुकियाकी बनाई थी। उस सैनिक को भी एक प्लेट दे दी। उसे खाकर, भूरि-भूरि प्रशंसा करता, होठों पर जोभ फेरता हुआ वह चला गया।' वह पुरानी बातों की याद करने लगी।

मैं सचमुच अपनी जीभ होठों पर फेरकर 'सुकियाकी' का स्वाद ले रहा था। चट-से जिह्वा अन्दर सिकोड़कर मैं कहने लगा, 'वह भी मेरा ऐसा भटकता हुआ कोई सैनिक रहा होगा। मैं भी तो युद्ध के कारण अपने देश से आपके देश में भटक आया हूँ।'

सब हँसने लगे। हँसी-खुशी, उमंग और स्वाद से मैं बहुत देर तक भोजन करता रहा। रेइको गरमा-गरम खाना बनाकर देती जाती। मैं उस परिवार का स्नेह-भाजन हो चुका था और आज भी हूँ।

६

दिन की काँपती किरणों के ढलाव और आसमानी, सिलेटी बादलों के चढ़ाव के समय मैं डाक्टर तोशियो तनाका के छोटे-से घर में था। कोने की खिड़की के पार क्षितिज पर रंग गहरा होता जाता....रुई के पहल के से उड़ते बादल एकत्रित होते जाते। डाक्टर के किसेरू से उठता धुआँ भी उसी ओर जा रहा था, क्योंकि जब उसके हाथ से मेरे कन्धे का स्पर्श हुआ

और मैंने मुड़कर देखा तो वह मेरे पास खड़ा गहरे कश खींच रहा था।

'क्या देख रहे हो मेजर ?'

'आपके अस्पताल पर चढ़ती काली घटाएँ।'

'इनका क्या देखना ? ये रोज़ उठती हैं और बरसकर अदृष्य हो जाती हैं।'

'अस्पताल के ऊपर का ही दृश्य देखकर मन भर लेता हूँ, क्योंकि उसके अन्दर तो देखने की आपकी आज्ञा नहीं।'

वह अपनी सीपी-सी पतली आँखों को मोटे चश्मे के अन्दर मिचकाकर हँसने लगा।

'तिरछी बातें भी मैं समझ सकता हूँ।' उसने अपने कन्धे कुछ सिकोड़कर कहा।

'क्यों नहीं, तिरछे-बाँके चाकू चलानेवाले डाक्टर क्या नहीं समझ सकते ! पर मेरी बातें तो सीधी हैं। उन काले बादलों के परे मैं कुछ भी नहीं जान सकता। आपके चिकित्सालय के अन्दर तो मेरी उत्सुकता को शान्ति मिल सकती है।'

'फिर यों क्यों नहीं कहते कि चिकित्सालय में चलना चाहते हो ? उसमें रहनेवाले टूटे-फूटे रोगियों को देखना चाहते हो—हमारे देश के उन खंडित भग्न शवों को, जिनकी साँसों का क्रम अब तक नहीं टूटा है।' यह कहते-कहते डाक्टर एक क्षण रुककर गंभीर हो गया। उसके ललाट पर पहिले कुछ सिलवटें उभरीं और उनमें से कुछ छोटे-छोटे जलकण कनपटी तक छा गये। दोनो होठ समेटकर वह फिर बोलने लगा, 'मैं बाहर के देशवासियों को इस चिकित्सालय में पग भी नहीं रखने देता। वे शायद हमारी हँसी करें, मज़ाक उड़ायें। हमारे देश की रज से बने वे पुतले कभी भी दूसरों के मनोरंजन के साधन नहीं बनेंगे। मैं ऐसा कभी नहीं होने दूँगा....कभी....नहीं....नहीं....'

डाक्टर की साँस तेजी से चलने लगी। उसकी उच्छ्वसित मनोभावनाओं से वातावरण भारी होने लगा। उधर काली घटाएँ फूट-फूट कर रोने लगीं। मैं कुछ सशंकित-सा, कुछ हतबुद्धि-सा केवल यही कह सका, 'डाक्टर तनाका! आप तो मुझे जानते हैं। मैं तो आपके देशवासियों के दुःख में सदा समवेदना प्रगट करता रहा हूँ। भला रोगियों के कष्ट में कौन सुख ले सकता है? खेद तो यही है कि उनकी पीड़ा कोई भी बँटा नहीं सकता। डाक्टर ही पीड़ा का और रोग का निराकरण कर सकते हैं।'

'अच्छा चलो। पहिले नायलोन का मास्क पहिनो जिससे रेडियो-ऐक्टिव प्रभाव से बच सको।' उसने कहा।

मैं गर्दन नीची कर उसके पीछे-पीछे हो लिया। मैंने और डाक्टर ने वे मास्क धारण किये और फिर आगे बढ़े।

हम दोनो एक लम्बा बरामदा पार कर एक और बड़े कमरे में पहुँचे। वह कमरा क्या था एक अजायबघर था। एक ओर जाली के कटघरों में कुछ चूहे फुदक रहे थे। शीशे से बने एक बड़े तालाब में तरह-तरह की मछलियाँ तैर रही थीं। पास में जाली से मढ़े चौकोर चौखटों में सफेद खरगोश। दूसरी ओर कोने में मेज़ पर खड़ी एक बिल्ली बिल्कुल स्थिर और एकटक हमें घूरती हुई-सी। कमरे की आधी छत पर शीशे लगे हुए जिसमें से सूर्य की किरणें नीचे रक्खे फूल और वनस्पति के गमलों को जीवन-दान देतीं। कुछ दूर एक बाड़े में बन्द भेड़ों का एक जोड़ा और दो छोटे मेमने कभी-कभी में-में करने लगते; उनकी छोटी दुम हिलने लगती।

'डाक्टर, आप तो जनवरों के भी शौकीन मालूम होते हैं।'

'हाँ, मैं सभी जीवधारियों से प्रेम करता हूँ।' उसकी मुद्रा अभी तक गम्भीर थी।

'अच्छे डाक्टर की यही पहिचान है। हर जानदार वस्तु को चाहना और हर वस्तु में जान कायम रखना।' मैंने कहा।

'जीवन की देन तो "ओशाका समा" (Oshaka sama—भगवान बुद्ध) के हाथ में है।'

'पर जीवित प्राणी तो आपके हाथ में है। हाँ, तो आपके मरीज़ कहाँ हैं ?' मैं पूछने लगा।

'मरीज़ों को बाद में दिखाऊँगा। पहिले मेरी इस अनुसन्धान-शाला को देखो।'

'अनुसन्धान-शाला या पशु-प्रदर्शनी ?' मेरे मुँह से यह शब्द अचानक निकल गये।'

'कुछ भी समझो। मेरे लिए यह अनुसन्धान-शाला है—अणु-बम की विभीषिका से सम्बन्धित अन्वेषण का कमरा, इस चिकित्सालय का मुख्य अंग।'

मैं किसी चक्र-व्यूह में घिरा, चकित, उस सैनिक के समान था जिसे कोई मार्ग ही न दिखता हो। सब चौकड़ी भूलकर मैं भी एक मृग-शावक की भाँति उन जीवों के समूह में मिला जा रहा था। मेरी किं-कर्त्तव्यविमूढ़ता पर शायद तरस खाकर तोशिया तनाका कहने लगा, 'मेरे मित्र, मैं तुमको यहाँ की एक-एक बात समझाऊँगा। इस कमरे का प्रत्येक जीव और वनस्पति तेज सक्रिय (Radio-Active) प्रभाव से प्रभावित है।'

मेरे सम्पूर्ण शरीर में बिजली-सी दौड़ गई। ऐसा अनुभव हुआ मानो किसी अदृश्य शक्ति ने मुझे झकझोर डाला। यह कौन-सा प्रभाव है जिसका नामोच्चारण करते ही आत्मा तक डिगने लगे ? मैंने अपने को सम्हालते हुए कहा, 'डाक्टर, यह तेज सक्रिय प्रभाव कैसा ? इस प्रभाव का उद्गम कहाँ से और प्रसार कहाँ तक ?'

'आपके यह प्रश्न इतिहास में समा चुके हैं—हमारे देश के भग्न नगर हिरोशिमा के धूल-भरे इतिहास में। विदेशियों के अणु-बम ने ऐसे झंझावत को जन्म दिया जिसमें जड़ और चेतन सब पदार्थ मिटने लगे!'

कमरे के बाहर इस समय वर्षा के साथ तूफ़ान उठ रहा था। पेड़-पौधे झुके जा रहे थे। टीन की छत पर बूँदों की तड़तड़ाहट मानो भेद-कर अन्दर घुसी आ रही थी। डाक्टर के चश्मे पर नमी का धुन्ध-सा छा गया। वह अपने रूमाल से चश्मे को साफ़ करते हुए कहने लगा :

'इनको मामूली पशु मत समझना। यह नर का नारकीय जीवन से उद्धार करने के साधन हैं—अणु-बम के द्वारा बनाया दुःखित नार-कीय जीवन।'

'यह कैसे?' यह प्रश्न करते समय शायद मेरी आँखें विस्मय से गोल हो गई होंगी, तभी तो डाक्टर तोशियो ने झट-से कहना शुरु किया, 'मेजर! आप तो ऐसे अचम्भे से देखने लगे हैं जैसे जादू से भूला कोई हरिण। घबराइए नहीं, यहाँ हर पशु की अपनी एक कहानी है।'

मैं चुप रहा और डाक्टर के पास खिसककर उसके कन्धे का सहारा लेने लगा। उसने वनस्पति के गमले की ओर इशारा करते हुए कहा, 'इन वनस्पितियों में अणु-बम का प्रभाव निहित हो चुका है। इनको मैं हिरोशिमा से लाया था। इनमें "स्ट्रोन्शियम" हर डाली, पत्ते और अंकुर में समाया है।'

'स्ट्रोन्शियम'—मैंने मन में दुहराना चाहा, पर शब्द स्पष्ट हो मुँह से फिसल ही पड़े, 'यह क्या बला है स्ट्रोन्शियम?'

'हाँ, हाँ, "स्ट्रोन्शियम" यह "रेडियम" और "कैलशियम" के परिवार का पदार्थ है। घास और पत्तियों द्वारा "केलशियम" पशुओं में पहुँ-चता है और उनके दूध से हमारे शरीर में प्रविष्ट होता है। "केलशियम" शरीर की हड्डियों की पुष्टि के लिए आवश्यक है—नितान्त आवश्यक।

पर "स्ट्रोन्शियम" उतना ही घातक।' तोशियो तनाका इस समय ऐसे लेक्चर दे रहा था जैसे कोई डाक्टर अपने शिष्यों को समझाता हो।

'इन सब बातों से और अणु-बम से क्या सम्बन्ध ?' मैंने बिना कुछ समझे ही प्रश्न कर डाला।

'घनिष्ठ सम्बन्ध, बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध। अणु-बम के विस्फोट के समय हिरोशिमा पर घातक किरणों—गामा, बीटा, अल्ट्रा वायलेट (Ultra violet) और एक्स-रे का प्रसार हुआ। उससे भी घातक और मारक "स्ट्रोन्शियम" अथवा "स्ट्रोन्शियम ६०" या "रेडियो स्ट्रोन्शियम" हर वनस्पति और खाद्य-पदार्थ में समाने लगा, लोगों की अस्थि-मज्जा में प्रवेश करने लगा। मैंने इसके बारे में अनुसन्धान किया है।'

'डाक्टर, आप तो अब बहुत कठिन विषय पर आते जा रहे हैं।' मैं बोला।

'आपके लिए कठिन, हमारे लिए जटिल और जापान के लिए जीवन-मरण का यह विषय ! खैर, आपके लिए इस विषमता को सरलता में परिणत करूँगा। देखो इन भेड़ के बच्चों को। इनकी टाँगों की हड्डियाँ कितनी टेढ़ी हो चुकी हैं। यह है "स्ट्रोन्शियम ६०" का प्रत्यक्ष प्रभाव।' डाक्टर ने कहा।

मैंने अपनी कमर झुकाकर ग़ौर से मेमनों की टाँगों को देखा। वे सचमुच बल खाकर झुक गई थीं। मैंने और पास जाकर दोनों घुटनों के बल बैठकर और निगाह गड़ाई। 'आप ठीक कहते हैं। इन बच्चों की टाँगें अपने माँ-बाप से भिन्न हैं।'

'इन्होंने "स्ट्रोन्शियम ६०" से मिश्रित अपनी माँ का दूध पिया है। यह पदार्थ "केलशियम" के साथ-साथ इनकी हड्डियों में सदा के लिए समाहित हो चुका है और अब संसार की कोई भी दवा इनको ठीक नहीं कर सकती। इनकी टाँगें टेढ़ी ही रहेंगी। शायद और टेढ़ी होती जायँ।'

डाक्टर अपना लेक्चर दे रहा था और मेरी घुटनों की हड्डियों में दर्द होने लगा था। मालूम हो रहा था कि कमर की रीढ़ की हड्डी झुककर टेढ़ी हुई जा रही है—भेड़ के बच्चों की टाँगों की तरह। यदि यह टेढ़ापन कहीं अमर हो गया तो क्या होगा ? मैं भड़भड़ाकर उठ खड़ा हुआ और कमर को सीधा करने की चेष्टा करने लगा।

'इन भेड़ के बच्चों की तो ज़िन्दगी ही खराब हो जायेगी डाक्टर।' मैंने कहा।

'भेड़ के बच्चों की ही नहीं वरन् मनुष्य की सन्तति की भी। अब आपने समझा यह कैसा अनर्थ है ! यह हिरोशिमा पर ही प्रहार नहीं हुआ, यह हमारी आनेवाली पीढ़ियों का हनन है। घोर, पैशाचिक, अस्पष्ट हनन और मर्दन।' डाक्टर उत्तेजित होने लगा।

'यह भंयकर रोग है....अति भंयकर और विनाशक। मुझे इसका कभी अनुमान भी न था।' मैंने कहा।

'आप लोगों को अनुमान करने की चिन्ता भी क्यों हो ? फ़ौजवालों का तो काम आक्रमण करना है—शत्रु देश पर आक्रमण, उनके देश-वासियों को दलित करना, उनकी सन्तान को विकृत कर डालना !' वह कहता गया।

'हे भगवन् ! यह कैसा कलुषित कार्य ! नर-भक्षकता का-सा घृणित पाप !' मैं मन-ही-मन विचार करने लगा।

'मेजर ! पापों का घट तो हिरोशिमा पर फूट ही चुका। अब तो हम सबका यही महायज्ञ है कि जो जीवित बचे हैं उनका जीवन हम सुखी कर सकें। हाँ ! तो मैं आपको अणु-बम के प्रभाव के बारे में बता रहा था।' डाक्टर ने फिर अपनी उँगलियाँ चश्मे की एक कमानी पर फेरते हुए कहा।

'डाक्टर तोशियो, युद्ध में जिन सैनिकों का रक्त बहना था वह तो बह चुका। आप ठीक कहते हैं। शायद संसार के सब देशवासियों की यही कामना होगी कि अब सब लोग शान्ति और मित्रता से रहें।' मैंने उत्तर दिया।

'सैनिकों का रक्त बह चुका। उसे कौन रोक सकता था। प्राणियों में रक्त कम हो जाय उसका इलाज भी है। पर जब रक्त बनना ही बन्द हो जाय तो कौन क्या करे?' वह किसी विचार में डूबा-सा अपने बालों पर हाथ फेरता हुआ धीमे स्वर में कहने लगा।

'आप तो पहेली-सी बुझा रहे हैं। मेरी कुछ भी समझ में नहीं आता।'

'मेरे मित्र! यह समझने की बात नहीं, देखने की बात है। आपको मालूम होगा कि प्रत्येक प्राणी के रक्त में अरुण कोष और श्वेत कोष होते हैं। दोनो की नियत संख्या है। इन्हीं पर प्राणी का स्वास्थ्य निर्भर रहता है। हमारा शरीर केलशियम क्यों चाहता है, क्योंकि उसकी प्रति-क्रिया से रक्त के जीवित कोष अथवा अरुण कोष बनते हैं। पर उसका दूसरा सहोदर "स्ट्रोन्शियम" इसके प्रतिकूल क्रिया करता है। वह अरुण कोषों का बनना समाप्त कर देता है और फिर रह जाते हैं शरीर में श्वेत कोष अथवा रिक्त कोष।'

'अच्छा, फिर क्या होता है डाक्टर?' मैंने प्रश्न किया।

'होता क्या है—"ल्यूकीमिया" का रोग, जिससे लोग सिसक-सिसक-कर और घुल-घुलकर मरते हैं।'

'आप तो बहुत से नये पदार्थों का और नये रोगों का नाम ले रहे हैं जो मैंने अभी तक सुने भी नहीं थे।' मैंने आश्चर्य में कहा।

'और अणु-बम भी तो नया बम था, जिसका नाम शायद किसी देश के सैनिक जानते भी न होंगे। खैर, छोड़िए इन बातों को। आप देखिए इन चूहों को जो इस पिंजड़ों में जिन्दगी के दिन काट रहे हैं।"

मैंने भेड़ के बच्चों से दृष्टि हटाकर चूहों पर लगा दी। कुछ चूहों की दुम छोटी थी और कुछ सफेद-लाल रंग के चूहे एक ओर सुस्त-से बैठे थे। कुछ के बाल उनकी चमड़ी से जगह-जगह पर गायब हो गये थे। मैंने बिना सोचे-समझे कहना अरम्भ कर दिया, 'आपने तो कई किस्म के चूहे पाल रक्खे हैं—देशी, विलायती, सफेद-लाल, लम्बी दुम-वाले, छोटी दुमवाले।'

'यह कई किस्म के चूहे नहीं हैं। यह सब एक जाति के चूहे थे—जापान देश के चूहे; पर अब वे "ल्यूकिमिया" रोग की अलग-अलग दशा में ग्रसित हैं। मैंने इनको "स्ट्रोन्शियम" के इन्जेक्शन दिये हैं और अब उसका नतीजा देख रहा हूँ। कुछ चूहों की चमड़ी से उनके रोयें नदारद होने लगे और अब वे सफ़ेद हैं। कुछ को इस रोग के कारण रक्त-केन्सर हो गया है और उनका लाल मांस दिखने लगा है और कुछ की दुम ही झड़ गई है।' डाक्टर ने विस्तारपूर्वक मुझे बताया।

'ओह ! डाक्टर !! कैसे-कैसे रोग !!! भविष्य में क्या होगा ?' मैंने एक आह भरी।

'भविष्य का क्या विचार करना ! वर्तमान से उलझो। जीवन के यथार्थ को देखो। आओ मेजर, मेरे साथ चलो। जंग के मैदान के बाद जीवन-संघर्ष को देखो। मृत्यु की छाया में टिमटिमाती-बुझती जीवन-ज्योति के मिटने की कसक को निहारो।' डाक्टर ने मेरी दाहिनी भुजा कसकर पकड़ते हुए कहा। वह मुझे कमरे के बाहर खींचकर ले गया।

दूसरी ओर के बरामदे में से चलकर हमने एक लम्बे वार्ड में प्रवेश किया। दो कतारों में लकड़ी के बने तख़्तों पर बहुत-से मरीज़ लेटे थे। सब सर से पैर तक पट्टियों में लिपटे, केवल मुँह और नाक के नथुने

खुले। मालूम होता कि मरने के पहिले ही कफ़न लपेट दिया हो। दवा-इयों की बदबू और गन्ध मस्तिष्क तक को चकराने लगी। मैंने अपना सफ़ेद रूमाल जेब से निकालकर अपनी नाक पर रख लिया। मरीज़ों के प्रति समवेदना प्रकट करना तो दूर रहा वहाँ अधिक देर ठहरना भी मुश्किल हो गया। जहाँ मरीज़ों के नाक के नथुने खुले उसी हवा में साँस ले रहे थे मैं योग-क्रिया-सी किये अपने रूमाल से नाक दबाकर इस डर से कि मेरी साँस का उस वायु से सम्बन्ध न जुड़ जाय, अपनी दम को कंठ से ऊपर ही नहीं उभरने दे रहा था। दम अन्दर-ही-अन्दर घुटने लगा। यह चिन्ता होने लगी कि कहीं इस वार्ड की दुर्गन्धि में सना 'रेडियो स्ट्रोन्शियम' मेरे अन्दर प्रविष्ट न हो जाय। मेरे पलक स्वतः ही मुँदने लगे। ऊपर-नीचे की दन्त-पंक्ति देर तक जोर से भींचे रहने के कारण जबड़ों में दर्द होने लगा। पहिले डाक्टर तोशियो मुझे खींच रहा था, पर अब मैं अपने एक हाथ से उसे आगे ठेल रहा था। फिर भी उसने दो-चार मरीज़ों के पास रुककर कुछ बात की। कुछ के सिरहाने लटकती तख़्तियों को पढ़ा, कुछ के सर पर हाथ फेरा और कुछ को अपनी मुस्कान-भरी दृष्टि से विभोर किया। यह अच्छा हुआ कि न उसने कुछ बात की और न मुझे कुछ उत्तर देने की आवश्यकता हुई। मैं तो आत्म-रक्षा के योग में तल्लीन था।

जब हम वार्ड के दूसरे दरवाज़े के बाहर हुए, डाक्टर ने मुझसे बहुत मन्द आवाज में कहा, 'देखा इन पीड़ित लोगों को?'

मैंने 'हाँ' की द्योतक योग-मुद्रा में ऊपर-नीचे सर हिला दिया।

'चलो, एक और रोगी को दिखाऊँ।' उसने फिर कहा। फिर भी मैं कुछ न बोला।

हम लोग एक छोटे कमरे में पहुँचे, जहाँ केवल एक ही रोगी था। ज़मीन पर बिछी मोटी चटाई पर वह नंग-धड़ंग सिर्फ एक जाँघिया पहिने

बैठा था। शायद उसकी आँखें बन्द थीं क्योंकि हम लोगों के कमरे में पहुँचने पर वह न तो हिला-डुला और न कुछ बोला।

'कहो मिनोरु कोजिमा! कैसी तबीयत है?' डाक्टर ने पूछा।

'आ! आ! आह!' मरीज़ ने आँखें बन्द किये ही जब यातना-युक्त यह स्वर निकाला तो मैंने देखा कि उसके मुँह में एक भी दाँत न था। खूनी लाल होठों में छिपे दन्त-भार से मुक्त केवल मसूड़े, जो उसकी युवावस्था पर बुढ़ापे की जीर्णता का पर्दा न डाल सके थे।

'घबराओ नहीं मिनोरु! जैसे तुम खेल के मैदान में बाज़ी मारा करते थे वैसे ही इस मुसीबत को भी विजय कर डालो।' डाक्टर तोशियो तनाका ने समझाया।

मिनोरु कोजिमा ने अपने बायें हाथ की पतली उँगलियाँ पैरों के तलवों की ओर इंगित करके क्षीण दाहिना हाथ हिलाते हुए यह बताने की चेष्टा की कि अब उसका चलना भी दुर्लभ है। तलवों में काले-काले फफोले-से जिनमें लाल खाल के छितड़े दिखने लगे थे। जब उसने उँगलियाँ चलाईं तो मैंने देखा कि उनके सब नाखून गायब और नाखूनों की जगह टपकता-रिसता मांस! सारे शरीर में लाल-काले बड़े-बड़े चकत्ते। सर के सब बाल सफ़ाचट। मैंने डाक्टर की भुजा का सहारा लेते हुए अपने नाखूनों को ध्यान से देखा कि कहीं झड़ने तो नहीं लगे। जो रूमाल अभी तक मेरी नाक पर दबा था अपने-आप मेरे हाथ की उँगलियों पर लिपटने लगा।

'यह रोगी महान कष्ट में है।' मैंने डाक्टर के कान के पास अपना मुँह रखकर फुसफुसाया। मालूम नहीं डाक्टर ने यह शब्द सुने या नहीं। वह तो मिनोरु कोजिमा में हिम्मत भर रहा था, 'आज तुम कल से अच्छे हो। औषधियाँ लाभ करती जा रही हैं। आँखें खोलो और देखो, तुमको देखने कौन आया है।'

मिनोरु कोजिमा ने अपने माथे की खुरदरी खाल में कई बल डालने के बाद ऐसे नेत्र खोलने का प्रयास किया मानो पतली रेखाएँ कुछ चौड़ी होने लगी हों। उन रेखाओं में जागरण का क्षणिक बिलगाव-सा प्रतीत होते ही वे ज्यों-की-त्यों एकाकार हो गईं। अरे, यह क्या ! पलक बरुनी-रहित। और नेत्र केवल रेखा-मात्र। कैसा यह मनुष्य का अस्तित्व खंडन ! कैसा यह मांस-मज्जा का साँस-चलित ध्वस्त-शेष।

'बहादुर कोजिमा ! जीवन-पथ पर निर्भीकता से चले चलो। मैं तुम्हारे साथ हूँ। तुम्हारा सब से सच्चा मित्र तुम्हारे साथ है।' तोशियो तनाका ने कहा।

रोगी ने अपनी रुग्ण, दारुण दशा में मुस्कान भरने के प्रयत्न में अपने होठों को चौड़ा कर दिया। यह मुस्कान नहीं, मुस्कान पर व्यंग था। अन्तर्वेदना की पराकाष्ठा में समवेदना की खोज थी।

डाक्टर ने मुझे इशारा किया और मैं उसके पीछे हो लिया। कमरे से बाहर निकल हम खुले मैदान में से होकर डाक्टर तोशियो के मकान की ओर चल दिये।

'डाक्टर ! यह तो जीवन में मरण का दृश्य मैंने देखा। कितना कष्ट है इस रोगी मिनोरु कोजिमा को !' मैंने कहा।

'अभी आपने देखा ही क्या है। एक समय था मिनोरु कोजिमा कैसा हृष्ट-पुष्ट खिलाड़ी था और अब इस दशा में है। समय का फेर है। "ल्यूकिमिया" का यह रोगी कुछ ही दिनों और चल सकेगा।' डाक्टर ने अपना चश्मा उतार रूमाल से अपनी गीली आँखों को पोंछा।

'क्या वह इलाज से भी ठीक नहीं हो सकता ? आप ऐसे चतुर चिकित्सक के होते हुए भी क्या उसकी जान नहीं बच सकती ? नहीं डाक्टर, आप उसे किसी तरह से भी बचाइए। उसे फिर वैसा ही निरोगी युवक बना दीजिए जैसा वह रहा होगा।' मैं ऐसे कहने लगा जैसे मिनोरु

कोजिमा मेरे निजी परिवार का कोई प्राणी हो।

'काश मैं ऐसा कर सकता। पर वह तो घुल-घुलकर मरने को जीवित है। उसके शरीर में अनेकों बिजलियाँ तड़कती होंगी। प्रत्येक अंग में सहस्रों चिनगारियाँ चहकती होंगी। तभी तो बेचारा न कपड़े पहिन सकता है, न लेट सकता है। खैर, जब तक प्राण है तब तक आशा है।'

'आपकी आशा पर सब रोगियों की आशा है। कितने महान् हैं आप डाक्टर तोशियो तनाका!' मैं डाक्टर से विदा लेकर साइकिल पर चल दिया। सर्वत्र अन्धकार था....घोर, गहन। हर झाड़ी और हर वृक्ष कालिमा का पुंज था, जिसमें से अनेक भयावनी आकृतियाँ मेरी ओर लपकती-सी मालूम देतीं। मैंने साइकिल तेज़ कर दी, फिर भी अनेक देव और दानव मेरा पीछा करते-से, मुझे घेरते-से लग रहे थे।

१०

प्रतिदिन की व्यस्त दिनचर्या में, मैस के रंग-भरे रास-नृत्य में, कैप्टेन नन्दलाल के सुख के मखमली, रेशमी अनुभवों की कहानी में बेचारे मिनोरु कोजिमा की तस्वीर जैसे कई मोटी तहों के नीचे दब गई। मैंने सोचा कि उल्लास और आनन्द जीवन में सुगन्ध की तरह सर्वव्यापी हैं। संगीत ही सृष्टि की अनवरत ध्वनि है। पर अचानक एक रात्रि अपने पलंग पर लेटे-लेटे छत के पास दीवाल की टेढ़ी दरार में से मुझे कोई अपने पास बुलाने-सा लगा। वह कह रहा था, 'यह मत भूल जाना कि इस इमारत में दरार का भी अपना अस्तित्व है। क्षणिक आह्लाद में व्यंगमयी वेदना का भी स्थान है। मधुर सुगन्ध का स्रोत—सुमन—भी मुरझानेवाला है।' मैं चौंक पड़ा। अरे! वह तो शायद कोजिमा का

बाल-रहित, भृकुटि-रहित और बरुनी-रहित लाल रक्त से टपकता मुख था जो इन शब्दों का कठिनाई से उच्चारण कर पा रहा था। मैं हड़बड़ाकर उठ बैठा। मेरा स्वप्न टूट गया! मन कहने लगा कि मिनोरु कोजिमा को देखे बहुत दिन हो गये। उसके पास अवश्य जाना चाहिए। मैं आज ही उसे देखूँगा।

तीसरे पहर अपनी साइकिल पर सवार हो मैं डाक्टर तोशियो के घर पहुँच ही तो गया। वह वहाँ नहीं था। पूछने पर मालूम हुआ कि वह अनुसन्धान-शाला में है। जब मैं वहाँ गया तो डाक्टर तरह-तरह के यन्त्रों के बीच में बैठा कार्य में व्यस्त था। मुझे आते देख वह खड़ा हो गया और मुझसे हाथ मिलाते हुए बोला, 'दोस्त, आज बहुत दिनों के बाद आये।'

'हाँ, सरकारी काम करता रहा था। डाक्टर, आपके उस रोगी मिनोरु कोजिमा का क्या हाल है? मैं उसे देखना चाहता हूँ।'

'कोजिमा....बेचारा कोजिमा....वह मेरे पास नहीं, अब वह ओशाका समा (गौतम बुद्ध) के चरणों में है।' उसने ऊपर इशारा करते हुए कहा।

'क्या? क्या उसकी मृत्यु हो गई?'

'उसके सब स्नायु तन्तु गल गये। और गलित शरीर अनन्त में समा गया।' डाक्टर ने गम्भीर होकर उत्तर दिया।

'मैं आज खासतौर से उससे मिलने आया था। डाक्टर, अब क्या होगा?'

'अब क्या होगा? अब उसका छोटा कमरा खाली है। उसमें दूसरा रोगी रहेगा। और उसके अन्त के बाद तीसरा, और चौथा।' तोशियो तनाका पत्थर-जैसी कठोरता से कहता गया।

'आज आपमें यह कठोरता कहाँ से आ गई?'

'परिस्थितियों के कारण।' उसने छोटा-सा उत्तर दिया।

'ऐसी क्या परिस्थितियाँ?'

'अणु-बम से उत्पन्न हुई परिस्थितियाँ, तेज सक्रिय रेडियो-ऐक्टिव प्रभाव की समस्याएँ। मेरा सर चकराने लगा है। मेरे प्रयत्न विफल हो रहे हैं। मेरे उपचार व्यर्थ होते जाते हैं। मेरी आँखों के आगे रोगी मर रहे हैं। मैं किस-किस के लिए अश्रु बहाऊँ?' यह कहते-कहते भी डाक्टर तोशियो तनाका की आँखें गीली हो चलीं और उसे चश्मा हटाकर रूमाल उन पर रखना पड़ा।

'कर्म करना मनुष्य का ध्येय है और उसका फल देना ईश्वर के अधिकार में है, ऐसा हमारे देश में अधिकतर लोगों का विश्वास है।' मैंने समझाते हुए कहा।

'यह भी ठीक है। पर इन रोगों का निदान शायद ईश्वर के अधिकार के भी परे है। मेरा अनुभव होता जाता है कि अब मनुष्य अपने निर्माता के विधान को भी बदलना चाहता है।' डाक्टर ने कहा।

'ऐसा कभी भी नहीं हो सकता। इस बात में मैं आपसे सहमत नहीं हूँ। हमारे धर्म के अनुसार ब्रह्मा सब संसार का और सब प्राणियों का रचयिता है। उसके विधान में कोई भी बाधक नहीं हो सकता।' मैंने अपने धर्म के दृढ़ विश्वास से प्रेरित होकर कहा।

'मेजर! आप उस समय की बातें करते हैं जब मनुष्य के जीवन में धर्म का अनुष्ठान था। अब इस वैज्ञानिक काल में सब कुछ हो सकता है। एक चिकित्सक के नाते मैं कहता हूँ कि अब तो स्वस्थ और पूर्ण भ्रूण बनना और जन्म-काल के बाद उनका जीवित रहना भी कठिन मालूम होता है। प्रजनन-क्रिया पर भी आक्रमण आरम्भ हो गया है।'

'यह कैसे?'

'मैं इस समय इसी विषय के अध्ययन और अनुसन्धान में लगा

हूँ। प्रत्येक प्राणी का प्रादुर्भाव एक बहुत छोटे जीव-कोष अथवा "सैल" से होता है, जो नर-कोष और मादा-कोष के सम्मिश्रण से उत्पन्न होता है। हर "सैल" में बहुत बारीक धागे के-से जोड़े होते हैं, जिनको "क्रोमोसोम्स" (Chromosomes) या "वंश-सूत्र" कहते हैं। इनमें भ्रूण के माता-पिता की विशेषताएँ निहित होती हैं। जैसे-जैसे भ्रूण बढ़ता है सैल की संख्या भी बढ़ती जाती है और क्रोमोसोम्स हर बच्चे में भिन्नता लाते रहते हैं। क्रोमोसोम्स के अन्तर्गत "जीन्स" (Genes) होते हैं जिनको धागे में बिंधे छोटे मोतियों के समान समझिए। इनका प्रत्येक मोती लगभग एक करोड़ अणु-कणों से बना नव-शिशु का रूप-रंग निर्धारित करता है। तभी तो प्राणी बिल्कुल एक-से नहीं होते। सब में कुछ-न-कुछ अन्तर होता है।' डाक्टर तोशियो तनाका ने मनुष्य के सृजन पर भाषण-सा दे डाला।

मैंने कुछ समझकर और कुछ बिना समझे ही कहा। 'पर, डारविन' के सिद्धान्त के अनुसार तो मनुष्य बन्दर का वंशज है।'

'उस समय डारविन के सिद्धान्त सही थे। शायद अब भी ठीक हों क्योंकि अब मनुष्य-जाति बन्दरों में तो नहीं पर राक्षसों में तो अवश्य परिणत हो रही है—सूरत-शक्ल में, आदतों में, व्यवहार में।' उसने उत्तर दिया।

'इस परिवर्तन का कारण ?'

'अणु-बम।'

'या मनुष्य की मान्यताओं का विध्वंस।'

'दोनो। अणु-बम से मनुष्य-जाति की सूरत बिगड़ती है और मान्यताओं के विनाश से उसके आचार-विचार।'

'तब तो भविष्य अन्धकारमय और हमारी सन्तान धर्म-सिद्धान्तों

से च्युत। कैसा भीषण, शुष्क, खंडित प्रस्तरों का-सा आगे का दृश्य !' मैंने कहा।

'कहाँ धर्म और कहाँ सिद्धान्त ? मनुष्य यदि मनुष्य ही रह जाय तो बहुत समझो। हाँ, तो मैं "जीन्स" के बारे में कह रहा था।' डाक्टर फिर अपने विषय पर लेक्चर देने लगा, 'जीन्स (genes) अत्यन्त अडिग होते हैं और परिवार की, व्यक्ति की विशेषताएँ सन्तान की अनेक पीढ़ियों तक स्थिर रखते हैं। इनमें परिवर्तन तभी होता है जब सन्तानोत्पत्ति का क्रम ही समाप्त हो जाय या टूट जाय। इस परिवर्तन को वैज्ञानिक भाषा में म्यूटेशन (mutation) कहते हैं।'

'यदि ऐसा हुआ तो भी मनुष्य-जाति तो चलती ही रहेगी। यह सम्भव है कि कुछ परिवारों का अन्त हो जाय।' मैंने कहा।

'पर समाज तो परिवारों का समूह है। यदि एक परिवार दूषित हुआ तो समाज अछूता नहीं बच सकता। और फिर अणु-बम का प्रभाव तो पूर्ण समाजवादी है। ऊँच, नीच, छोटे, बड़े, जाति या देश में भेद नहीं रखता। सब व्यक्तियों में उससे प्रसारित एक्स-रे, गामा और बीटा किरणें एक-सा मारक असर करती हैं। वह "क्रोमोसोम्स" और रक्त-कोषों का विनाश कर डालती हैं। उनसे "जीन्स" में "म्यूटेशन" होने लगता है। मैं यही अन्वेषण कर रहा हूँ।' डाक्टर अनुसन्धान-शाला में रक्खी एक्स-रे की मशीन की ओर इशारा करते हुए बोला।

'आपके अनुसन्धान तो सारे संसार का कल्याण करेंगे। कितना महत्त्वपूर्ण कार्य आप कर रहे हैं।' मैंने कहा।

'मेजर ! मैंने मछलियों, चूहों और सफेद खरगोशों पर इन मारक किरणों का प्रयोग किया है। "रेडियेशन" अथवा तेज सक्रिय का "रौंजन यूनिट (Roentgen Units)" में माप किया है। उनका मानव-सन्तति पर प्रभाव देखा है। देखो, इन बोतलों में रक्खे मनुष्य

भ्रूणों को देखो, इनको आँख फाड़कर ध्यान से देखो। अब मानव-जाति स्थिर रहेगी अथवा नष्ट होगी ?' तोशियो तनाका ने अपनी आवाज़ भारी कर आवेग में कहा। इंगित करती हुई उसकी उँगली और हाथ रोष से काँपने लगे और उसके ललाट पर सिलवटें उभर आईं, चिन्ता और क्षोभ को व्यक्त करतीं टेढ़ी सिलवटें और रेखाएँ।

मैंने ध्यान से भिन्न-भिन्न बोतलों में रक्खे मृत भ्रूणों को देखा और मैं अवाक् रह गया। न ये मनुष्य के भ्रूण थे और न किसी अन्य जानवर के भ्रूण, न वे एक आकृति के और न एक साँचे के। एक भ्रूण के दो बड़े सर, जिनमें नाक और आँख का आकार उभर रहा था मगर कान ग़ायब। भुजाओं की जगह मांस की दो फुनगियाँ। न पैर, न वक्ष और न पेट। सब सिकुड़कर मांस का गोलाकार एक पिण्ड। दूसरे भ्रूण में टाँगों की अनोखी लम्बाई। बहुत लम्बी टाँगें, उन पर मनुष्य का-सा छोटा सर सधा हुआ और हाथ नदारद। मुझे भारत के ग्राम-बालकों के खिलौने 'टेसू' का ध्यान हो आया, कैसे वे बाँस की लम्बी खपच्ची को बाँधकर और उस पर गीली मिट्टी का छोटा लौंदा रखकर 'टेसू' को अस्तित्व प्रदान करते थे। जग-निर्माता ने शायद उन बच्चों से इस भ्रूण-रचना का आकार सीखा होगा।

तीसरा भ्रूण गोल-मटोल मांस की गेंद—टेनिस की गेंद के बराबर। उस चिकने गोले में न सर, न पैर, न हाथ और न पाँव। एक जगह छोटा छिद्र, जिसको डाक्टर ने कहा कि यह भ्रूण का मुख है।

चौथे भ्रूण का आकार तो मनुष्य के बालक-जैसा पर दोनो भुजाएँ अत्यधिक लम्बी—घुटनों से नीचे पिंडलियों तक लटकती। इसको तोशियो ने बोतल में खड़ा करके रक्खा था। छुटपन में मैंने कहानी सुनी थी कि जिस बालक की भुजाएँ लम्बी होती हैं वह चक्रवर्ती राजा होता है। यह बेचारा राजा तो नहीं हो सका, पर चक्रवर्ती होने की उत्कण्ठा रखनेवाले देशों के शस्त्रों का परिणाम अवश्य था।

मेरा गला सूखने लगा। चिन्ता और विस्मय से शायद मैं अपनी दोनो भुजाएँ सीधी कर उँगलियों से घुटने छूने की क्रिया कर रहा हूँगा या उनकी लम्बाई नापने की चेष्टा में संलग्न रहा हूँगा, कि डाक्टर ने मुस्कराते हुए मेरे कन्धे पर हाथ रखकर कहा, 'यह फ़ौजी कसरत करने की जगह नहीं, डाक्टर के अन्वेषण का कमरा है और फिर आपकी कमर तो सुडौल है, उसे कम करने का व्यायाम करने की क्या जरूरत ?'

'नहीं डाक्टर, मैं व्यायाम नहीं कर रहा था। मैं तो इन भ्रूणों को देख रहा था।' मैंने झेंपते हुए कहा।

'इन मृत भ्रूणों से भी अधिक दिलचस्प जीवित खरगोश और मछली के बच्चों को दिखाऊँ। मेरे साथ दूसरे कमरे में चलो।'

हम दोनो उसी बड़े कमरे में फिर पहुँच गये जिसको उसने पिछली बार दिखाया था। खरगोश के पिंजड़े के एक कोने में अद्भुत सफ़ेद बच्चा। डाक्टर फिर कहने लगा, 'इस खरगोश के बच्चे को भी ध्यान से देखो। यह एक नई नस्ल दुनिया में लायेगा। दो कानोंवाली और तीन मुखोंवाली।'

'ओह ! इसके तो सचमुच तीन सर और दोनो ओर लम्बे दो कान—सब फड़कते और सब चलते। इस समय खरगोश का वह बच्चा घास और दाना तीनों मुँह से जल्दी-जल्दी कुतर रहा था। वह अपनी आगे की दोनो टाँगों में दाना पकड़े बारी-बारी से तीनों मुखों के आगे ले जाता और सब की तृप्ति करता। हमारे देश की चार भुजावाली देवी लक्ष्मी तो वरदायिनी थी। एक मुख और चार भुजा, जिनसे वह सब का घर भर देती। इसी लिए सब उनकी वन्दना, आराधना करते, पर यह तो पृथ्वी पर एक नये पशु का जन्म था। तीन मुख और चार टाँगों-वाला, जिनमें से आगे की टाँगों से वह सब भोजन समेटकर अपने उदर में भर रहा था।

'यदि जानवरों की ऐसी नस्ल शुरू हुई और जीवित रही तब तो संसार का पूरा अन्न और खाद्य पदार्थ भी पर्याप्त न होंगे।' मैंने कहा।

'इसकी क्या चिन्ता! जैसे आज मानव नर-भक्षक हो रहा है, वैसे ही जीव-जन्तु आपस में एक-दूसरे का हनन करेंगे।' डाक्टर ने उत्तर दिया।

'ये खरगोश बेचारे क्या किसी को मारेंगे?'

'लेकिन इनको खानेवाले तो और जानवर हैं। यदि एक छोटा खरगोश उनका एक दिन का भोजन होता होगा, तो यह तीन सर-वाला बच्चा बड़ा होकर उनके उदर का दो दिन पालन करेगा। पर हाँ, एक खतरा है।'

'वह क्या?'

'रेडियो-ऐक्टिव पशु भी उदर में अणु-बम का-सा विस्फोट कर सकता है। देखो, इस बिल्ली की मृत्यु ऐसे ही हुई।'

मैंने कमरे में मेज़ पर खड़ी उस स्थिर बिल्ली को देखा जो पहिले दिन मुझे घूरती-सी लगी थी।

'यह बिल्ली मेरे चिकित्सालय की पालतू बिल्ली थी। एक दिन इस कमरे में घुस आई। रेडियो स्ट्रोन्शियम से प्रभावित चूहों को, जिन पर मैं अनुसन्धान कर रहा था, चट कर गई। उस दिन के बाद मुझे चूहों के पिंजड़े की जाली और मजबूत करनी पड़ी।' डाक्टर बोला।

'बिल्ली का क्या हुआ?' मैंने प्रश्न किया।

'उसके पेट में रेडियो स्ट्रोन्शियम प्रभावित चूहे उछले होंगे। तभी तो दूसरे दिन वह कमरे के कोने में मरी मिली। मैंने निरीक्षण किया और देखा कि वह भी रेडियो-ऐक्टिव हो गई थी।'

'यह तो अचम्भे की बात है, बहुत अचम्भे की!'

'इसमें आश्चर्य क्या? जो प्राणी हमारे देश पर अणु-बम गिराकर

हमारे देशवासियों को घृणित रोगों से ग्रस्त करा गये हैं, जो हमको कच्चा चबा डालना चाहते थे, क्या वे जीवित रह सकते हैं? कभी नहीं! इसी बिल्ली की तरह उनका भी नाश हो सकता है। मैंने इस बिल्ली को यहाँ इसी लिए रक्खा है।' डाक्टर फिर गम्भीर हो गया और मेरा हाथ पकड़कर उस ओर ले गया जहाँ मछलियाँ पानी में तैर रही थीं।

'कैसी रंगीन छोटी-बड़ी मछलियाँ आपने पाल रक्खी हैं!'

'इनका रंग इस लैम्प के प्रकाश में अच्छा दिखेगा।' तोशियो तनाका ने एक रिफ्लेक्टर लगी बिजली की लैम्प जलाई, जिसका प्रकाश मोटे शीशे को पारकर जल के अन्दर तक पहुँच गया।

'वह उस कोने में क्या तैर रहा है? दो टाँगों का मेंढक या पैर-वाला साँप।' मैंने विस्मित हो प्रश्न किया।

यह सुनकर डाक्टर जोर से हँस पड़ा। बड़ा कमरा हँसी से गूँज गया। मुझे झकझोरते हुए वह कहने लगा, 'मेरे मित्र! मछली के बच्चों को मेंढक और साँप कहते हो? यह तो इन्हीं रेडियो-ऐक्टिव मछलियों की सन्तति हैं।

'ओह! क्या यह भी हो सकता है! मछलियों के टाँगें निकल आयें?'

'आजकल सब-कुछ हो सकता है। इस मछली के बच्चे के दूसरे भाई को देखो। उसका मुँह चपटा हो गया है और उसके एक ही आँख है, परों की जगह ऊपर उठे दो लम्बे कान-से निकल आये हैं।'

मैंने फिर गौर से देखा। एक मछली से उत्पन्न उसके बच्चों के भिन्न स्वरूप। मुझे बताया गया था कि कुछ जीव-जन्तु संसार से मिट रहे हैं। उनकी संख्या कम हो चुकी है और शायद भविष्य में उनकी जाति ही विनिष्ट हो जाय। पर यहाँ तो एक ही जीव के अनेक रूपों की रचना हो रही थी। मेरा सर घूमने-सा लगा और मैं विचार करने

लगा—सचमुच सृष्टि की क्रिया ही बदलने लगी। भगवन्! हम सब पर दया कीजिए। इस संसार को देव-दानव की भूमि में परिणत होने से बचाइए। डाक्टर का सहारा लेते हुए यह शब्द अचानक मेरे मुँह से निकल गये, 'डाक्टर तोशियो! आपने तो मेरी आँखें खोल दीं। मेरा मस्तिष्क भ्रमित होने लगा।'

'आजकल सबको आँखें खोलकर चलना चाहिए और दिमाग़ ठीक-ठाक रखना चाहिए। मैंने ये मछलियाँ हिरोशिमा की नदी से पकड़वाई थीं और उन पर अनुसन्धान किया। जिस जल में यह थीं उससे कई गुना रेडियो-ऐक्टिव प्रभाव इनमें था। इनमें यह प्रभाव "ज़िन्क ६५ (Zinc 65) के कारण हुआ—यह पदार्थ अणु-बम के विस्फोट में अधिक न होने पर भी इन मछलियों में बहुत अधिक था। शायद यह जल के अन्दर की घास-पात खाती रही होंगी जिनमें ज़िन्क और स्ट्रोन्शियम बहुत मात्रा में भिद जाती है।'

डाक्टर ने फिर विस्तारपूर्वक वैज्ञानिक भाषा में बात करना प्रारम्भ कर दिया।

'आपने जल और थल के सब जीवों पर कठिन अनुसन्धान करके बड़ा गहन अध्ययन किया है। आप मामूली चिकित्सक नहीं, मनुष्य-जाति के अग्रगण्य पोषक हैं।' मैंने उसके अथक परिश्रम की सराहना की।

'कोई भी पुरुष किसी प्राणी का पोषक नहीं हो सकता। हाँ, प्रयास करने से प्रकृति के गूढ़ रहस्यों की झाँकी अवश्य ले सकता है। आओ मेजर, मेरे साथ आओ! तुमको ऐसी ही झाँकी दिखाऊँ।'

हमने एक तीसरे कमरे में प्रवेश किया। इस कमरे में शीशे के एक वेक्यूम चेम्बर में कुछ कीटाणु किलबिला रहे थे। सब ऐसी शक्लों के जिनको मैंने अभी तक कहीं भी नहीं देखा था। किसी का अग्र भाग लम्बी पैनी बल्लम-सा, कोई घूमी हुई पतली सूँड़वाला, किसी के टेढ़े

अस्तित्व में बहुत बारीक रोयें, और कोई एक ऐंठी हुई-सी रस्सी के छोटे टुकड़े-सा। मैंने चैम्बर की दीवाल के पास अपना मुँह इतना सटा दिया कि मेरी श्वासों से शीशे के कुछ भाग पर धुन्ध छा गया।

'मेरे मित्र। यह सब भयंकर संक्रामक रोगों के कीटाणु यहाँ बन्द हैं। यह साधारणतः आँखों से नहीं देखे जा सकते। केवल 'माइक्रोस्कोप' (अथवा अणुवीक्षण) से देखने में आते थे।' डाक्टर बतलाने लगा।

'तब क्या किसी विशेष भोजन पर आपने इनकी पुष्टि की है?' मैंने प्रश्न किया।

'मैंने नहीं, प्रकृति ने इनकी पुष्टि की है। रेडियो-ऐक्टिव होने पर इनका स्वास्थ्य निखरा है। कोई इस प्रभाव से मिटता है और कोई पनपता है। ये दूसरों को मिटानेवाले अब हृष्ट-पुष्ट होकर आपस में ही जूझ रहे हैं।' डाक्टर तोशियो के मुख पर शरारत-भरी मुस्कान थी।

'वाह री रेडियो-ऐक्टिविटी! घातक कीटाणु का उद्धार और जीवित प्राणियों का हनन?' मैं कहने लगा।

'मेजर, इसको प्रकृति की करामात कहते हैं। यह "म्यूटेशन" का जीवित परिणाम है। यह "जीन"-परिवर्तन का प्रभाव है।'

डाक्टर तोशियो तनाका की मुस्कान, विषाक्त हँसी में परिणत हो गई। एक लम्बी साँस भरकर वह कहने लगा, 'यह भी सम्भव है कि "जीन"-परिवर्तन में मनुष्य की नस्ल ही खत्म हो जाय। यह संक्रामक रोग के कीड़े-मकोड़े कई फुट बढ़कर पृथ्वी पर वास करने लगें।'

इस समय कोई उड़ता हुआ मच्छर मेरे एक कान के ऊपरी भाग पर बैठ गया था। उसका बोझ बढ़ता हुआ-सा मालूम देने लगा। उसके पैने डंक ने तीर मारा। ऐसा लगने लगा जैसे मच्छर से निकली कई सूँड़ों ने मेरा गला लपेटकर कसना शुरू कर दिया हो। साँस घुटने लगी। बड़ी मुश्किल से अपना निर्जीव-सा हाथ उठाकर जब मैंने उस

कीटाणु को झटक दिया तब मेरे होश-हवास ठीक हुए। माथा पसीज चुका था। मैंने रूमाल निकालकर अपने ललाट पर रक्खा।

'क्यों, क्या घबराने लगे मेजर?' डाक्टर कहने लगा।

मैं चुप था।

'अगर घबराए नहीं हो तो आओ एक वस्तु और दिखाऊँ।'

'अवश्य।'

'तो चलो।'

हम पासवाले एक छोटे कमरे में पहुँचे। वहाँ देखा एक भ्रूणवत शिशु इन्क्यूबेटर में रक्खा था।

'अभी तक तुमने रेडियो-ऐक्टिव प्रभाव से प्रभावित मृत भ्रूण देखे हैं। अब देखो मनुष्य जाति की जीवित सन्तति।'

'अरे! यह बच्चा तो अंग-विहीन मांस का लोथड़ा है।'

'हाँ, इसकी शरीर-यष्टि मनुष्य-जैसी है, पर इसके आँख, कान, नाक, हाथ-पाँव अभी नहीं बन पाये। यह कच्चे रूप में जन्म भ्रूण है।' डाक्टर ने कहा।

मैंने फिर ध्यानपूर्वक देखा। उस भ्रूण की नाक के स्थान पर दो छिद्र थे, जिससे सम्भवतः श्वास प्रक्रिया चल रही थी और डायफ्राम धमनी की तरह ऊपर-नीचे होता था।

'यह जीवित है, डाक्टर?'

'हाँ, पर इसकी जन्मदात्री मर चुकी। वह रेडियो-ऐक्टिव रोग से ग्रसित थी, और यह देन हमको दे गई है।'

'कैसी भयावनी और विकृत यह देन! अब तो भगवान ही रक्षक हैं।' मेरे मुँह से यह शब्द निकल गये।

'मेरे मित्र, मेजर! आपने बहुत-से संग्राम लड़े होगें। पर यह मनुष्य के जीवन-मरण का युद्ध है। आपने देखा, राक्षसों की नवीनतम जाति

का प्रादुर्भाव ! सम्भव है इस संग्राम में मनुष्य-जाति ही समाप्त हो जाय और प्यारी मनुष्य-जाति की यह विकृत आकृति पृथ्वी-तल पर अविशिष्ट रह जाय।' कहते-कहते डाक्टर अपना मोटा चश्मा हाथ में ले अपने रूमाल से साफ करने लगा।

मैं एक हाथ अपने हृदय पर रक्खे उस जीवित भ्रूण की हृदय-गति को माप रहा था। उसकी गति भी मेरी ही जैसी थी। मालूम नहीं मैं वहाँ कब तक खड़ा रहा। भविष्य की छाया, गहरी, टूटी, सिकुड़ी, विकृत-सी मेरे मन पर छा गई।

११

कूरे के टूटे नगर में मेरी टूटी बैरक, और खण्डित मानवों का व्यथित, क्षुभित उत्पीड़न —सबने मिलकर मेरे व्यक्तित्व को द्रवितकर बिखेर-सा दिया। मैं अपने को ही भूलने लगा। बैरक के कोने में कभी अकेला बैठा-बैठा मैं अपने मन-मुकुर के बिखरे टुकड़ों को बीन-बीनकर जोड़ना चाहता। उनको एकाकार कर कल्पना का रंग भर अपने अस्तित्व का प्रतिबिम्ब निहारना चाहता। पर मुझे सफलता न मिलती। टूटे, धुँधले टुकड़ों में से किसी रोगी का श्वेत कफ़न में लिपटा निश्चल शव झलकता, तो कभी पीले, मुर्झाये मुख पर केन्सर के लाल रक्त-स्राव के धब्बे उभरते, और कभी गलित जबड़ों के पार बिखरी-हिलती दन्त-पंक्ति झड़ती। कहीं कराह, कहीं आह और कहीं मौन वेदना का मूर्त रूप। शायद समवेदना तरल हो मेरे नेत्रों में उफन पड़ी थी जब कैप्टेन नन्दलाल शाह ने पीछे से मेरे दोनो कन्धे दबाते हुए कहा, 'मेजर ! यह आपकी आँखों में निर्झरिणी क्यों बह रही है ? क्या घर की याद सताने लगी ?'

'नहीं नन्दलाल, नहीं तो ! एक आँख में कोई तिनका चला गया

है।' मैं बहाना बनाते हुए बोला और अपने रूमाल को आँखों पर रख लिया।

'आपके दोनों नेत्र लाल थे इस लिए मैंने पूछा। खैर, आप शायद मुझसे दुराव करना चाहते हैं। जाने भी दीजिए। तिनका आँख में रहे तो निकल भी सकता है मगर यदि दिल में समा जाय तो उसकी कसक बेढब होती है और निकलना भी असम्भव।' यह कहकर वह हँसने लगा।

'नन्दलाल, मजाक न करो। मैंने कोई बात क्या कभी तुमसे छिपाई है? मैंने इस देश में मनुष्य-खण्डन के ऐसे दृश्य देखे हैं जो भुलाये नहीं भूलते।'

'किस युद्ध में मनुष्य-खण्डन नहीं होता? यह कोई नई बात नहीं। जीवन में दुःख को बहुत घूरकर नहीं देखना चाहिए, नहीं तो नेत्रों में पानी आ जाता है। सुख और मस्ती में आनन्द लेने में नयन सुन्दरता निरखकर अटपटे रहते हैं और मन बल्लियों उछलने लगता है—हा-हा-हा-हा!' वह उछल-उछलकर कहने लगा।

'मगर सुख में भी दुःख समाया रहता है।'

'वाह रे दार्शनिक! इसमें आपने क्या नई बात कह डाली! यह तो प्रतिदिन दिखती है। गुलाब के पौधे में काँटे भी हैं, फूल भी। काँटों में उलझो, खूनाखून हो जाओगे। किसी डाक्टर के पास भागना पड़ेगा। फूल चतुराई से तोड़ो, उसमें सुगन्ध पाओगे। उसे किसी सुन्दरी को भेंटकर रूप और लावण्य की छटा देख सकोगे।'

'आजकल सुन्दरियों की खोज में लगे हो क्या?'

'सुन्दरियों की खोज में नहीं, केवल एक कामिनी के प्रेम-पाश में।'

'वह कौन-सी?'

'बताऊँगा। मेरा उसूल है: केवल एक समय एक बेल को सींचना,

जिससे वह हरी हो मुझसे ही लिपट जाय।'

'अच्छा सिद्धान्त है। पर वह लता हरित हो तुमसे अभी लिपटी या नहीं?'

'आपको मालूम है कि जापानी अपने सलौने पौधों को छोटा ही रखते हैं। नाटे, बौने पौधों में ही रंग उभरता है। वैसे ही मेरी छोटी प्रेयसी भी किसी बसन्त में मेरी होगी। उसमें प्रेम का अंकुर शायद धीरे-धीरे बढ़ रहा होगा।' आँखों के चारों ओर के काले घेरों में उसके नेत्र प्रेम-विह्वल हो मुँदने-से लगे।

'ओहो! तो अभी नन्दलाल की गोपी ने वंशी की ध्वनि नहीं सुनी और वह स्नेह से आतुर भी नहीं हुई है। कौन-सी है वह ऐसी गोपी?' मैंने नन्दलाल को छेड़ा।

'वह गोपी नहीं, वह गेशा-गर्ल है। क्योतो की संगीत कलाकार और मादकता की सजीव मूर्ति।' नन्दलाल बोला।

'तो कैप्टेन ने मदिरा कूरे में पी और मादकता दूर नगर क्योतो में पायी। क्या तुम वहाँ इस बीच में जाते रहे हो?'

'मैं जाता रहा हूँ और तुमको भी ले चलूँगा। वहाँ तुमको "साके" पिलवाऊँगा—उन पतली मुलायम उँगलियों से। वह छलकते" साका-ज़ूकी" (मदिरा के छोटे प्याले) में तुमको भी रस पिलायेगी।' नन्द-लाल कहने लगा।

'कौन है बला वह, जिसका नाम तुम छिपाना चाहते हो?'

'मैं क्यों छिपाऊँगा। अपनी कोईको सान का नाम। उसका गेशा-हाउस कौन नहीं जानता, जिसकी ख्याति इस नगर तक पहुँची है।'

'अच्छा, तो क्या वह कहानियों में वर्णित सिंहल द्वीप की कोई पद्मिनी है, जिसका नाम सुनते ही तुम उसी ओर भागे।' मैंने कहा।

'मेजर! आप रहे निरे भौंड़े और नीरस ही। न किसी कूकती कोयल

की परख और न किसी लचीली, इठलाती, फूलों से लदी डाली से स्नेह। सुस्त पड़े-पड़े आँसू बहाना और अपने को घुलाते रहना। यह भी कोई ज़िन्दगी है! तुमको मेरे साथ क्योतो चलना पड़ेगा। तुम्हारा फफकना मैं मुस्कान में परिणत करूँगा।' नन्दलाल ने एक हाथ जोर से हिलाते हुए जोश में कहा।

'मैं तुम्हारे साथ चलूँगा, पर एक शर्त पर।'

'वह क्या?'

'तुमको मेरे साथ हिरोशिमा चलना पड़ेगा। मैं वहाँ का युद्ध में हुआ विध्वंस देखना चाहता हूँ।' मैंने कहा।

'मैंने ठीक ही कहा था। आपका मन अट्टालिकाओं में नहीं खण्ड-हरों में अधिक लगता है। पुष्प-वाटिका को न देखकर आप सूखे पत्थरों पर उगी कटीली नागफनी में अधिक आनन्द लेते हैं।'

'कुछ भी कहो। मैं क्योतो तभी चलूँगा जब तुम हिरोशिमा चलने का वादा करो।'

'अच्छा, अच्छा! मेजर! मैं आपको क्योतो ले चलूँगा और आप मुझे हिरोशिमा दिखाइयेगा। फिर हम दोनो तय करेंगे कि कौन-सी जगह अच्छी है।' नन्दलाल बोला।

हम दोनो इधर-उधर की बातें कुछ देर करते रहे, और फिर अपने-अपने काम में व्यस्त हो गये।

★

कैप्टन नन्दलाल और मैं कुछ दिनों की छुट्टी ले क्योतो नगर को रवाना हो गये। जब हम वहाँ पहुँचे फूलों का मौसम अपने निखार पर था। हर ओर लाली और हर बगीचे में रंगीन पुष्प। सचमुच हम शुष्क वातावरण से पुष्प-उद्यान में आ पहुँचे थे।

क्योतो नगर में जापान देश की संस्कृति विकसित है। अनेकों बुद्ध-मन्दिर और शिण्टो धर्म-पूजन की वेदियाँ यहाँ हैं। दिन-भर हम

दोनो इन स्थानों का दर्शन करते रहे। हमारी मातृभूमि से प्रसारित यह धर्म जापान देश के इस नगर के कोने-कोने में सजीव हो गुंजायमान था। मन्दिरों की स्वच्छता, उनकी शिल्पकला अनूठी और मनमोहक थी।

'चलो मेजर ! यहाँ के नामी कत्सूरा (Katsura) महल भी देख डाले जायँ।' नन्दलाल शाह ने कहा।

'जहाँ ले चलो वहीं चलूँगा। दिन में महल और रात में गेशा-गृह।' मेरे मुँह से निकल गया।

'आप ठीक कहते हैं। हर स्थान देखने का यह समय निर्धारित-सा है। यह महल देखने का समय है।'

कैप्टेन नन्दलाल मुझे इन अनूठे महलों में ले गया।

'मेजर ! इस देश की हर वस्तु के पीछे एक इतिहास है। इन भवनों की अपनी एक कहानी है।' नन्दलाल कहने लगा।

'पुरातन संस्कृति के क्रोड़ में इस देश के समाज की आकांक्षाएँ मुखरित हैं। और इतिहास समाज की आत्मा की कहानी है। जापान की सभ्यता भी तो अटूट और दृढ़ है।' मैंने कहा।

'कहा जाता है यह महल इस देश के प्रसिद्ध कलाकार "कोबोरी" ने एक राजकुमार के लिए निर्मित किये। पर कोबोरी बड़ा चतुर था। उसने तीन शर्तें राजकुमार पर लगा दीं—इनके व्यय पर कोई प्रतिबन्ध न हो, निर्माण-काल की कोई अवधि न हो और जब तक यह पूर्ण न हो राजकुमार इनको न देखें।' नन्दलाल ने कोबोरी की प्रशंसा करते हुए कहा।

'तभी तो उसने पृथ्वी पर स्वर्ग के ये खण्ड रच डाले ! कैसी कला, और कैसे मनोरम बगीचे, कैसे कल-कल करते झरनों के किनारे पत्थर से बने पथ ! और कैसे महकते पुष्प और बल खाती लतिकाएँ ! नन्दलाल, तुमने अपने प्रेमालाप का क्या खूब नगर चुना है।' मैं कहने लगा।

'यदि मैं राजकुमार होता तो अपनी कोइको के साथ यहाँ उस कमरे में रहता जहाँ से पूर्णिमा के चन्द्र की प्रथम रजत-रश्मियाँ हमारा स्पर्श करतीं। कहते हैं कि राजकुमार इस कमरे से उस घने वृक्षों की पंक्ति के ऊपर झाँकते चन्द्र की झाँकी लेता था और इस सुन्दर तालाब के स्वच्छ सलिल में उसका बिम्ब देखता।'

'तुम शायद ऐसा न कर सकते। तुम अधीर, उद्विग्न प्रेमी चन्द्र को भी क्षितिज से तोड़कर अपने पास ले आते।'

'क्यों नहीं, हर सुन्दर वस्तु को अपना बना लेना चाहिए; अपने पास रखना चाहिए।'

'तभी तो न तुम्हारे हाथ चन्द्र लगा और न उसकी धवल चन्द्रिका। टिमटिमाती तारिकाओं के जाल में सदा उलझे रहे और उलझते रहोगे।' मैंने नन्दलाल पर व्यंग कसा।

'मेजर! समय दिखा देगा कि मैं इस देश की किसी सुन्दरी को वश में कर सकता हूँ या नहीं।'

'अच्छा, अच्छा! देखा जायगा। इस समय तो यहाँ की रमणीकता निहारी जाय।' मैंने उत्तर दिया।

हम लोगों ने इन महलों का वह कमरा भी देखा जहाँ जापानियों के प्रचलित रिवाज से चाय पेश की और पी जाती थी। कत्सूरा के महलों से हम उन पुराने महलों को देखने गये जहाँ पहिले जापान के सम्राट रहा करते थे। क्योतो एक समय में इस देश की राजधानी थी। चीन के विद्वान् पुरुषों और साधुओं के जगह-जगह दीवारों पर चित्र चित्रित थे। महलों की सुन्दर सुगन्धित पुष्प-वाटिका में मालूम नहीं हम दोनो कब तक टहलते रहे।

मेरे मन में इस नगर की महान सत्ता और जापान की संस्कृति के प्रति श्रद्धा उमड़ने लगी। अनायास ही भारत का इतिहास अदृश्य सूत्रों

से बँधा अदृश्य शक्ति से प्राणित होने लगा। यदि कहीं चन्द्रगुप्त के विशाल भवन जीवित होते, पाटिलपुत्र में संचित संस्कृति अँगड़ाई लेती, नालन्दा के विद्वानों के मन्त्र प्रतिध्वनित होते। अपनी प्राचीन नगरियाँ—मायापुरी, अवन्तिका और काँची एक राग से सप्त सिन्धव आकाश को गुँजाती रहतीं। यदि देश पर बाह्य आक्रमण न होते और सब मन्दिर, भवन स्थिर रहते तो सम्भवतः संसार में हमारी कला, हमारी संस्कृति और अधिक जाज्वल्यमान होती।

अब दिन ढल चला था। छिपता दिनकर मानो उल्लसित हो इस कला-समूह पर रंग और गुलाल उड़ा रहा था। भवनों के छत्र स्वर्णिम हो दमक रहे थे। मेरे मानस-पट पर तिरछी रश्मियों की आभा में सोमनाथ के सीधे ऊँचे मन्दिर-कलश उभरने लगे। यदि वह खण्डित न हुआ होता तो मेरा जाग्रत स्वप्न भी साकार रहता।

★

चौड़ी सड़क छोड़ जब हम पतली गली के सुदूर छोर पर पहुँचे, अँधेरा हो चुका था। एक खिड़की में लगे लकड़ी के डण्डों की बड़ी परछाईं उसके अन्दर की मन्द ज्योति से आलोकित हो गली की पूरी चौड़ाई पर फैली थी। अँधियारे के ऊपर वह सोने की-सी नक्काशी, कालिमा के हृदय पर वे सुनहले इन्द्रजाल देख हम दोनों वहाँ ठिठक गये। वह तो सचमुच इन्द्रजाल ही था, क्योंकि दूसरे क्षण बड़ी लटों से घिरा एक सर बीच में उठने लगा। मैं एक ओर हट गया। कहीं मेरे पैर में वे लटें उलझ न जायँ। नन्दलाल खिड़की के पास पहुँच जाली के परे उचका और उधर से मधुर कण्ठ से निकली खिलखिलाहट ने उसका स्वागत किया। कैसा भाग्यशाली था वह! जब मैं ज्योति-बिम्ब और परछाईं के उलझाव में, तब वह प्रतिबिम्बित मुख की प्रत्यक्ष मूर्ति के पास। चट-से छोटे लकड़ी के गृह के पट खुल गये और नन्दलाल ने मुझे बुलाते हुए कहा, 'अन्दर आओ मेजर!'

मैं उस पालतू कुत्ते की तरह जो दुम हिलाता हुआ अपने मालिक के पीछे-पीछे चलता हो, नन्दलाल के बुलाने से कुछ सहमा-सहमा अन्दर पहुँच गया।

'ये हैं मेरी कोइको सान, और यह मेरे मित्र मेजर....' नन्दलाल बोला।

मैंने झुककर प्रणाम किया, और उस नवेली ने हमको पास बैठने को कहा, 'इतने दिनों के बाद अब आप आते हैं ! आपको नहीं मालूम कि मेरे दिन कितने लम्बे-लम्बे होकर बीते हैं ?' उसने कैप्टेन नन्दलाल से कहा।

'क्या करूँ जल्दी-जल्दी आकर। दूर से आनेवाले को आराम करने को लम्बी रातें चाहिए। पर कोइको के साथ तो रात छोटी हो जाती है....हा....हा....हा....' नन्दलाल के चेहरे पर शैतानी से भरी हँसी छा गई।

'आपके देश के ये कैप्टेन मेरी बहुत छेड़खानी करते हैं। अब इनके साथ आप हमेशा आया कीजिए।' कोइको सान अपने रंगीन चमकते किमोनो के ऊपर पतली कमर पर बँधी 'ओबी' (Obi—कपड़े की चौड़ी पेटी) को सम्हालते हुए बोली।

'हाँ-हाँ, अब मेजर आपके शरीर के रक्षक होंगे और मैं लूट-मार करनेवाला डाकू।' नन्दलाल ने निर्लज्जता से कहा।

'देखिए न उस "काकीमोनो" (दीवाल पर लगी पेंटिंग) में एक शेर बेचारी हरिणी पर झपट कर रहा है। शायद आपके देश में शेर बहुत होते हैं। वहीं के शेर की तस्वीर है।' कोइको सान ने कमरे में लगे एक चित्र की ओर इशारा किया।

'अभी शेर ने हरिणी को पकड़ कहाँ पाया है ? यह जापान देश की चालाक मृगी है।' नन्दलाल ने उत्तर दिया। सिगरेट जलाकर उठते धुएँ में वह देखने लगा।

हम लोग जूते उतार, मोटे गद्दे पर बैठ आनन्द ले रहे थे। पुष्प सुगन्धित उस कमरे में मोरपंखों के चटक रंगों के बीच कोइको अप्सरा-सी मुस्काती बैठी थी। छोटा, नाटा क़द, पतला शरीर, गोरा रंग और गुलाबी गाल। उसके रंग-ढंग, सूरत-शक्ल से यही नहीं मालूम होता कि वह जापान की या चीन की सुन्दरी है। न आँखें पतली, न गालों की हड्डियाँ उभरी और न नाक छोटी गठीली। सुडौल उसके चेहरे में बड़े सलोने नयन, जिनमें मधुर चितवन, पतले छोटे लाल अधर और सीधी नासिका। काले केश जापानी ढंग से सँवारे हुए, जिनमें अनेकों 'हेयर पिन' और कंघी खुसी हुई। उसकी पतली उँगलियों की सुन्दरता मैंने जी भरकर निहारी, जब वह 'साके' (जापानी मदिरा) प्यालों (साके-ज़ूकी) में देने लगी। उसने साके-ज़ूकी देते हुए कोकिल के से मधुर-कण्ठ से कहा, 'मेरे अतिथि! दो-ज़ो (मेहरबानी से यह लो)।

मैंने जापानी भाषा में उत्तर दिया, 'अरी-गातो' (धन्यवाद)।

कुछ देर के ही वार्तालाप में मुझे मालूम हो गया कि कोइको सान बड़ी चतुर और सभ्य स्त्री है। उसकी कला-प्रियता उसके कमरे की सजावट और सफ़ाई में व्यक्त हो रही थी। मदिरा के पात्रों में शायद जीवन का सब सुख उसने घोल दिया था, तभी तो कैप्टेन नन्दलाल मस्त हो कहने लगा, 'मेरी मधुबाला, क्या आज इन छलकते प्यालों में मधुर संगीत नहीं उमड़ेगा ?'

कोइको के मतवाले नयन लज्जा के भार से झुक गये। कपोलों पर लाली चढ़ने लगी। गर्दन नीची कर उसने उत्तर दिया, 'क्यों नहीं। अपने मेहमानों को संगीत ज़रूर सुनाऊँगी।'

वह एक अद्भुत ढंग की वीणा ले आई। चौकोर छोटे डिब्बे का-सा नीचे का भाग जिस पर पतली झिल्ली मढ़ी हुई। लम्बे लकड़ी के टुकड़े के एक सिरे से तीन तार इस डिब्बे से सम्बन्धित थे।

'मैं आज इस "शामीसेन (Shamisen)" पर वह गाना सुनाऊँगी जो पूर्ण चन्द्र की छटा निहार इस देश की महिलाएँ गाती हैं।'

कुछ देर कोइको ने शामीसेन पर वह गत बजाई जो आज तक मेरे कानों में कभी-कभी गूँज जाती है। उसकी पतली उँगलियाँ उस वाद्य-यन्त्र पर चतुराई से चलने लगीं और सब तार स्वरों में झंकृत होने लगे। यही नहीं मालूम हुआ कि झंकार में उसके कण्ठ से उठते मधुर स्वर कब समाने लगे। उसने एक ऐसे राग का अलाप लिया मानो चन्द्रलोक को छूकर उसके स्वर प्रतिध्वनित होने लगेंगे।

मैं कमरे में रक्खी एक बिजली की लैम्प के मन्द प्रकाश की ओर अनायास ही देख रहा था और गायिका के कोकिल-स्वर मेरी स्मृति पर अमिट होते जाते थे। अचानक लैम्प की ज्योति गोलाकार हो विस्तारित होने लगी। स्वच्छ गोल-गोल स्वर्णिम प्रकाश और हमारे इतने निकट। छोटी मेज़ पर गुलदान की डालियाँ भी ऊपर उठने लगीं। अरे! वह तो पाइन और सीडर की-सी हरी-हरी डालें बन गईं।

साके-ज़ूकी में भरी मदिरा उफनकर स्वच्छ सलिल बन गई, जिसमें पूर्ण चन्द्र का प्रकम्पित प्रतिबिम्ब छा गया। क्या मैं किसी सरिता के तीर, सुन्दर वन में पूर्णिमा की चन्द्रिका में विभोर था? कोई सुन्दरी शशि को पृथ्वी पर आमन्त्रित कर रही थी। वह सचमुच हमारे निकट आता जा रहा था। हम स्वरों के अदृश्य तारों से जुड़ने लगे थे। मैंने बच्चे की तरह चन्दा मामा को पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाया। उसी क्षण शायद स्वर्गिक संगीत-स्वर बन्द हो गये होंगे और मेरा स्वप्न भी टूटा होगा, क्योंकि नन्दलाल हँसकर मुझसे कह रहा था, 'वाह मेजर, वाह! आप तो ताल देने को हाथ बढ़ाते ही रह गये। यह जापानी गाना है, अपने देश का नहीं जहाँ श्रोतागण शरीर का एक-न-एक अंग हिला-कर ताल देने लगते हैं।'

'नहीं-नहीं, मैं ताल नहीं दे रहा था। ताली बजाना चाहता था।' दूसरा हाथ बढ़ाकर मैंने ताली बजाई और कोइको की सराहना की। नन्दलाल ने भी प्रशंसा करते-करते साके का पूरा प्याला अपने गले में उँड़ेल लिया। साके साक़ी की कृपा से फिर प्याले में लहराने लगी।

वह हमारे भोजन का प्रबन्ध करने चली गई और हम मदिरा-पान करते रहे। नन्दलाल रंगीनी के रंग में उतराने लगा था।

'मेजर....अब.....आप....मुझे सम्भाले....रहिए.....खाना.....आने ....वाला है....' उसने लड़खड़ाते स्वर में कहा।

'हाँ....हाँ।'

'गाना....अच्छा लगा....या....गानेवाली....?'

'दोनो।'

'कैसी....बेढंगी....बातें....गानेवाली अच्छी....बहुत....अच्छी।'

'अच्छा, गानेवाली ही अच्छी।'

'लो....वो....आ गई....मेरी....को....इ....को....'

उसने गरमागरम खाना छोटी नीची मेजों पर लगा दिया। नन्द-लाल उसके पास खिसकता जाता था। वह मदहोश था—प्रेमालाप के लिए उतावला-सा। वह कहने लगा, 'को-इ-को तुम मेरी हो।'

'जो संगीत का प्रेमी उसी की।'

'कैसी बातें करती....हो....कहो बिल्कुल मेरी ही हो। इन मेजर की भी नहीं।' नन्दलाल ने चौप स्टिक रख दीं और कोइको की ओर घूरने लगा।

'आप खाना खाइए। गरम खाना।' कोइको ने बात बदलते हुए कहा।

'नहीं....मैं.....तुमको.....अपना बनाना चाहता.....हूँ.....हमेशा के लिए....' नन्दलाल उसके और पास खिसक गया।

'आप अपने मित्र को समझाइए।' कोइको ने मुझसे कहा।

'मेजर....क्या....समझाएँगे?....मैं तुम्हारा....पुराना मित्र हूँ, तुमको चाहनेवाला अलबेला प्रेमी। तुमको मेरा बनना होगा। हमेशा के लिए।' नन्दलाल की आँखें लाल थीं और होंठ सूख रहे थे।

'जापान की गेशा-गर्ल किसी एक की नहीं होती, समझे!' कोइको ने दृढ़ता से कहा।

'तो इसका....मतलब....तुम कभी भी मेरी नहीं बन सकती—कैसी धोखेबाज़ी....' वह बोला।

'बन सकती हूँ। अगर तुम मेरे देश में सदा के लिए रहो। इस देश को अपनी मातृभूमि समझो।' उसकी दृढ़ता कठोरता में परिणत होती जाती थी।

'लो मेजर! कोइको हमारे देश को हमसे छीनना चाहती है। मैं ऐसा क्यों करूँ?' नन्दलाल का नशा सर पर सवार था।

'इस मामले में मैं कुछ नहीं जानता। तुम जानो और ये।' मैंने धीरे से कहा।

कैप्टेन नन्दलाल ने कोइको का मुलायम हाथ अपने हाथ में ले लिया था और वह उसके पास फुस-फुस करने लगा, 'कोइको....तुम कितनी....कठोर....हो....? मेरी क्यों नहीं बन जाती?'

उसने फिर सर हिला दिया। ऐसी दृढ़ता कि सर के सँवारे काले बालों में एक भी विचलित न हुआ। कमर में बँधी ओबी में उसने दोनों हाथों की उँगलियाँ खोंस ली और वह मृगी सिंहनी-सी अकड़ कर बैठ गई।

कैप्टेन नन्दलाल की चाटुकारी की वह उपेक्षा करती रही। उपेक्षा में भी मधुरता थी। शब्दों में अडिग दृढ़ता। उस कोमल कुमुदिनी में

वज्र की-सी कठोरता का सामंजस्य मैंने वहीं देखा। कला की प्रतिमा में देश-प्रेम की उच्छ्वासें मैंने वहीं पायीं।

वाह री कोइको सान! तुम गेशा-गर्ल के रूप में पूजनीय, वन्दनीय देवी थीं।

१२

क्योतो में हमारे मन में विकसित उन्माद की लहरियाँ कूरे के खण्डित तट पर टकराने लगीं। पथरीला तट तो स्थिर ही रहा; पर मस्ती की ललित, कलित फैनिल लहरें विस्मृत होने लगीं—कूरे की खाड़ी के निश्चल वक्ष में वे समाने लगीं। गेशा-गृह के मधुर संगीत के कोमल स्वर, डाक्टर तोशियो तनाका के चिकित्सालय की दर्द-भरी आहों और कराहों में डूबने लगे। रोगियों की विवशता की कल्पना ने मुझे ही विवश कर फिर डाक्टर के निवासस्थान पर पहुँचा दिया।

वह कमरे में बैठा किसी पुस्तक का अध्ययन कर रहा था। मुझे आते देख उसने चश्मे की कमानी पर उँगलियाँ फेरते हुए कहा, 'मेरे मित्र! अब आप अधिक व्यस्त रहने लगे हैं। क्या इधर का मार्ग भी भूलने लगे?'

'नहीं डाक्टर! ऐसा कभी सम्भव नहीं कि मैं आपके पास न आऊँ। आपके देश का ऐतिहासिक और सुन्दर नगर क्योतो देखने चला गया था!' मैंने उत्तर दिया।

'वह नगर कैसा लगा?'

'बहुत अच्छा, बहुत श्रेष्ठ। पर मेरा मन तो हिरोशिमा नगर में उलझा है। मैं उसे देखना चाहता हूँ।'

'आपकी आदतें भी कुछ-कुछ मेरी-सी हैं। दुःख से आकृष्ट होना

और सुख से दूर भागना।' तोशियो तनाका ने मुस्कराते हुए कहा।

'हाँ। शायद। पर मैं तो उस नगर को अवश्य देखूँगा !'

'क्यों, क्रूर नगर के टूटे दृश्यों से मन नहीं भरा?'

'नहीं। मैं तो देखना चाहता हूँ अणु-बम का वह विनाश-स्थल जहाँ वर्तमान के साथ-साथ मानव-जाति के भविष्य को भी खंडित करने की चुनौती दी गई है।' यह कहते-कहते मेरी आवाज़ ऊँची उठने लगी।

'विचलित मत हो मेजर। आप हिरोशिमा अवश्य जाइएगा। मैं आपका सब प्रबन्ध कर दूँगा। अब इस समय शान्तिपूर्वक चाय पीजिए!' डाक्टर तोशियो तनाका ने मुझे समझाते हुए कहा।

'डाक्टर! मैं हिरोशिमा का ध्वस्त-शेष केवल देखना ही नहीं चाहता, मैं तो वहाँ के उन वीर नागरिकों को, जिनके प्राण अणु-बम की वेदी पर अर्पण हुए हैं, अपनी श्रद्धाञ्जलि भेंट करना चाहता हूँ। वह नगर मेरे लिए पुण्य-स्थान होगा और वहाँ की यात्रा तीर्थ-यात्रा।' मैं कहता गया।

'आज तो आप बड़े जोश में मालूम देते हैं। क्योतो की सैर ने आपमें तरंगें भर दी हैं। मैं अणु-बम के प्रभाव से पीड़ित रोगियों में उलझा हूँ और आप अणु-बम से उत्पन्न दर्शन-शास्त्र में। फ़र्क केवल इतना है कि मैं यथार्थ संसार में हूँ और आप विचारों की बेपर की उड़ान में।' डाक्टर हँसने लगा। उसके दो सोने से मढ़े दाँत चमकने लगे।

इतने में चाय के प्याले भी ले आये गये और हम चाय पीने लगे। सचमुच आज मेरा मन कभी उदास, कभी विकल और कभी उद्विग्न होता। कुछ देर चुप रहकर मैं तोशियो तनाका से प्रश्न करने लगा, 'डाक्टर! आपने मुझे अणु-बम के अनेकों प्रभावों का ज्ञान कराया है। मैंने उसके विनाशकारी फल प्रत्यक्ष देखे हैं। मगर मेरी समझ में नहीं आता कि यह कौन-सी अणु-शक्ति है जो इतनी भयंकर है।'

'मेजर ! आज आप सचमुच कल्पना और सिद्धान्त के जगत में पहुँचे हुए प्रतीत होते हैं। खैर, मैं आपके कठिन प्रश्न का उत्तर भी दूँगा।' डाक्टर ने अपना चश्मा हाथ में लेकर रूमाल से पोंछा और फिर अपनी नाक पर रखते हुए अपनी आँखें पतली कर लीं। कुछ देर मौन रहकर वह फिर बोला, 'अब तक मनुष्य बहते हुए जल और जलते हुए कोयले में संचित शक्ति का प्रयोग करते थे। पर अब वैज्ञानिकों ने हर वस्तु में निहित अणु-शक्ति पर विजय प्राप्त कर ली है।'

'अणु-बम, अणु-शक्ति, अणु-प्रभाव ! क्या हर ओर मनुष्य का नहीं अणु का राज्य होगा ?' मैंने कहा।

'हाँ, अवश्य, यदि मनुष्य असुर होने लगे और यह महान शक्ति उनके मस्तिष्क विचक्रित करने लगे। मेजर ! अणु हर पदार्थ का सबसे छोटा भाग, पर अपार शक्ति का संचित स्रोत। यह कैसी बिड

'उसी तरह जैसे आपका छोटा तेज़ चाकू बड़ों-बड़ों के पेट चीरने-वाला।' मैंने मजाक़ किया।

'नहीं, उससे भी बहुत खतरनाक। हाँ, तो मैं अणु-शक्ति के विषय में कह रहा था। प्रत्येक अणु में एक अणु-केन्द्र होता है जिसके चारों ओर भ्रमित होते हैं "इलेक्ट्रोन" (Electron), 'प्रोटोन' (Proton) और "न्यूट्रोन" (Neutron)। एक अदृश्य शक्ति इन सबको जोड़े हुए है। अणु का अपना संसार अलग है। अणु-केन्द्र को एक सूर्य समझिए, जिसके चारों ओर पृथ्वी, चन्द्र और तारों के समान इलेक्ट्रोन एक गति से चलते हुए-से हैं।' डाक्टर तोशियो तनाका ने इस विषय का विश्लेषण करते हुए कहा।

'जब अणु की दुनिया अलग, तो मनुष्य को क्या पड़ी कि वहाँ हस्तक्षेप करे ?' मैंने प्रश्न किया।

'लोलुपता से प्रेरित होकर प्रभुत्वशाली बनने के लिए। जिस देश ने

अणु-शक्ति को वश में किया उसी ने सर्व शक्तिशाली होने के स्वप्न देखे। उन देशों ने स्वप्न देखे और हमने स्वप्नों को घोर यथार्थ में परिणत होते देखा—हिरोशिमा में, नागासाकी में, वहाँ के खण्डहरों में और मेरे चिकित्सालय में।' डाक्टर का स्वर भर्रा गया और उसकी उँगलियाँ रोष से प्रकम्पित होने लगीं।

'आज देश भौतिक बल से पृथ्वी पर विजयी होना चाहते हैं। वे नहीं समझते कि उनसे भी कहीं बड़ी शक्ति पूर्ण जगत को संचालित करती है। मनुष्य का आध्यात्मिक विकास आवश्यक है।' मैंने कहा।

'मेजर! आप ठीक कहते हैं, पर इन आदर्शों को मानता कौन है। इस विज्ञान के युग में तो जहाँ भी शक्ति का स्रोत मिला देश उसी ओर पागल हो भागे। अणु-शक्ति को ही ले लो। देशों ने ऐसे अन्वेषण किये जिनसे अणु विस्फोटित हो सके और उसमें निहित शक्ति भी हाथ लगे। अन्त में "यूरेनियम २३५" (Uranium 235), और "प्लूटोनियम २३९" (Plutonium 239) दो रासायनिक पदार्थ इस उद्देश की पूर्ति को मिले और दोनों का प्रयोग हमारे ही देश पर हुआ।'

'मुझे तो अपने सैनिक शिक्षण में बताया गया था कि टी-एन-टी (T.N.T.) ऐसा रसायनिक पदार्थ था जो बमों का विस्फोट करता था।'

'आपकी शिक्षा पुरानी हो चुकी है। अब तो एक अणु-बम के विस्फोट में टी-एन-टी (T.N.T.) के बम से बीस हजार टन अधिक शक्ति का प्रादुर्भाव होता है?' आप कुछ समझे। डाक्टर ने अपना मोटा चश्मा फिर सम्हाला।

'बीस हज़ार टन टी-एन-टी (T.N.T) की शक्ति! कैसा यह बवण्डर?' मैं मन-ही-मन विचार करने लगा। मेरी आँखों के आगे अट्टालिकाएँ बिखरने लगीं और पर्वत-श्रेणियाँ घाटियों के गर्त में समाने लगीं। एक लम्बा विस्तृत, शुष्क मरुस्थल फैलने लगा, जिसमें धूमिल भुरभुरे

रजकण। पवन के तीव्र झोंके और उड़ते भ्रमित रजकण फव्वारे के रूप में ऊपर उठ गये। अरे! यह गगनभेदी नाद! प्रत्येक कण विस्फोटित। लाल-पीले अंगारे और फिर गहरा काला धुआँ। रेगिस्तान की जगह मँडराते, घुमड़ते, कालिमा के पुंज!

'मेजर, उधर खिड़की पर आँख गड़ाये क्या देख रहे हो? बादलों को या उनके अन्तर में छिपे वज्र को?' डाक्टर ने मेरे कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा।

'दोनों को डाक्टर! आज आकाश में मरुस्थल का-सा विस्तार है। सूर्य के लाल गोले ने जैसे दिशाओं में आग लगा दी है।'

हम दोनों क्षितिज की ओर देख ही रहे थे कि अचानक कमरे का दरवाजा खुला और एक नर्स ने डाक्टर से कहा कि एक रोगी स्त्री उसे अभी बुला रही है। वह अपने घर जाने की ज़िद कर रही है।

तोशियो तनाका ने मुझसे भी चलने को कहा और हम दूर एक छोर पर बने कमरे की ओर चलने लगे।

'मेजर! तुम इस रोगी से अधिक बातचीत न करना। उसका मन चंचल होने लगता है।'

'मैं तो स्वयम् आप के रोगियों को देख अवाक् रह जाता हूँ। बातचीत का सवाल ही क्या?'

हम जब कमरे के पास पहुँचे, मैंने देखा कि किवाड़ों की जगह एक मोटे कम्बल का पर्दा पड़ा था। मैंने समझा कि शायद यह कमरा अभी पूरी तौर से बन नहीं पाया। अन्दर जाकर भी मैंने देखा कि किसी भी खिड़की या दरवाज़ों में किवाड़ नहीं। उनमें भी अस्पताल के लाल कम्बलों का पर्दा पड़ा था। एक ओर पलंग पर बैठी एक युवती अपनी मेज़ के गुलदान में फूल सजा रही थी। साफ़-सुथरे उसके कपड़े; पतला, छरहरा शरीर और छोटे हाथ, जिनकी पतली उँगलियाँ जल्दी-ज़ल्दी

फूलों को ठीक करने में चल रही थीं। उसके चेहरे पर हल्दी का-सा पीलापन, जिसमें तिरछे नेत्र और उनकी काली पुतलियाँ अधिक बड़ी मालूम होतीं। श्वेत पानी में तैरती-सी उन पुतलियों में चमक नहीं, वरन् वे अटपटी भूली-भूली-सीं। मालूम होता, उसके नयन किसी खोई वस्तु को खोजते-खोजते थक चुके हैं।

'क्यों यूरीको। क्या परेशानी है?' डाक्टर ने कहा।

'मैं अपने घर हिरोशिमा जाना चाहती हूँ। यहाँ नहीं रहना चाहती।'

'अच्छी हो जाने के बाद जा सकोगी।'

'मैं ठीक हूँ। मुझे रोग ही क्या है?' यह कहकर वह एक क्षण रुक गई। फिर दरवाज़े की ओर देखकर बोल उठी, 'मैं यहाँ से भाग जाऊँगी। मैं अच्छी नहीं हो सकती। मैं अच्छी नहीं होना चाहती।'

'यह नर्स सेत्सूको सान तुमको नहीं जाने देगी। जब मैं आज्ञा दूँगा तभी तुम कहीं जा सकती हो।' डाक्टर ने पहिले सख़्ती से कहा। फिर शब्दों में कोमलता का समावेश कर वह बोला, 'तुम घबराओ मत, धैर्य रक्खो, आराम करो। जब हिरोशिमा में तुम्हारा घर बनकर तैयार हो जायगा, मैं तुमको वहाँ ले चलूँगा।'

'मेरा घर कब बन जायेगा, मुझे बताओ। मैं अभी देखना चाहती हूँ।' यूरीको ज़िद करने लगी।

'तुम्हारा मकान बन रहा है। मैं सेत्सूको को इनके साथ हिरोशिमा भेज रहा हूँ। ये लोग वापस आकर तुम्हारे घर के बारे में बतायेंगे।' डाक्टर ने फिर समझाया।

'ओह! तो आप हिरोशिमा जा रहे हैं, सेत्सूको भी—सब वहाँ जा रहे हैं मगर मैं नहीं।' मेरी ओर देखती उसकी भूली आँखों में शायद कोई पुरानी याद जाग गई होगी, तभी तो वह फिर याचना के स्वर में कहने लगी, 'आप बहुत अच्छे मालूम होते हैं। मेरा एक काम कर

दीजिएगा। हिरोशिमा में ओटा (Ota) नदी के किनारे मेरे मकान को देख आइएगा। वह कितना बन चुका है। वहाँ चेरी का एक वृक्ष है। आजकल फूलों से लदा होगा। मैंने और मेरे पति ने उसे लगाया था। बरसात की उस शाम को मुझे अकेला छोड़कर वह चला गया। अब मैं क्या करूँ?' कहते-कहते तिरछे नेत्रों की कोरों से बड़े-बड़े अश्रु-बिन्दु बह निकले।

नर्स सेत्सूको ने रूमाल से उस रोगी के अश्रु से उमड़ते नेत्र सुखा दिये। वह यूरीको के केशों में अपनी उँगलियाँ उलझाने लगी।

डाक्टर ने यूरीको की पीठ पर हाथ रखते हुए कहा, 'यूरीको! अच्छी यूरीको! पिछली बातों की याद मत करो। सुख से रहो और हँसो। देखो मेरी ओर, और हँसो-हँसो!'

यूरीको ने पीले मुख पर, सूखे होठों में मुस्कान भरने की चेष्टा की। उसकी उँगलियाँ फिर फूलों को सँवारने में लग गईं। डाक्टर कहने लगा, 'शाबाश यूरीको! ऐसे ही प्रसन्न रहा करो। ज़िद नहीं करते। इससे बीमारी बढ़ती है।' वह जैसे छोटे बच्चे को समझा रहा था। उसने मेरी ओर इशारा किया। और हम लोग कमरे के बाहर आ गये।

डाक्टर तोशियो तनाका के मकान तक पहुँचते-पहुँचते मेरी उत्सुकता के बाँध टूटने लगे थे। मैंने प्रश्न करना आरम्भ कर दिया।

'यह रोगी यूरीको तो मुझे अधिक अस्वस्थ नहीं लगी। इसे हिरोशिमा जाने की आज्ञा क्यों नहीं दे देते?'

'आप नहीं जानते। वह वहाँ जाकर क्या करेगी? वह यूरीको—कमलिनी (जापानी भाषा में यूरीको का अर्थ कमलिनी है) कुम्हला चुकी है। कमलिनी रस से भरे सरोवर में ही खिल सकती है। हिरोशिमा-जैसे शुष्क कंकड़-पत्थरों के ढेर में नहीं।' डाक्टर ने उत्तर किया।

'फिर भी वह अपने बनते हुए घर को तो देख सकती है।'

'उसका घर कभी भी नहीं बस सकता। वह सदा के लिए उजड़

चुका है। उसका पति, उसके दो छोटे-छोटे बच्चे सब अणु-बम की आहुति चढ़ चुके। उसका सर्वस्व लुट चुका। मकान बर्बाद हो चुका। शायद कहीं दो दरवाज़े बच गये होंगे। उन्हीं का वह ज़िकर करती रहती है। आप उसके घर के खण्डहर देख आइएगा। उसे इसी से तसल्ली होगी।'

'मैं अवश्य देखूँगा। हिरोशिमा को खूब देखूँगा। वहाँ की हर सड़क और हर गली देखूँगा। केवल मुझे पथ-प्रदर्शक चाहिए।'

'मेरी नर्स सेत्सूको आपका पथ-प्रदर्शन करेगी। मैं उसे आपके साथ भेजूँगा। वह हिरोशिमा की ही रहनेवाली है। आपको सब जगह दिखाएगी।' यह कहकर डाक्टर कुछ देर को चुप हो गया। अपने किसेरू को जलाकर उसने बातों का टूटा क्रम फिर जोड़ लिया, 'आपके ठहरने का भी मैं प्रबन्ध कर दूँगा। हिरोशिमा में मेरे मित्र डाक्टर गोरो हामा-गूची के यहाँ रहिएगा। मैं उनको पत्र लिखे देता हूँ। वह बहुत भले हैं, और हिरोशिमा विद्यालय में इतिहास के प्रमुख प्रोफ़ेसर हैं।'

'आपको मेरे कारण बहुत कष्ट होता है डाक्टर। पर आप कितने अच्छे हैं!' मैं बोला।

'मुझे क्या कष्ट? आप कष्ट की जगह जा रहे हैं मेरे मित्र! जहाँ रहने का कष्ट, जिसे देखने से कष्ट और जहाँ की जनता को महान कष्ट।'

'काश हम सब उस कष्ट और व्यथा को बाँट सकते!' मैंने धीमे स्वर में कहा।

'आप दूर देशवासियों की सहानुभूति को ही मैं अमूल्य समझता हूँ। इस सहानुभूति से ही हमारे देश में फिर रंग-बिरंगे पुष्प खिलेंगे—प्रेम और सहयोग के प्रसून—ठीक वैसे ही जैसे किसी समय यूरीको के घर में खिलते होंगे।' तोशियो तनाका फूलों से भरे गुलदान की ओर देख रहा था।

'क्या यूरीको फूलों की शौकीन थी ?' मैंने पूछा।

'बहुत चतुर गृहिणी और अपनी पुष्प-वाटिका की प्राण। आपने देखा होगा कि अपने कमरे में अभी फूलों में ही उलझी थी। मालूम होता है प्रस्फुटित कलिकाएँ ही उसे प्राण-दान दे रही हैं। उसका जीवन-घट तो टूट चुका है और उसका मधु शुष्क रेत में सूख गया है।'

'हो सकता है कि उसके जीवन में फिर बसन्त आये और फिर फूल खिलें।'

'कभी नहीं मेजर ! कभी नहीं। न यूरीको के जीवन में बसन्त आयेगा, न फूल खिलेंगे। टूटी डाली भी कभी हरी-भरी होती है ? वह बेचारी कष्टों के भार से दबी दुखिया, आशा-विलुप्त, निराशा की मूर्ति और डिगी हुई आत्मा की श्वासों से प्रकम्पित बुझती-सी जीवन-ज्योति।' कहते-कहते डाक्टर चश्मा उतारकर अपने नेत्र रूमाल से फिर पोंछने लगा।

मैंने देखा, गुलदान में लगी कलिकाएँ झुकी जा रही थीं। पुष्प मुरझाये-से लगने लगे थे। पवन के एक झोंके ने खिड़की का एक किवाड़ खटखटा दिया। दो-चार पोली पत्तियाँ पास में लगी बेल से टूटकर कमरे में उड़कर आ गिरीं। पल-भर को बिजली की ज्योति भी मन्द हो गई।

डाक्टर तोशियो से पत्र ले मैंने अपनी जेब में रक्खा और उससे विदा ले मैं चल दिया।

१३

हमारी बैरेक के सामने लगी गुलदावदी की बैंजनी और पीली पतली पँखुरियाँ खुलती जा रही थीं। कैना के बड़े लाल फूलों और चौड़े

पत्तों पर ढलकते शबनम के मोती बाल सूर्य की सुनहली रश्मि के स्पर्श-मात्र से सतरंगों में फूटे पड़ते। लान की घास में इतनी नमी कि मेरे बूट की टो तक गीली हो गई। हवा में एक अजब मस्ती और भारी-पन था। कुछ देर टहलने के बाद जब मेरा जी उकताने लगा, मैंने भारी आवाज में नन्दलाल से कहा, 'क्या आज दोपहर तक चलने का इरादा है?'

'नहीं मेजर! अभी आया, बस अभी। उसने बैरक से कुछ दूर गुसलखाने में से उत्तर दिया और नल की धार और ज़ोर से खोल दी।

'मेरा दिल भी है, परवाना, परवाना—ओ—परवाना....इस गीत को वह इतनी जोर से गाने लगा कि नल की छल-छल पारकर उसकी भनक मेरे कानों तक आने लगी। कुछ देर मैं पानी की सिकुड़ी धार को फूल की क्यारियों में फैलती और बल खाती जल की चादर में परिणत होते देखता रहा। लम्बी पतली किसी टहनी से मैं क्यारी की गीली मिट्टी को कुरेदने लगा, जल को उछालने लगा। कुछ छींटें शायद मेरे माथे पर आ पड़े होंगे क्योंकि ऐसा लगने लगा कि मैं भी इस धरती का प्रफुल्लित पुष्प बन गया हूँ और ओस-कण मेरे ललाट पर झलक रहे हैं।

''लो भई मेजर! मैं आ गया।' कैप्टेन नन्दलाल ने अपने दोनों हाथ की हथेलियाँ जल्दी-जल्दी रगड़ते हुए और कन्धे सिकोड़ते हुए कहा।

'आज क्या कहना! सुबह से ही तुम्हारा दिल परवाना बन रहा है।'

'दिल फेंकनेवाले की मत पूछो। कभी दिल परवाना, कभी दिल मधुप, और कभी दिल ही नहीं, हा....हा....हा....' नन्दलाल हँसने लगा।

'कैप्टेन! सुबह-सुबह भगवान का नाम लेना चाहिए या ये सब खुराफात बकना चाहिए।'

'भगवान का नाम जपते-जपते, समाधि-सी लेकर रात-भर सोया हूँ।

क्या फिर अब वही नाम रटने लगूँ, तब तो हो गई छुट्टी। आपकी आज्ञा हो तो उस पेड़ के नीचे धूनी रमा लूँ।' अपनी आँखें चमकाकर वह बोला।

'अब इस बहस को छोड़ो भी। न तुमने समाधि ली और न तुमसे धूनो रमे। चलो, जल्दी नाश्ता करें और फिर हिरोशिमा की राह पर।'

हम दोनों मैस में चल दिये। खाना खाकर जब हम बाहर आये तो देखा कि दिनकर की आभा निखरने लगी थी। जल्दी-जल्दी सामान फ़ौजी जीप में रखकर हम डाक्टर तोशियो तनाका के चिकित्सालय की ओर रवाना हो गये।

चिकित्सालय के फाटक पर नर्स सेत्सूको सान हमारी बाट जोह रही थी। नर्स के सफेद कपड़ों की जगह आज रंगीन किमोनो और छोटे हाथों में फूलों का गुच्छा, हरी झाड़ियों के पास दुबली-पतली वह रंगीन लतिका-सी। सुनहले प्रभाकर ने उसके गोरे मुख की गुलाबी में एक अजब ताज़गी भर दी थी। वह इस समय उपचारिका नहीं वरन् सुन्दर सुडौल रमणी थी जिसे पहिचानने में मुझे भी कुछ कठिनाई होती यदि वह स्वयम् यह वाक्य न बोलती :

'आपकी बाट मैं बहुत देर से जोह रही थी।'

'ये मेरे मित्र कैप्टेन नन्दलाल, जिनकी वजह से मुझे देर हुई।' मैंने कहा।

'हाँ, मैं अपना क़ुसूर क़बूल करता हूँ। मेरे ही कारण आपको कष्ट हुआ। पर आप तो इस हरियाली में स्वयम् फूल-सी लग रही हैं।' नन्दलाल ने उसे झुककर प्रणाम करते हुए कहा।

वह शरमाकर कुछ न बोली। उसका बैग उठाकर नन्दलाल ने जीप में रख लिया। वह अकड़कर चुस्ती से सेत्सूको के पास पीछेवाली सीट पर बैठ गया और मैं आगे ड्राइवर के पास।

हम सब चुप थे। सुबह की ठण्डी नम हवा आँखों में घुसी जा रही थी। पीछे किमोनो लहरा रहा था, क्योंकि जब मैंने मुड़कर देखा नन्द-लाल कसेत्सूको के किमोनो की सिलवटों को स्पर्श कर रहा था; उसके हाथ की उँगलियाँ हिल रही थीं। सेत्सूको ने धीमे स्वर में धन्यवाद दिया और वह एक ओर खिसक गई।

कूरे नगर के बाहर होते ही सड़क घुमावदार, टेढ़ी-मेढ़ी समुद्र-तट के पास आती जाती। ऐसा लगता मानो नीले जल के विस्तृत छोरों पर भूरी लाल झालर लहराती हो। कायटाची (Kaitachi) के कस्बे से कुछ दूर मार्ग पतला होने लगा। आगे दो विशाल पत्थर, जिसके बीच में से बल खाती यह सड़क। ड्राइवर ने जीप की गति मन्द कर ली। नन्दलाल के कहने से हम एक ओर रुक गये।

'मेजर ! ऐसी भाग दौड़ क्या है ! हम सब छुट्टी पर जा रहे हैं, ड्यूटी पर नहीं। आओ, कॉफी पी जाय।'

उसने बोतल खोलकर कॉफी एक प्याले में सेत्सूको सान को दी।

वह कहने लगी, 'आप हमारे नगर चल रहे हैं। मुझे आपकी खातिर करनी चाहिए थी।'

'कुछ परवाह नहीं। हिरोशिमा पहुँचकर खातिर कीजिएगा। रास्ते में आपकी देख-भाल हम करेंगे।' नन्दलाल कहने लगा।

'आपकी यूरीको का क्या हाल था ?' मैंने सेत्सूको से पूछा।

'अब वह ठीक थी। बड़ी कठिनाई से उसने मुझे छोड़ा और आपके साथ मैं चल सकी।' सेत्सूको ने अपनी पतली उँगलियों में कॉफी के प्याले को घुमाते हुए कहा।

'आप हैं ही इतनी अच्छी कि जिनको मुश्किल से छोड़ा जा सकता है। हाँ, तो आप और आपके डाक्टर कूरे में कितने दिनों से हैं ?' नन्द-लाल ने कहा।

'डाक्टर बहुत दिनों से और मैं लगभग एक वर्ष से ।' अपनी प्रशंसा सुन उसके कपोलों पर लाली चढ़ने लगी ।

'चिकित्सालय में रोग और रोगियों के वातावरण में आप सबकी तबीयत कैसे लगती होगी ? कभी-कभी हम लोगों के साथ सैर करने की कृपा किया कीजिए ।' नन्दलाल ने कहा और सेत्सूको की ओर एक-टक देखने लगा ।

'आपके साथ चल तो रही हूँ । जैसे आपका मन युद्ध करने में लगता है, मेरा मन रोगियों के उपचार में ।' उसने अपनी पतली आँखें नीचे झुका लीं । उसकी घनी काली बरौनी ऐसा आभास दे रहो थी मानो उसके नेत्रों में काला सुरमा लगा हो ।

'इस देश की नारियाँ बातें करने में आपकी तरह बहुत चतुर होती हैं । पर पते की बात बहुत कम बताती हैं ।' नन्दलाल सिगरेट जलाकर धुआँ निकालते हुए बोला ।

'क्या आपको बहुत-सी स्त्रियों का अनुभव है ?' सेत्सूको ने नीची नज़र किये हुए ही प्रश्न किया ।

नन्दलाल कुछ सिटपिटा गया ।

'इस वक्त तुम मात खा गये दोस्त !' मैंने उसकी चुटकी ली ।

'अन्त में जो मात खा जाय उसको हारा हुआ समझना ।' उसने धीमे शब्दों में मुझसे कहा ।

'हाँ तो मेजर ! आप हिरोशिमा में डाक्टर गोरो हामागूची के यहाँ ठहरेंगे । और यदि आपको कष्ट न हो, तो मैं आपके यहाँ टिक जाऊँ ।' कैप्टेन नन्दलाल ने अपनी झेंप मिटाने के लिए बातों का क्रम बदलते हुए सेत्सूको सान से कहा ।

'अवश्य ! खुशी से । मेरे वृद्ध माता-पिता बहुत प्रसन्न होंगे ।' उसने चट से उत्तर दिया ।

मैंने कनखियों से नन्दलाल की ओर देखते हुए मुँह बिचका दिया उसने अपने दाँत ऐसे पीसे मानो अपनी विफलता पर विजय पाने का प्रयास कर रहा हो। अपने दाहिने हाथ की मुट्ठी मार वह बाएँ हाथ की हथेली पर ज़ोर से दबाने लगा। सेत्सूको सागर की ओर देख रही थी और उसका कॉफी का प्याला रिक्त हो चुका था। समीर की हिलोर उसकी लटों में उलझने लगी। हम दोनों की दृष्टि भी कभी लटों की अठखेलियों में अटकने और कभी सागर की हिलोरों पर फिसलने लगी।

★

जब हम हिरोशिमा नगर पहुँचे दिन चढ़ चुका था। प्रभाकर के पूर्ण प्रकाश में हमने आँख खोलकर देखा—मीलों तक विस्तृत प्रलय-प्रदर्शन। टूटे बिखरे पत्थर, और ईंटों के ढेर। मरोड़े हुए ज़ंग लगे लोहे के ढाँचे। सब ओर विनाश और ध्वंस। नगर की मुख्य सड़कें भी चटकी, टूटी, जिन पर लाखों दरारें और दरारों में से झाँकती सूखी घास और कँटीले झाड़। पीछे दूर हरी पहाड़ियाँ स्थिर और निश्चल। उनकी प्राकृतिक छटा मानो नीचे फैले ध्वस्त-शेष पर आँसू बहा रही थी। जगह-जगह पर धरिणी धँस गई थी और सागर विचलित हो उफन-उफन-कर तट पर थपेड़े मार रहा था।

'देखिए हमारे जापानी पंखे की शक्लवाले इस सुन्दर नगर का हाल ! वहाँ दूर पर ओटा नदी और उससे निकले ये सात छोटे नाले यहाँ की व्यथित वेदना से उमड़ते अश्रुओं को सागर में बहा ले जाने के लिए भी कम हैं।' सेत्सूको की सुरमीली, तिरछी आँखों की कोरों में भी पानी उमड़ने लगा।

'हम देख रहे हैं हिरोशिमा के दुःखी कटे-फटे हृदय को और उस पर लदे खण्डहरों के भार को।' मैंने अपने होठों को ऊपर के दाँतों से दबाते हुए कहा।

'और मैं देख रहा हूँ अवशिष्ट इमारतों की विशालता को। इन टूटे ईंट-चूने के ढेर में ये दो-चार खड़े मकान कितने बड़े मालूम देते हैं। जैसे प्रहरी खड़े खण्डहरों की रखवाली कर रहे हों।' कैप्टेन नन्दलाल बोला और उसने सिगरेट मुँह से निकालकर दाहिने हाथ की उँगलियों में ले ली। कुछ देर चुप रहकर उसने प्रश्न किया, 'दूर पर छोटे सिपाहियों के बीच वह जनरल-सा बड़ा ऊँचा किसका मकान खड़ा रह गया है ?'

'ओ वह ! वह रेड-क्रॉस का अस्पताल था। मैं वहाँ बहुत दिनों काम कर चुकी हूँ। मालूम नहीं वह बम गिरने के बाद कैसे बच गया !' सेत्सूको सान ने उत्तर दिया।

'इसी लिए क्योंकि आप वहाँ काम कर चुकी हैं। हमारे देश में सुन्दर स्त्री को अप्सरा कहते हैं। वह आकाश में रहनेवाली जिसको चाहे मारे जिसको चाहे जिलाये। और आप तो रोगियों को जिलानेवाली नर्स, कोमल सुकुमारी-सी नर्स हैं।' नन्दलाल कहने लगा।

'अच्छा ! आपको बेबात की प्रशंसा करना खूब आता है।' सेत्सूको ने झेंपते हुए कहा।

'मैं हमेशा सच बोलता हूँ। देखिए आप के गोरे रंग में कहीं धूप न लग जाये, उसे बचाने ये बादल भी छाँह करने लगे।' नन्दलाल ने शरारत से कहा। सिलेटी बादल के एक बड़े टुकड़े ने इस क्षण अपनी ओट में सेत्सूको को ले लिया था।

'कौन कहता है कि तुम झूठ बोलते हो। पर हर बात करने का ठीक मौक़ा होता है।' मैंने नन्दलाल से सख़्ती से कहा।

'माफ़ कीजिए मेजर साहब ! मुझे नहीं मालूम था कि मेरे इस नर्स की प्रशंसा करने से आपके दिल में इतनी ठेस लगेगी। तो आप ही सम्भालिए उसे।' नन्दलाल ने आँखों की पुतलियाँ घुमाते हुए मेरे

कान में धीमे से कहा ।

'चुप भी रहो नन्दलाल। क्यों बकवास करते हो?' मैंने उसे झिड़का। फिर सेत्सूको सान से पूछने लगा—वह जगह कहाँ है, जहाँ यूरीको रहती थी और जहाँ उसका पति काम करता था ?

'चलिए, पहिले वह फैक्ट्री दिखाऊँ जहाँ उसका पति मैनेजर था। यूरीको का मकान यहाँ से कुछ दूर है। ओटा नदी के किनारे।'

हम सब ऊबड़-खाबड़ रास्ते पार कर खण्डहरों के एक बड़े ढेर के पास रुक गये। वहाँ लोहे के ढाँचे और टूटे शहतीर और कंकड़-पत्थर के ढेर थे। न कहीं छत, न दीवार, और न फ़र्श। केवल एक ओर दो बन्द किवाड़ खड़े थे।

'यही वह फैक्ट्री थी। यूरीको के पति का यही दफ़्तर था। पूरी फैक्ट्री बर्बाद हो गई और केवल यह दफ्तर के किवाड़ बच गये।' सेत्सूको ने कहा।

'और उसका पति उस समय दफ़्तर में था या अपने घर में?' नन्द-लाल ने पूछा।

'इसी दफ़्तर में। जापान में तो सब लोग सुबह ही से अपने काम में लग जाते हैं। मैं उस दिन बीमार थी और घर पर रही। इसी लिए आज जीवित हूँ।' सेत्सूको ने कहा।

हमने गौर से देखे वे खड़े चौखट और उनमें वे दो दरवाज़े। नश्वरता के विराट् समूह में वे कितने बड़े लगते थे। मैंने पास जाकर बन्द किवाड़ों को धक्का देकर खोलना चाहा, पर वे न डिगे।

'ये दरवाज़े नहीं खुलेंगे, कभी नहीं खुलेंगे। इन पर पटक-पटककर यूरीको ने अपनी हथेलियाँ लोहू-लुहान कर ली थीं, अपने प्रियतम की खोज में। ये टस से मस भी न हुए थे। यह पट सदा के लिए बन्द हो चुके हैं। अगर उनके पार देखना चाहते हैं तो आइए, इन बिखरी इमारतों

को देखिए ।' सेत्सूको ने चौखटों के पीछे अपने हाथ का इशारा करते हुए कहा ।

'कैसा वीभत्स यह प्रकोप ! एक अणु-बम द्वारा यह सर्वनाश ! मेरे नेत्र खुलने-से लगे हैं ।' कैप्टेन नन्दलाल ने अपने नयन कुछ बड़े करते हुए कहा ।

'जब लोगों के भाग्य के पट बन्द हुए तब आपके नेत्र खुले तो क्या खुले ! आप फ़ौजी लोग तो बम चलाना जानते हैं । उसका प्रभाव हम रोगियों की शुश्रूषा करनेवालों से पूछिए । यह सब देखकर भी क्या संसार में अणु-बम बनाना बन्द न होगा ?' सेत्सूको ने नन्दलाल की ओर देख कर मुस्कराते हुए कहा ।

इसी समय पास में धड़ाका-सा हुआ । मुझे लगा यह अणु-बम का विस्फोट था । ऊँची दीवारें भरभरा कर गिर रही थीं । चूने और धूल का ग़ुबार उठ रहा था । चारों ओर चिल्ल-पुकार, चीत्कार और कराह । कैसा यह भूकम्प ! पूरी फैक्ट्री विध्वंस और विनिष्ट । इसमें काम करनेवाले कहाँ गये ? कहीं से दबा हुआ मन्द शब्द उठा, 'वे सब देश-प्रेम की बलिवेदी पर चढ़ गये । अब उनमें से कोई भी जीवित नहीं ।' मैं हड़-बड़ा गया । मध्यान्ह के चमकते सूर्य की किरणें मेरी आँखों में घुसी जा रही थीं और मेरे नेत्र अर्धोन्मीलित-से हो गये थे । आँखें खोल मैंने देखा, पास के एक खण्डहर को कुछ जापानी धक्का देकर ढा रहे थे । एक बड़ा शहतीर धम से नीचे आ गिरा था । मैं रूमाल से अपने माथे पर चिपके रजकण झाड़ने लगा ।

सेत्सूको सान कह रही थी, 'जब वह विनाशकारी बम उस सुबह यहाँ गिरा, इस सूर्य के प्रकाश से कई गुना प्रकाश क्षितिज पर छा गया । मानो हज़ारों सूर्य एक में मिल गये हों । प्रभात में मध्यान्ह हो गया और आकाश में आग जलने लगी । जागनेवालों की आँखें बन्द हो गईं और

सोनेवालों की खुल गईं।'

'फिर मैं क्या ग़लत कह रहा था कि अब मेरे नेत्र खुलने लगे हैं। देखो मेरी ओर मेरे नेत्र खुले हैं या बन्द ?' नन्दलाल ने सेत्सूको से कहा।

'बन्द, बिल्कुल बन्द।' सेन्सूको ने प्रगल्भता से कहा।

'आपके लिए मेरे नेत्र बन्द ही सही। आप पास रहें और मैं आनन्द से विभोर अपने नयन बन्द रक्खूँ; सदा बन्द।' नन्दलाल ने अपनी आँखों के पलक बन्द करते हुए कहा।

हमने देखा, जगह-जगह पर जापानी युवक पुराने मकानों को गिराने में और नये घरों का निर्माण करने में जुटे थे। लोगों के रहने के लिए कनस्तर की टीनों को जोड़कर बल्लियों पर छत डालकर छोटी-छोटी झोपड़ियाँ बना दी गई थीं। कई फ़ैक्ट्रियों की छत नदारद जिनकी जगह तिरपाल पड़े थे। वहाँ के क्रियाशील कार्य करनेवालों ने फ़ैक्ट्री की मशीनों को चालू कर लिया था। वहाँ का कोई भी निवासी हाथ धरे अपने भाग्य को नहीं कोसता था। सब इस नगर के नव-निर्माण की धुन में लगे थे।

हम तीनों ने एक खाली टीन की झोपड़ी में बिस्कुट खाते हुए और कॉफी पीते हुए अगले दिनों का क्रम निश्चित किया। यह तय हुआ कि इस समय अपने-अपने ठहरने की जगह जाकर विश्राम करें और दूसरे दिन सुबह आठ बजे से फिर घूमने निकलें।

नन्दलाल तो सेत्सूको सान के साथ परछाईं की तरह लग लिया था। वह उसी के पीछे-पीछे हो लिया।

★

मैं जब प्रोफ़ेसर गोरो हामागूची के मकान पर पहुँचा, तीसरा पहर हो चला था। प्रोफ़ेसर कमरे में एक ओर बैठा अपने कागजों को

उलट-पलट रहा था। टूटी टीनों से बना उसका घर, ठीक वैसा ही था जिसमें बैठकर हमने कुछ देर पहिले कॉफ़ी पी थी। फ़र्क सिर्फ़ इतना कि इसमें बिजली लगी थी। मैंने डाक्टर तोशियो का पत्र उसे दिया और उसने मुझे एक ओर पड़ी लकड़ी की कुर्सी पर बैठने को कहा।

'मुझे बहुत प्रसन्नता है कि आप मेरे अतिथि हैं। डाक्टर तोशियो तनाका कैसा है, वह मेरा पुराना मित्र है।'

'वह ठीक हैं। मैं हिरोमिशा को देखने आया हूँ।' मैंने कहा।

'युद्ध के पहिले देखते। यह वाक़ई देखने लायक जगह थी। अब यह नगर बर्बाद हो गया। फिर भी लोग इसे बना रहे हैं। मुमकिन है पहिले से भी अच्छा बन जाय।'

'हाँ। मैंने देखा है। बहुत लोग नये घर बना रहे हैं। सड़कें ठीक कर रहे हैं।'

'अभी तो आपको इस पुराने ही मकान में रहना होगा। आपको कष्ट तो होगा, पर मैं एक कमरा आपको रहने को दे दूँगा।'

'धन्यवाद। और यह सौगात आपके लिए।' मैंने बिस्कुट और सिगरेट के बहुत-से पैकेट प्रोफ़ेसर को भेंट करते हुए कहा।

'ओह! इतनी सिगरेट! हम सब बहुत दिन तक साथ-साथ पियेंगे। यहाँ आजकल इन चीज़ों की कमी है।' गोरो हामागूची ने एक सिगरेट पैकेट में से निकालकर होठों में लगाते हुए कहा।

'डाक्टर तोशियो तनाका ने मुझे बताया था कि आप इतिहास के प्रसिद्ध प्रोफ़ेसर हैं।'

'हाँ, इतिहास मेरा मुख्य विषय है। जापान के इतिहास और चीन के इतिहास का मैंने विशेष अध्ययन किया है। पर मेरी सब पुस्तकें जल चुकी हैं। मैं ही एक चलती-फिरती पुस्तक की तरह रह गया हूँ।'

'तब तो आपसे बहुत-सा ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।' मैंने कहा।

'ज्ञान तो आजकल विज्ञान में है। मैं तो पुरातन-काल की मिटती कहानी कहनेवाला हूँ, क्योंकि मैं भी पुराना हो चला हूँ।' प्रोफ़ेसर ने अपनी छोटी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए और सुनहली कमानी के चश्मे को नाक पर नीचा करते हुए कहा। मैंने देखा कि उसकी पतली आँखों की पुतलियों के चारों ओर मकड़ी के जाले-जैसी सफेदी थी और उसके हाथ कभी-कभी काँप जाते थे।

'इतिहास वर्तमान का निर्माता है, और वर्तमान विज्ञान इतिहास बना जा रहा है क्योंकि नये अन्वेषण बहुत गति से आगे बढ़ रहे हैं।' मैंने कहा।

यह बात सुन वह प्रसन्न हो गया। उसकी छिरछिरी सफेद मूँछों से छिपे होठ हँसी से खुल गये और दो-चार पीली-पीली बिखरी दाढ़ें उसके पोपले मुख में दिखने लगीं। वह बोला—आप समझदार और दिलचस्प व्यक्ति मालूम देते हैं। डाक्टर ने लिखा है कि आप इण्डिया के निवासी हैं।'

'हाँ, मैं इण्डिया का रहनेवाला हूँ।'

'उस देश के रहनेवाले जो पुरानी संस्कृति का स्रोत रहा है। मुझे सब पुरानी बातों से प्रेम है, क्योंकि मैं भी तो पुराना हूँ।' प्रोफ़ेसर ने सिगरेट जलाकर एक कश खींचा।

'मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि हमारे देश की संस्कृति का आपके मन में इतना उच्च स्थान है। आप-जैसे विद्वान के विचार मेरे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।' मैंने कहा।

'जिस व्यक्ति ने इतिहास का थोड़ा भी अध्ययन किया है वह जानता होगा कि संसार के देशों में शान्ति और प्रेम के प्रवर्तकों का कहीं उच्च स्थान रहा है, उन व्यक्तियों की अपेक्षा जो अशान्ति और द्वेष के बीज बोते रहे हैं। अपने देश के गौतम बुद्ध और अशोक को ही

ले लीजिए। वह इतिहास के पृष्ठों में अधिक आलोकित हैं, इस जलती रोशनी की तरह।' हामागूची ने माचिस की एक तीली जलाकर अपनी काँपती उँगलियों में पकड़कर कहा। तीली की हिलती ज्योति एक क्षण उसके चश्मे के शीशों में प्रतिबिम्बित हो गई।

'आप ठीक कहते हैं। अधिक नर-नारी आजकल शान्ति चाहते हैं। मनुष्य-समाज शायद सुधर रहा है।'

'मेरी राय में मनुष्य-समाज अपनी आत्मा का विलोप कर जड़ पत्थरों का ढेर बना जा रहा है, इस नगर के खण्डहरों की तरह। इस युग में विश्व के सब देश एक ही अदृश्य सूत्र में बँध जाने चाहिए—बन्धुत्व और प्रेम के व्यापक सूत्र में। सारे संसार में ओशाका समा (गौतम बुद्ध) का सत्य और अहिंसा का मन्त्र एक महानाद बनकर प्रसारित होना चाहिए। ऐसा महानाद जो सागर की उत्ताल तरंगों को पारकर हर देश में प्रतिध्वनित होने लगे। तभी हम सब का कल्याण होगा।' प्रोफेसर हामागूची के जीर्ण शरीर के अवयव फड़कने लगे। उसके कण्ठ से यह शब्द एक अद्भुत दृढ़ता के साथ निकले और टूटी टीन से बनी इस कुटिया की दीवारों से टकराकर गूँजने लगे। उसने अपना चश्मा दाहिने हाथ में ले लिया। उसकी धुँधली-सी आँखें कम धुँधली मालूम होने लगीं। उसके मुख पर गम्भीरता की छाया और गहरी होने लगी।

हम दोनो बहुत देर तक बातें करते रहे। अँधेरा सघन हो चला। टूटी झोपड़ियों में दीप टिमटिमाने लगे।

१४

दूसरे दिन सुबह लगभग आठ बजे हम ओटा नदी के किनारे यूरीको के टूटे घर के पास थे। घर का आधा भाग विध्वंस हो चुका था। केवल उसका मुख्य द्वार और कुछ झुकती टेढ़ी दीवारें शेष थीं। इस द्वार के भी किवाड़ बन्द। पास की दो सीढ़ी चढ़कर नन्दलाल दरवाज़े खटखटाने लगा और कहने लगा, 'इस नगर में यह अजब बात देखी कि इमारतें टूटी-बिखरी मगर उनके दरवाज़े बन्द।'

'इसलिए कि आप-जैसे अजनबी कहीं अन्दर न घुस जायँ।' सेत्सूको ने मज़ाक किया।

'हम-जैसे तो अन्दर पहुँच ही जायँगे। जब आपके घर में आश्रय ले लिया तो और घरों में घुसने की क्या आवश्यकता? मैं तो इस देश के निवासियों के हृदय के अन्दर पहुँचना चाहता हूँ।' कैप्टेन नन्दलाल ने अपने होठ चौड़े करते हुए और अपने दिल के पास दाहिना हाथ रखते हुए कहा।

'वाहरे नन्दलाल! आज तो रं में हो। सेत्सूको सान के घर में एक रात ठहरने का यह असर!' मैंने नन्दलाल को छेड़ा।

'नहीं मेजर! मज़ाक मत समझो। इस मार-काट और विनाश के ताण्डव से मेरा माथा चकराने लगा है। मैंने पहिली बार देखा है विशाल नगर को विस्तृत मरुस्थल में परिणत हुआ। इसी लिए मैं भागकर इस टूटे घर के अन्दर छिपना चाहता हूँ।' नन्दलाल ने यह कहते-कहते फिर दरवाज़ा खटखटाना शुरू किया।

'रात में सेत्सूको के मकान में छिप सकते हो पर दिन में वहाँ छिपने का कोई ठिकाना नहीं।' मैंने कहा।

'कैप्टेन, यह दरवाज़ा ऐसे नहीं खुलेगा। यूरीको घण्टों इन पटों

को खटखटाती रही होगी। तभी तो उसकी छोटी हथेली लोहू से लथ-पथ थीं। उसका भी मस्तिष्क यहाँ चकराने लगा था। शायद इस जगह में ही कोई ऐसा असर है या शायद उस बम में जो उस सुबह यहाँ गिरा।' सेत्सूको बोली।

उस समय आकाश ताम्रवर्ण था और एक सफेद बगुला क्षितिज पर सागर की ओर उड़ता जा रहा था। मेरी आँखें उसकी उड़ान के साथ-साथ चलने लगीं। मैं कहने लगा, 'देखो वह सफेद बगुला उस श्वेत कपोत की भाँति लग रहा है जो देशों में सन्धि के समय उड़ाये जाते हैं।'

सब ने आकाश की ओर निहारा। सेत्सूको अचानक बोल पड़ी, 'ओह! आज तो आकाश ठीक वैसा ही है जैसा ६ अगस्त १९४७ को था। और समय भी यही लगभग आठ बजकर पन्द्रह मिनट।' उसने अपनी कलाई में बँधी छोटी घड़ी में समय देखा।

दूर फैक्टरी में एक भोंपू बहुत देर से बज रहा था। वह पास की झाड़ी में झुककर दुबकने ही वाली थी कि मैंने प्रश्न कर दिया—आप वहाँ क्यों जा रही हैं?

'ओह! ओह! अपनी पुरानी आदत से मजबूर होकर। मुझे याद आ गई उस प्रभात की जब विश्व-युद्ध में वह एक नये अभिशाप का सन्देश लेकर यहाँ उदय हुआ। मैंने समझा, वहाँ दूर हवाई हमले का द्योतक भोंपू बज रहा है। मेजर! उस सुबह ये सन्धि के प्रतीक श्वेत बगुले और कपोत नहीं उड़ रहे थे। यहाँ उड़ रहे थे भर्राते, शोर करते शत्रु के वायुयान, बी० २९ या मिस्टर बी० अथवा हमारी भाषा में बी० सान।

'मारो गोली बी० सान को। इस समय तो सेत्सूको सान हमारे पास है।' नन्दलाल ने हँसकर कहा।

'काश आप उनको गोली मारकर गिरा सकते ! उन वायुयानों ने यहाँ ऐसे वज्र गिराये कि भूले नहीं भूलते । उनकी याद से रोंगटे काँपते हैं । बेचारी यूरीको का तो सर्वस्व ही लुट गया ।' सेत्सूको बोलते-बोलते रुक गई, जैसे उसके गले में कोई चीज़ अटक गई हो ।

मेरे दाहिने हाथ की उँगलियाँ बाईं बाँह का स्पर्श अपने-आप ही करने लगी थीं । मेरे रोंगटे सचमुच ही खड़े होने लगे थे ।

'यूरीको के क्या कोई चोट लगी थी ?' नन्दलाल ने प्रश्न किया ।

'मामूली चोट नहीं । इतनी गहरी चोट जो आज तक हरी है । उसका पति, उसके दो छोटे बच्चे, सब इन खण्डहरों में समा गये और वह रह गई बेचारी अनाथ दुखिया ! उस चेरी वृक्ष के ठूँठ की तरह जिसकी वह याद करती रहती है ।' सेत्सूको ने एक सूखे हुए वृक्ष के तने की ओर इशारा किया ।

'तो यही वह चेरी का पेड़ था जिसके बारे में यूरीको ने मुझसे चलते समय कहा था ।' मैं बोला ।

'हाँ यही । तब पृथ्वी पर और चारों ओर लाल मांस के लोथड़े और मनुष्यों के छिन्न-भिन्न अंग बिखरे थे । कैसी वह विभीषिका ! हिरोशिमा की धरा संसार के प्रथम अणु-बम के विस्फोट की प्रयोगशाला बनी । वह प्रयोगशाला जिसका अस्तित्व बम के पहिले प्रयोग हो में मिट गया । यहाँ की धरती पर बिजलियाँ गिरीं । हर ओर लम्बी-टेढ़ी-गहरी दरारें जो प्रत्येक जीव को निगल जाने को आतुर, ठीक वैसी ही ।' सेत्सूको ने गहरी साँस भरकर, एक ओर खाई-सी गहरी धँसी ज़मीन की ओर उँगली उठाई ।

'क्षमा कीजिए आपकी चेरी के लाल पुष्पों की उपमा मांस के चिथड़ों से कुछ भौंडी रही ।' नन्दलाल ने उसे टोकते हुए कहा ।

वह कुछ शरमाकर बोली—जापानी स्त्रियाँ पुष्पों का महत्त्व खूब

जानती हैं। पर सत्य तो सत्य ही रहेगा। उस सुबह भी इन क्यारियों में पुष्प प्रस्फुटित रहे होंगे, क्योंकि यूरीको फूलों की शौक़ीन थी। वह गुलदान बड़ी चतुराई से सजाती थी। वह कहती थी कि उस सुबह उसका पति दफ़्तर जा चुका था। दोनों बच्चे स्कूल पहुँच गये थे। सबने साथ-साथ हँसी-खुशी से नाश्ता किया था। उसने गुलदान में रंगीन फूल लगाये थे। गुलदान में सबसे बड़ी बीच की डाली 'तेन' (स्वर्ग की द्योतक) का आरोपण उसने सर्वप्रथम किया था। उसके बाद उसने छोटी डालियाँ 'जिन' (मनुष्य को द्योतक), और 'ची' (भूमि की द्योतक) लगाई थीं। इन सबकी आराधना करने पर भी उसका भाग्य उस गुलदान की तरह फूट गया और सब फूल मुरझा गये।

सेत्सूको सान ने शायद नन्दलाल के शब्दों से कुछ रुष्ट हो, जापानी ढंग से गुलदान लगाने पर एक व्याख्यान-सा दे डाला।

'आप उस सीढ़ी पर खड़ी किमोनो पहिने वाकई "तेन" लग रहीं हैं और मेजर "जिन" और मैं "ची"। कैसा यह गुलदस्ता बन गया! सुन्दर, स्वर्ग की अप्सरा आप, और हम लोग इस धरती के रहनेवाले ही-ही-ही-ही!' नन्दलाल ने कुछ खिसियाते हुए और कुछ खुशामद करते हुए कहा।

'धन्यवाद!' वह मुस्कराते हुए बोली।

सेत्सूको सान ने बताया कि यूरीको कुशल गृहिणी थी। उसके पति का अमल स्नेह यूरीको में केन्द्रित था और वह उसकी श्रद्धा का जीवित स्वप्न। कैसा प्रेममय और सुगन्धमय था उनका जीवन! कैसा निश्चिन्त और प्रफुल्लित था उनका परिवार!

फिर महायुद्ध के काले बादल सारे विश्व में फैलकर जापान के क्षितिज पर भी छा गये। हिरोशिमा की फैक्ट्री और मशीनें दिन-रात काम करने लगीं, मनुष्य के जीवन में व्यस्तता के क्षण बढ़ गये और

यूरीको का पति भी अधिक समय फैक्ट्री में बिताने लगा। उस सुबह जब यहाँ अणु-बम का विस्फोट हुआ यूरीको अपने बगीचे में फूलों की देख-रेख कर रही थी। जब हवाई हमले के द्योतक ख़तरे के तीव्र भोंपू बजे वह बगीचे की झाड़ी के पास बने एक गड्ढे में लेट गई। जब वह उठी तो उसका भाग्य धूल में लोटने लगा था। उसका घर बर्बाद हो गया! और इमारतें टूटकर गिरने लगीं और आग लग गई। लकड़ी के मकान भस्म होने लगे। वे ज्वाल-पुंज बन गये, जहाँ लपटें आकाश छुए लेतीं। चारों ओर सब मृत्यु के व्यूह में घिर गये। मनुष्य के शरीर रुंड-मुंड और छिन्न-भिन्न होने लगे। कहीं वे मांस के लोथड़े थे और कहीं मज्जा-रहित बिखरे कंकाल। प्राणियों का तो क्या कहना, लोहा भी पिघलने लगा और पत्थर की भी छाती द्रवित हो गई। लहलहाते वृक्षों में पतझड़ आ गया। कैसी थी वह वेगवती प्रलय!'

उस समय समीर के झोंकों में पृथ्वी पर पड़े कुछ सूखे पत्तों में खड़-खड़ाहट हो रही थी। पासवाली झाड़ी की एक सूखी टहनी टूटकर नीचे आ पड़ी।

'सम्भवतः उसके गुलदान की डाली "तेन" का यही हाल हुआ होगा। बम गिराना कैसा अभिशाप है, कैसा पाप है!' नन्दलाल ने कहा।

'इससे भी बुरा हाल! बहुत बुरा! वह मरणासन्न थी। उसे चेतना और अपने पति की याद साथ-साथ आई। वह भागी। कई जगह ईंट-पत्थरों में ठोकर खाई। टूटे लोहे के ढेर में उलझी। गला सूखने लगा। पर वह दौड़ रही थी अपने प्रियतम से मिलने। जब फैक्ट्री के पास पहुँची उसने वही हाल देखा जो कल आप लोग देख चुके हैं।'

'आपका भी गला सूखने लगा होगा। थोड़ी कॉफ़ी पी ली जाय।' नन्दलाल ने थरमस में से कॉफी प्याले में उँडेलते हुए कहा और प्याला

उसकी ओर बढ़ा दिया।

दो-चार घूँट लेकर उसने अपनी जीभ होठों पर फेरते हुए फिर कहना शुरू कर दिया :

'हाँ तो यूरीको ने फैक्ट्री के वे पट बहुत देर तक खटखटाये पर वह न खुले। किसी ने कहा कि फैक्ट्री में काम करनेवालों में कोई भी जीवित नहीं बचा। आशा की जीर्ण ज्योति में भटकती हुई वह उस स्कूल की ओर भागी जहाँ उसके बच्चे पढ़ने गये थे। शरीर शिथिल, पर लड़-खड़ाते पग ऊँचे-नीचे पथ पर बढ़ रहे थे। स्कूल की जगह अब भस्म बिखरे खण्डहर शेष थे। कहीं रक्त के धब्बे, कहीं हाड़-मांस के चिथड़े और कहीं नन्हें हाथ-पाँव धड़ से अलग दूर पड़े थे। मरघट-जैसी निस्त-ब्धता। लाल-पीली लपटें अब भी धू-धू जल रही थीं। सब ओर महा-नाश की विकराल छाया-सी ! किसी के शब्द फिर उसके कान में पड़े— अब यहाँ कोई जीवित शेष नहीं। महाध्वंस में सब बच्चों की आहुति चढ़ चुकी। जाओ, अपने घर जाओ !'

'बस, बस, अब बस करो। मुझे अब आगे का हाल मत सुनाओ। युद्ध से मुझे ग्लानि होने लगी है और अस्त्र-शस्त्रों से घृणा। मेरा सिर फिरा जा रहा है।' नन्दलाल ने अपने दोनो कानों पर दोनो हथेलियाँ रखते हुए कहा।

'नहीं, मैं नहीं रुकूँगी, हिरोशिमा के मानव-खण्डहरों की कहानी अधूरी रह जायगी; उसे आप अपने देश में सुनाइएगा। आप लोग तो युद्ध के वीर योद्धा और कई रण स्थलों के सेनानी हैं।'

सेत्सूको ने कहा। उसकी भाव-व्यञ्जना से ऐसा प्रकट होता था कि उसकी स्वर-वीणा खिंची हुई थी और उसके तार झंकृत करने को उसकी पतली उंगलियाँ कम्पित हो रही थीं।

'आप कहती जाइए और हम सुनते रहेंगे।' मैं अपने मन में उठते

विप्लव को छिपाते हुए बोला।

'यूरीको फिर भागने लगी, भागने लगी अपने घर की ओर, इसी घर की ओर। लटें बिखरी, शरीर स्वेद-सिक्त और हृदय में पति और बच्चों की याद लिये। वह अपने को भूल गई। उसने इन्हीं बन्द पटों को खटखटाया। अपनी छोटी हथेलियाँ उन पर पटकीं और वह तब तक पटकती रही, खटखटाती रही जब तक लोहू-लुहान होकर, अचेत होकर गिर न गई। फिर वह अस्पताल पहुँचा दी गई और इसके बाद कूरे में डाक्टर तोशियो तनाका के चिकित्सालय में। अब मैं उसकी देखभाल कर रही हूँ और तब तक करती रहूँगी जब तक उसे ठीक न कर लूँगी।' सेत्सूको सान ने दृढ़ता से कहा।

नन्दलाल ने मेरे कन्धे का सहारा ले लिया था और वह मेरे कान में फुसफुसा रहा था—सेत्सूको, सुन्दर है और मुझे अच्छी लगने लगी है पर कुछ ज़िद करनेवाली लगती है।

'तुमको यही खुराफ़ात सूझती रहती है।' मैंने एक गहरी साँस ली और सेत्सूको के पीछे-पीछे चलने लगा।

★

जब हम कियो नदी के किनारे-किनारे चल रहे थे सेत्सूको सान अचानक रुक गई। एक ओर वह ऐसे देखने लगी मानो अन्तरिक्ष में से कुछ ढूँढ़ निकालना चाहती हो।

'आप अभी तक दूसरों के बारे में तो बहुत-कुछ बताती रही हैं, पर अपने बारे में आपने कुछ भी नहीं कहा है।' मैंने प्रश्न किया।

'दूसरों की बातें ही कहनी चाहिए; उन बेचारों की व्यथित कथा, जिसको कहने के लिए उनमें से कोई भी जीवित नहीं है। मैं तो रोगियों की उपचारिका हूँ। मेरा क्या महत्त्व?' उसने उत्तर दिया।

'बहुत बड़ा महत्त्व। वैसा ही महत्त्व जैसा शरीर में श्वास का। बिना

श्वास शरीर शव और बिना उपचारिका के रोगी अपाहिज !' मैं बोला।

'आप वैसे ही बहुत प्रशंसा करते हैं। मैं भी यहाँ एक चिकित्सालय में उपचारिका थी। उसी चिकित्सालय के भग्नावशेष की झाँकी लेने को मैं यहाँ खड़ी हो गई। देखिए, नदी में लटकती वह इमारत ! वह डाक्टर मसाकाज़ू फ़ूजी (Dr. Masakazu Fuji) का निजी अस्पताल था और वहीं मैं काम करती थी।'

मैंने देखा कियो नदी के किनारे एक बड़ी इमारत के खण्डहर। कुछ भाग जमीन पर बना और कुछ नदी में खम्भों पर सधा रहा होगा। अब केवल खम्भे शेष थे। इमारत तो बरबाद हो चुकी थी। पास में इस नदी का पुल अब भी ज्यों-का-त्यों ठीक था। बम-वर्षा का प्रभाव भी ईश्वरीय लीला की तरह लगने लगा, एक वस्तु अछूती और बिना टूटी और दूसरी बिल्कुल बिखरी और विध्वंस और दोनो पास-पास।

मैंने प्रश्न किया—कैसे अचम्भे की बात। यह छोटा पुल नहीं टूटा और यह बड़ी इमारत ढह गई ?

'आजकल बहुत बड़े होने में यही ख़तरा है कि कभी भी सर्वनाश हो जावे। परन्तु हमारा देश तो छोटा है फिर भी अणु-प्रलय का ताण्डव यहीं हुआ। यह चिकित्सालय भी बड़ा था। लगभग तीस कमरों का, जिसमें रोगी भरे ही रहते और डाक्टर फ़ूजी उनकी चिकित्सा करता।' सेत्सूको ने बताया।

'आपका देश छोटा है, पर बहुत उद्योगशील। तभी तो हिरोशिमा के खण्डहर फिर जागने लगे हैं। यह चिकित्सालय भी शायद फिर बन जावे। अब डाक्टर फ़ूजी कहाँ हैं ?'

'कुछ दिनों रेडक्रास के अस्पताल में काम करने के बाद डाक्टर फ़ूजी कायटाची के क़स्बे चला गया। उसने बताया था कि उस भयंकर प्रभात में वह चिकित्सालय की बरसाती में बैठा ओसाका से मुद्रित "असाही"

अख़बार पढ़ रहा था। अचानक उसकी आँखों में चकाचौंध घुस गया और फिर गहन अँधेरा। होश-हवास आने पर वह कुछ शहतीरों के बीच लटका था। अस्पताल की इमारत नदी में झुककर बिखर चुकी थी। मैं उस सुबह चिकित्सालय में नहीं थी। अपने घर थी। तबीयत ख़राब होने पर भी मैं घर से चल दी।'

'आपमें बड़ी हिम्मत है कि जब आसमान से मौत बरसी, आप अपने घर से निकलीं।' कैप्टेन नन्दलाल, जो बहुत देर से नहीं बोला था, कहने लगा।

'घर से नहीं निकलती तो मरीज़ों की मरहम-पट्टी कैसे करती। इस अस्पताल के ही मरीज़ों की नहीं वरन् हिरोशिमा के अनेक रोगियों की जो उस "असानो पार्क" (Asano Park) में इकट्ठे होने लगे थे।'

सेत्सूको ने बताया कि कियो नदी के तट पर बने 'असानो पार्क' में सैकड़ों लोग छिपने लगे। कोई हरी झाड़ियों में, कोई वृक्षों के नीचे तो कोई लतिकाओं की ओट में। जलते-भभकते हिरोशिमा नगर में से जो निकल सका वह इसी ओर भागा। किसी का मुख झुलसा हुआ, किसी के बाल और भृकुटी जली हुई, किसी की खाल के छितड़े लटकते, और किसी के हाथ या पाँव टूटे। किसी के नंगे शरीर पर बड़े-बड़े चकत्ते और कुछ स्त्रियों के गोरे बदन पर जले किमोनो के बड़े फूलों की गुदन-सी गुदी हुई। चारों ओर चीत्कार, कराह, और सिसक। कोई चिल्लाता, 'इताई-इताई' (Itai-Itai अर्थ—यहाँ पीड़ा है, यहाँ पीड़ा है), कोई कराहता 'तासूकेते-तासूकेते' (Tasukete-Tasukete अर्थ सहायता करो, सहायता करो), कोई प्यास से पीड़ित सिसकता, 'मीज़ू-मीज़ू (Mizu-Mizu अर्थ, पानी-पानी)!

'मैंने कुछ को चुल्लुओं से पानी पिलाया। फिर एक ओर पड़े प्याले में भर-भरकर बहुत-से बच्चों की प्यास बुझाई। फिर भागकर मैं टूटे

चिकित्सालय में से एक केतली, कुछ पट्टियाँ और कुछ दवाइयाँ ले आई। केतली से मैंने बहुतों के मुँह में पानी उँड़ेला। एक झाड़ी में से बिल्ली के बच्चों की-सी पतली आवाज़ आ रही थी। रुक-रुककर "मीज़ू-मीज़ू" का शब्द निकलता। मैंने झुककर देखा, चार व्यक्ति मरणासन्न पड़े थे। उनका चेहरा बहुत सूज गया था। बन्द फूली-सी आँखें, झुलसी नाक और मोटे सूजे होठ। वे बेचारे न देख सकते थे और न पानी पीने को होठ ही खोल सकते थे। मैंने केतली से पानी पिलाने की कोशिश की पर मेरे प्रयत्न विफल हुए। पास में उपजी काँस और मोटी घास की पत्तियों को मैंने ऐसे मोड़ लिया जिससे पानी उनके मुँह में जा सके। उनके मोटे होठों के बीच में पतली पत्ती डालकर किसी तरह थोड़ा पानी पिलाया।'

'आप तो उस समय उन असहाय लोगों की प्राणदात्री रही होंगी। कितनी सेवा की आपने! प्यासे को पानी पिलाना हमारे देश में बड़ा पुण्य कहा जाता है।' मैंने कहा।

'कुछ भी समझिए। मेरा तो कर्त्तव्य ही सेवा है। तभी तो मैं एक तुच्छ उपचारिका हूँ।' सेत्सूको ने नम्र भाव से कहा।

'आपके छोटे नरम कोमल शरीर से इतने कठिन कार्य! यही तो क़हर ढा देता है। अगर मैं यहाँ होता तो आपके काम में हाथ बँटाता।' नन्दलाल बोला।

'तो अब हाथ बटाइए। काम करने का मौक़ा तो अब भी है। तब तो सिर्फ़ मरहम-पट्टी का काम था। मालूम नहीं मैंने कितने घावों को धोया होगा और कितनी पट्टियाँ बाँधी होंगी। ख़ैर, यह तो मेरा काम ही रहा है। पर अब तो ठोस कर्म करने का समय आया है। उसे सब मिलकर कर सकते हैं।' सेत्सूको सान के नेत्रों में आशा की ज्योति चमकने लगी।

'एक कर्मठ सैनिक कर्म से पीछे नहीं हटता। मैं भी कमर कस के तैयार हूँ।' कैप्टेन नन्दलाल ने अपनी कमर पर दोनो हाथ टिकाते हुए कहा।

'अच्छा तो देखूँगी आप कितना काम कर सकते हैं?' सेत्सूको हँस कर बड़प्पन से बोली।

'मगर एक शर्त पर।' नन्दलाल ने कहा।

'क्या?'

'मेरे साथ आज शाम को साम्पान (एक छोटी किश्ती) में सैर को चलोगी। मैं पतवार चलाऊँगा और आपके गीत सुनूँगा।' नन्दलाल ने बेशर्मी से कहा।

सेत्सूको ने लज्जा के भार नत अपना सर झटक दिया।

'तुम बड़े शरारती हो।' मैंने नन्दलाल से कहा।

'और आप बड़े सिद्धान्तवादी!' उसने चट से उत्तर दिया।

१५

शाम के धुँधले बुझते उजेले पर जब काले बादलों की परछाइं गहरी हो चली तब प्रोफ़ेसर गोरो हामागूची और मैं सड़क से निकली एक पगडण्डी पर चलने लगे। कुछ दूर तख्तों और टीन से बनी छोटी झोंपड़ियों के चारों ओर अँधेरा सिमटने लगा और वे अधिक काली दिखने लगीं। मैंने कहना शुरू किया—प्रोफ़ेसर, इस नगर के बहुत-से भाग देख चुका हूँ। मालूम होता है कि यहाँ का ऐश्वर्य गड्ढों में बन्द हो धूल में सो रहा है।'

'मित्र! ऐश्वर्य के निर्माता, मनुष्य की भुजाओं में बल होना चाहिए। फिर टूटे घर आबाद होने लगेंगे।' वह रुककर मानो कुछ सोचने लगा। दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए उसने अपनी आँखें सिकोड़ लीं। फिर अचानक उसने साँस भरते हुए कहा, 'हाँ, घर आबाद होने लगेंगे। हिरोशिमा

जगमगाने लगेगा। लोगों के बाज़ुओं में ताकत भी आने लगेगी। पर जो सदा के लिए सो चुके हैं, वह यह सब वैभव कभी नहीं देख सकेंगे। आप ठीक कहते हैं, यहाँ के ऐश्वर्य में वृद्धि करनेवाले सैकड़ों बच्चे, युवक और वृद्ध सब धूल में सो रहे हैं।'

'अणु-बम का परिणाम ही ऐसा था। मैंने उसके परिणाम की भयंकरता देखी है।' मैंने कहा।

'परिणाम तो बाद की बात है। मैंने अणु-बम का यथार्थ विस्फोटन देखा है। उस सुबह सारा क्षितिज श्वेत और पीली चमक से भर गया। फिर रंग पीले और लाल होने लगे और उसके बाद नारंगी और लाल। मैं अपनी लाइब्रेरी में काम कर रहा था। मेरी आँखें चमक, दमक और रंग के फेर में पड़ गईं और इसी लिए अब मुझे यह चश्मा अपनी नाक पर चढ़ाना पड़ा है।' उसने अपने सुनहले चश्मे को नाक के ऊपर खिस-काते हुए कहा।

'फिर क्या हुआ प्रोफ़ेसर?' मैंने उत्सुकता प्रकट की।

'फिर मेरे पैरों के नीचे पृथ्वी में भूकम्प आ गया। मैं गिर गया और किताबों का ढेर मेरे ऊपर। इतनी विद्या का भार कि मैं कमर तक दब गया। और फिर चारो ओर अँधेरा छाने लगा। सवेरे का प्रकाश लुप्त हो उसमें सन्ध्या का अन्धकार घुस गया। ठीक ऐसा ही अँधेरा जैसी यह शाम है।' प्रोफ़ेसर ने अपनी छड़ी को ज़मीन से उठाकर आकाश की ओर इशारा करते हुए कहा।

'और आप पुस्तकों के ढेर में कब तक दबे रहे?' मैंने प्रश्न किया।

'केवल कुछ देर, क्योंकि मेरा पन्द्रह वर्ष का पुत्र हिसाकीची, (Hisakichi) जो बाहर फुलवारी में काम कर रहा था, मेरे कमरे में आ गया। उसने मुझे किताबों के ढेर में से मुक्त किया। मैं तो मुक्त हो गया पर वह—वह मेरा बेटा—इस धरती से ही मुक्ति पा गया।' गोरो

हामागूची के हाथ काँपने लगे। मैंने उसके दाहिने हाथ को थरथराते देखा जब उसने अपना ऊनी कनटोपा कानों तक नीचे खींचा। ठण्डी वायु तीर के समान हमको भेद रही थी। मैं उसके लम्बे लबादे के दोनो पल्लों को पास समेटने के लिए नीचे झुक गया।

'आप क्यों कष्ट करते हैं। आइए, आपको बताऊँ अपने घर के बारे में—इस घर के बारे में नहीं जहाँ से हम आ रहे हैं। मेरे पुराने घर के बारे में, जो हमारी आँखों के आगे भस्म हो गया!' वह कुछ रुका और गला खँखारकर कहने लगा, 'घर का कुछ भाग गिर चुका था। लकड़ी के तख्ते मालूम नहीं कहाँ उड़ गये थे। अचानक पासवाले मकान में आग लग गई। फिर क्या, आग की लपटें हमारे घर की ओर भी लपकीं और कुछ मिनट में हमारा घर, मेरी पुस्तकों से भरी लाइब्रेरी, सब जलकर खाक हो गई।'

'मैंने और भी जगहें देखी हैं, जले मकानों के ढेर और झुलसी ईंटें और कालिख जमे हुए पत्थर। यहाँ बहुत बर्बादी हो चुकी है।' मैंने समवेदना प्रकट की।

'घर की बर्बादी की कोई चिन्ता नहीं। पर मैं तो हिसाकीची की बर्बादी पर आँसू बहाता रहता हूँ। बेचारे की माँ तो पहिले ही चल बसी थी। पर वह उसी पथ पर इतनी कम आयु में जैसे दौड़ता हुआ चला गया।'

इस समय प्रोफ़ेसर छड़ी टेककर जल्दी-जल्दी पग बढ़ाने लगा था। कभी वह एक हाथ से अपनी दाढ़ी का स्पर्श करता और दूसरे में छड़ी पकड़ लेता। सन्ध्या की समीर में दाढ़ी के सफ़ेद दो-चार बाल उस बालों के पूरे झुरमुट से अलग होकर लहराने लगते।

गोरो हामागूची ने बताया कि कैसे सब लोग कियो नदी के किनारे 'असानो पार्क' की ओर भागे—वह और उसका पुत्र हिसाकीची भी उसी

ओर चल दिये। वहाँ भी खचाखच भीड़ थी और सब लोग विकल और पीड़ित थे। कोई भूख से तड़पता और कोई प्यास से व्याकुल। कुछ लोगों ने पास के एक खेत में से लौकी तोड़ी, और कुछ लोगों ने शकरकन्द खोदी। दोनो चीज़ें उबली हुई मिलीं। उस बम की ऐसी गर्मी कि सब्जी बिना चूल्हे के पकी-पकाई तैयार। सबने तरकारियाँ स्वाद से खाईं। कुछ लोग कहने लगे कि यह नई तरह का बम था, जिसने सारे नगर पर मेगनिशियम छिड़ककर आग लगा दी। कोई कहता, बिजली के तारों के आपस में चिपकने से आग लगी। कुछ भी हो, आग और प्यास से सब परेशान थे।

दूसरे दिन से प्रोफ़ेसर की आँखों में से कीचड़ और पानी बहने लगा। वे चिपकने लगीं और उनमें जलन होने लगी। उसके पुत्र हिसा-कीची को भूख लगना कम हो गया और वह सुस्त-सा पड़ गया।

'उस ढलते दिन में लोगों की आशाएँ पिघल रही थीं। उनके सर्वस्व जल रहे थे। आग के शोले "असानो पार्क" की ओर लपक रहे थे। ऐसा लगता, असंख्य विषधरों की दुधारी जलती जीभें सब जीवित वस्तुओं को चाट जायँगी। हम सब थके-हारों ने फिर भी, जो जिसके हाथ लगा, उसी से नदी से पानी भर-भरकर अग्नि की उग्रता को शान्त किया। शान्ति-स्थापना के युद्ध में हम थके-माँदे, झुलसे-मरे-से, बाँसों के झुरमुटों में और झाड़ियों में छिप गये।' उसने अपनी अस्थिर दाहिने हाथ की उँगली से लम्बी घास के झुण्ड की ओर इंगित किया, जो पास में ही था। घास का पूरा समूह हवा से कभी उठता, कभी गिरता।

'आपकी यह आयु और यह कर्मठता! मुझे हर्ष भी है और आश्चर्य भी।'

'पुरानी पुस्तकों का भार ढोते-ढोते मेरी कमर झुकी जा रही है

मेरे दोस्त ! बुढ़ापा मेरी ओर धीमे-धीमे क़दमों से आ रहा है—शायद उसी रफ़्तार से जिससे मेरे पैर डगमगाते आगे बढ़ रहे हैं। तब मुझमें कुछ ताक़त ज़्यादा थी। मेरी आशा का दीप जग रहा था। पर अब, अफ़सोस, अब मेरा दीपक टूट गया, ज्योति बुझ गई ! मैं रोज़ ज्योति जगाने जाता हूँ और वह रोज़ मिट जाती है। दिल में सर्दी घुसी जा रही है। आपकी सिगरेट मुझे गर्म करती है। एक सिगरेट कृपया और जला दीजिए।' उसने अपने गले को खँखारते हुए कहा।

'लीजिए प्रोफ़ेसर ! एक सिगरेट और पी लीजिए। आपकी कुछ बातें मेरी समझ में आती हैं, और कुछ नहीं।' मैंने एक सिगरेट जलाकर उसके फड़कते होठों के बीच में रख दी।

'अब आप सब समझ जाइएगा। वह जगह पास आ गई।' उसने उत्तर दिया।

हम दोनो एक क़ब्रिस्तान में पहुँच गये जहाँ सैकड़ों क़ब्रें थीं। कुछ पुरानी, टूटी, खण्डित, अधबनी-सी और कुछ नई पूरी बनी। कहीं जंगली बेलें और फूल उग आये थे तो कहीं नीले पुष्प और श्वेत लिली सन्ध्या में सोने लगे थे। एक नई बनी समाधि के पास प्रोफ़ेसर रुक गया ! उसने अपने लबादे की जेब से एक सेन्को (एक तरह की अगरबत्ती) और एक माचिस निकाली। सेन्को को जलाकर उसने समाधि के सिरहाने रक्खा और अपने नेत्र बन्दकर कुछ मन्त्र-सा जाप करने लगा।

फिर वह कहने लगा, 'यह मेरे बेटे हिसाकीची की समाधि है। यहाँ वह अँधेरे में सो रहा है और मैं चाहता हूँ कि वह उजाले में सोये। जब वह मेरे पास था हमेशा बत्ती जलाकर रात में सोया करता था। मैं रोज़ यह सेन्को उसके लिए जलाता हूँ। अपने प्यारे हिसाकीची के लिए।' उसकी आवाज़ काँपने लगी थी।

हम दोनों फिर वापस चलने लगे। अधिकतर हम चुपचाप थे। अँधेरा गहरा हो रहा था और घटाएँ घिरने लगी थीं। यह डर था कि कहीं हामागूची की झोपड़ी तक लौटते-लौटते पानी न बरसने लगे। इसी-लिए हम कुछ तेज़ चल रहे थे और प्रोफ़ेसर की छड़ी का खट-खट का शब्द भी जल्दी-जल्दी हो रहा था। फिर भी उसमें अपने पुत्र की याद हरी थी—उसकी समाधि के पास फूलों की तरह।

'मेरा हिसाकीची बीमार रहने लगा। उसके बाल झड़ने लगे। वह पीला पड़ने लगा। शरीर में जगह-जगह फफोले फूटने लगे। एक दिन उसने जब जूते से पैर निकाल मोज़े उतारे तो उसके साथ एक पाँव की पूरी खाल उधड़ गई! मैं उसे डाक्टर के पास ले गया। पर उसे कोई भी अच्छा न कर सका। उसका शरीर गलने लगा और उसकी साँस टूटने लगी। मैं यही जपते-जपते अकेला रह गया—'शू जीसस, आवा-रेमीतमाई' (Shu Jesus, awaremitamai अर्थात् हमारे देव जीसस, हम पर दया कीजिये।)

प्रोफ़ेसर के नयनों में शायद नमी आ चुकी थी इसी लिए उसने रूमाल लबादे की जेब में से निकालकर आँखों पर फेरा। मेरा भी समवेदना का घट छलककर नेत्रों की कोरों को पार करना चाहता था कि मैंने दोनों पलक कसकर बन्द कर लिये और दाँतों को भींच लिया।

'जो मैं कह रहा था वह आप सुन रहे थे या नहीं।' उसने पूछा।

'हाँ!' मैंने छोटा-सा उत्तर दिया। कुछ रुककर मैं फिर बोला, 'आप करुणा से भरी कथा कह रहे थे—कितनी हृदय दहलानेवाली।'

'इस नगर में मालूम नहीं कितनी हृदय-विदारक घटनाएँ घटी हैं। कितने जीवित प्राणियों की समाधियाँ बनी हैं और कितनी कब्रों की भी कब्रें।'

मुझे ध्यान हो आया कब्रिस्तान की टूटी कब्रों का, जो मैं अभी देख

चुका था। उनमें से कुछ के पत्थर खण्डित और कुछ के पाषाण सपाट चिकने। मैं कहने लगा, 'आप ठीक कहते हैं। मैंने भी कुछ बिखरी-सी समाधियाँ अभी देखी थीं।'

'बिखरी-सी ही नहीं। उन समाधियों में बहुतों का तो अस्तित्व ही मिट गया। अणु-बम के प्रहार ने उनको जमीन से ही उड़ा दिया। जो पत्थर सामने पड़ा पिघलकर चिकना हो गया। क्या मैं झूठ थोड़े ही कहता हूँ! इस प्रहार ने मुर्दों की अविचल निद्रा को भंग करने का प्रयास किया और जाग्रत प्राणियों को सुप्त संसार में प्रविष्ट कर दिया।' उसने कहा।

'किन्तु मैंने कब्रिस्तान में, जहाँ तक नज़र गई, कब्रें-ही-कब्रें देखीं। शायद पुरानी समाधियों की जगह भी नई क़ब्रें बना दी गई हों।' मैं बोला।

'आपका ख़याल ठीक है, बिल्कुल ठीक। जब मुर्दे एक के ऊपर एक लदे हों तो यदि समाधि के ऊपर समाधि बने तो क्या हर्ज़! फिर ये तो उन बेचारों की समाधियाँ हैं जो बाद में सिसक-सिसककर मरे हैं। उस दिन के तो मृत-शव मालूम नहीं कहाँ-कहाँ गये होंगे—नदी में, नालों में और सागर में। कितनों का जल-प्रवाह हुआ होगा और कितने मछलियों के भोजन बने होंगे और कितने अग्नि-देवता की लपकती लपटों में भस्म! जब बाद में गणना की गई तो मालूम हुआ कि हिरोशिमा में ७८,१५० प्राणियों की मृत्यु हुई, और लगभग चौदह हज़ार लोगों का पता ही न चला! शायद साढ़े सैंतीस हज़ार को क्षति पहुँची!' प्रोफ़ेसर हामागूची ने अपनी काँपती उँगलियों पर गिनते हुए कहा।

इस समय हम एक लोहा, कील, ढिबरी इत्यादिक बेचनेवाले की दूकान के पास थे। बुड्ढा, जीर्ण दूकानदार दूकान बन्द करने की तैयारी कर रहा था। संभवतः वह प्रोफ़ेसर का मित्र रहा होगा, क्योंकि वह

उसकी बात में टाँग अड़ा, बिना पूछे ही कहने लगा, 'प्रोफ़ेसर यह गिनती काहे की कर रहे हो ? उस बम से मरनेवालों की ? यह सब ग़लत है, सब खुराफ़ात है। भला उस समय कौन गिन सकता था ? देखो क्या इन लोहे की कीलों को तुम गिन सकते हो ? इतिहास के प्रोफ़ेसर को गणित-शास्त्र में दख़ल नहीं देना चाहिए।' दूकानदार ने एक लोहे का थपका-सा हाथ में दिखाया। उसको ग़ौर से देखने से मालूम हुआ कि उस थपके में कीलें पिघलकर एकाकार हो गई थीं। 'मेरी दूकान के कीलों से भरे बोरे-के-बोरे इसी तरह बर्बाद हो गये। इस मामले में कौन सही हिसाब-किताब कर सकता है। गोरो हामागूची ! आज तो फ़काफक सिगरेट फूँक रहे हो अकेले-ही-अकेले ?' दूकानदार ने कहा।

प्रोफ़ेसर ने एक सिगरेट उसे भी दी और हम आगे चले। उसकी कुटिया दिखने लगी थी। गहरी घटाओं के गहरे अँधियारे में भी वहाँ बिजली की बत्ती टिमटिमा रही थी। अचानक वर्षा की बड़ी-बड़ी बूँदें टपाटप पड़ने लगीं। वह अपनी चाल और तेज़ करते हुए बोला, 'ऐसी ही बड़ी-बड़ी बूँदें अणु-बम के बाद गिरने लगी थीं। अब जल्दी की जाय नहीं तो दोनो भीग जायँगे।' उसके यह कहते ही बिजली बड़ी ज़ोर से कड़की और तूफ़ान उठने लगा। 'यह पिका-दोन है पिका-दोन (Pikadon)। हमारी भाषा का नया शब्द।' वह बोला।

'पिका-दोन ?' मैंने आश्चर्य से कहा।

'हाँ-हाँ, पिका-दोन ! जिसका अर्थ है बिजली और गर्जन। यह नया शब्द भी हिरोशिमा के अणु-बम से उत्पन्न हुआ।' उसने अपना एक हाथ दाढ़ी पर फेरा।

'आपका यह पुराना नगर नया हो रहा है और आपकी भाषा का भाण्डार भी नये शब्दों से भर रहा है। अब इस देश की उन्नति को

कौन रोक सकता है ?' मैं बोला।

'आप अमर रहें और आपके वाक्य अक्षरशः सत्य हों। यही इस वृद्ध की कामना है।' प्रोफ़ेसर ने मुझे आशीर्वाद दिया और मैंने अपना मस्तक नत कर लिया।

१६

उस अँधेरे से लदी गीली सन्ध्या मेरे मन के उतावलेपन को नम न कर सकी। मेरा जी चाहने लगा कि रात्रि की ओट में छिपे हिरोशिमा के खण्डहरों में होकर फैनिल सागर तट की ओर चल दूँ। अपने समय का पूरा उपयोग कर डालूँ। जैसे ही बूँदाबाँदी बन्द हुई मैं गोरो हामागूची से आज्ञा लेकर उसकी कुटिया के बाहर चलने लगा।

'ज़रा जल्दी लौटना मेरे मित्र! तुमको मैं कुछ पुरानी बातें बताना चाहता हूँ।' उसने खँखारते हुए कहा।

'जल्दी ही आऊँगा। बस, घूमघामकर अभी वापस आता हूँ।' मैंने उत्तर दिया और अपने पग बढ़ाते हुए समुद्र के किनारे की ओर चल पड़ा।

रात्रि के अन्धकार में छोटी-छोटी झोपड़ियाँ दूर पर ऐसी लगती मानो बहुत से बड़े जुगनू स्थिर हो गये हों। विध्वंस पर गहरा पर्दा डाले नीचे की मन्द ज्योति, आकाश में ऊपर तारिकाओं से होड़-सी लगा रही थी। ऊपर गहरा अम्बर और नीचे अँधेरे का काला कम्बल इन धुँधली पीली बत्तियों से टिमटिमा रहा था। हवा तेज़ थी और सागर की घरघराहट इस सुनसान में कुछ अधिक मालूम दे रही थी।

मैं तेज़ी में तो था ही। जल्दी ही किनारे पर पहुँच गया। पास की चट्टान के सहारे खड़े हो सागर से छूती हुई उग्र वायु को अपने नथने

फैलाकर अन्दर भरने लगा।

अँधेरे में कुछ देर रहने के कारण मेरे नेत्रों में ऐसा गुण आने लगा कि मैं किसी वस्तु के आस-पास सिमटी कालिमा को विस्तृत अन्धकार में से सुलझाकर अलग देख सकता था। मेरी दृष्टि पास की चट्टान के छोर पर बैठे मनुष्य की-सी आकृति में जा लगी। अचानक मेरे मुँह से जापानी भाषा में यह शब्द निकल पड़े, 'आप कौन हैं? वहाँ क्या कर रहे हैं?'

'और आप कौन? क्या मेजर....' दूसरी ओर से उत्तर मिला।

'ओह! क्या नन्दलाल हो? यहाँ अँधेरे में?'

'और आप भी इस अँधेरे में....' उधर से आवाज आई।

'क्या चोरों की तरह छिपे हो। इधर चलो।' मैंने मज़ाक किया।

'इस अँधेरे में सब चोर हैं।' नन्दलाल उछलकर मेरे पास आ गया। मेरे कन्धे पर सिर टिकाकर वह बोला, 'मेजर! मैं तो आज लुट चुका....यहाँ लुट चुका। ही....हीं....ही....ही....'

'क्या बेसिर-पैर की बातें करते हो? क्या हुआ। बोलो तो....' मैंने कहा।

'अब क्या पूछते हो। तुम्हारा नन्दलाल बिक चुका।'

'लुट चुका, बिक चुका! क्या बकवास लगाई है, नन्दलाल!' मैंने उसे झिड़का।

'कुछ भी कह लो मेजर! तुम बड़े हो! सच तो यह है कि मैं तो बर्बाद हो गया....बर्बाद....बिल्कुल बर्बाद... लुटा हुआ बर्बाद....' वह फिर कहने लगा और अपने मुँह को मेरे दायें कान के इतने पास ले आया कि उसकी श्वास मेरी कनपटी का स्पर्श करने लगी।

'क्या किसी ने तुम्हारी जेब काट ली? ठीक-ठीक बताओ।'

'जेब तो नहीं...मगर जेब के नीचे अन्दर छुरी चल गई... मेजर!

अन्दर मीठी रसीली छुरी।' नन्दलाल ने अपनी बाईं जेब के ऊपर हथेली रखते हुए कहा।

'क्या बहकी-बहकी बातें करते हो! होश में तो हो? इस अँधेरे ने शायद तुम्हारी अक्ल पर भी पर्दा डाल दिया है। यहाँ इस समय तुम क्या कर रहे थे?' मैं बोला।

'जो मेरे साथ हुआ है मेजर, अगर वह आपके साथ होता तो आपकी भी मेरी-जैसी हालत होती। अँधेरा-उजाला भूल जाते। कैसी मीठी थी उसकी मुस्कान, उसी का ध्यान कर रहा था....हा....हा....हा ....हा....'

'किसकी मुस्कान? किसकी याद?'

'उसी सेत्सूको की। वह पास की झोपड़ी में गई है। कुछ देर बाद मुझसे वहाँ आने को कह गई है। वह नर्स नहीं, अप्सरा है।' नन्द-लाल मस्त होकर कहने लगा।

'क्या बकते हो? उस नर्स के पीछे ऐसे लग लिये हो कि कभी साथ छोड़ते ही नहीं। क्या हम लोगों की बदनामी कराओगे?' मुझे ताव आ गया।

'बिगड़ो मत मेजर! मेरे प्यारे मेजर! जब कोई युवती मधु से भरे प्याले के समान जवानी में छलकती हो तो क्या मैं उसको छोड़ दूँ? यह कभी नहीं हो सकता। अपनी मर्दानगी पर मैं कभी धब्बा नहीं लगने दूँगा।' नन्दलाल ने कहा और उसके बाल हवा में बिखरकर उड़ने लगे।

'वाह रे दिलेर! वाह रे मर्द। अँधेरे में छिपे-छिपे यह घुस-फुस करते हो! तुमको शर्म नहीं आती?' मेरा पारा ऊपर चढ़ने लगा था।

'पहिले बात तो सुनो। तब नाराज़ हो लेना। अभी कुछ देर पहिले वह और मैं साम्पान में दूर निकल गये थे। ऐसी ही तेज़ हवा थी। इठ-

लाता-लहराता किमोनो उसका था और उसे सम्हालनेवाला मैं था ? वह रानी थी और मैं था उसका सेवक। कभी वह पतवार चलाती और कभी मैं। मैंने उससे गाना गाने की विनय की और उसने धीमे स्वर में गीत गुनगुनाया और मेरे भारी कण्ठ से भी स्वर फूट निकले।' नन्द-लाल आवेग में कहने लगा।

'वाह रे गवैये!'

'अभी और सुनो मेजर! मैंने उससे कहा—हिरोशिमा के खण्डहरों से मेरा मन परेशान होने लगा है। अब हम-तुम रोज़ शाम को साम्पान की सैर करेंगे। मैं स्वयं खण्डहर-सा हुआ जा रहा हूँ। मुझे बचाओ।

' "क्यों आपको क्या बीमारी है?" सेत्सूको ने पूछा।

' "मुझे दिल की बीमारी है। मेरा दिल धक-धक होने लगता है... अब भी हो रहा है। छूकर देखो। तुम तो नर्स हो।"

'उसने मेरे वक्ष पर अपनी कोमल हथेली रक्खी और मैंने अपने भारी दोनों हाथों से वह हथेली दबा ली।

' "आप तो बिल्कुल ठीक हैं। हृदय की गति भी ठीक है।" उसने भोलेपन से कहा।

' "मेरी बीमारी बहुत गहरी है। तुम नहीं पहिचान पाईं।" मैंने उद्विग्न हो कहा।

' "नहीं!" वह हँस पड़ी। फिर कहने लगी कि अपना इलाज किसी डाक्टर से कराओ। कैसी उसकी मधुर खिलखिलाहट और कैसी शैतानी भरी यह बात। मैं तो उसके हाथ बिक गया।' नन्दलाल कहने लगा।

'वाह रे नन्दलाल। तुम भी खूब बिके। क्या दिलफेंक शख्स हो।' मैंने चुटकी ली।

'बस मेजर! यही तो ठीक नहीं है। प्रेम की बातों को मज़ाक में

मत टालो। इस समय मेरे जिगर में खंजर चल रहे हैं।'

'बहादुरों के ही तो खंजर लगते हैं। शाबाश ! सहते चलो खंजरों के घावों को मेरे नन्दलाल !'

'जब तक सेत्सूको साथ रहेगी मेरे ऊपर सहस्रों बर्छियाँ चलती रहेंगी। उसकी पतली नुकीली आँखों में से नुकीली बर्छी ! हाँ तो मेजर, मैं उसका चेहरा एकटक बहुत देर तक देखता रहा। उसने गर्दन नीची कर ली। मैंने कहा—मेरा हाल हिरोशिमा नगर का-सा हो गया है। मैं भी खण्डहर बनकर इन खण्डहरों में रहना चाहता हूँ।

' "खण्डहर बनकर नहीं। उन खण्डहरों को जीती-जागती इमारत में परिणत करनेवाले बहादुर सैनिक की तरह यहाँ रहिए।" सेत्सूको सान ने दृढ़ता से कहा।

'मैं अवाक् रह गया। वह कोमल सुन्दरी कितनी मधुर और कितनी चतुर है !'

'तुम रात-भर भाटों की तरह सेत्सूको के गुण गाते रहो। मुझे तो जल्दी है। प्रोफ़ेसर गोरो हामागूची मेरी बाट जोहते होंगे।' मैंने उत्तर दिया।

'चलो, तुम्हारे साथ कुछ दूर चलता हूँ। फिर तो प्रेम के मार्ग पर मुझे चलना ही है।' नन्दलाल ने मेरा हाथ दबाते हुए कहा।

हम दोनों अँधेरे में आगे बढ़ने लगे। सागर की फेनिल लहरें इस अन्धकार में भी श्वेत, रजत-सी दिख रही थीं। एक अजब फुरफुरी मेरे शरीर में होने लगी थी। कुछ दूर जाने पर नन्दलाल एक झोपड़ी की ओर जानेवाली पगडण्डी पर मुड़ गया। मैं प्रोफ़ेसर की कुटिया के सीधे मार्ग पर चल दिया।

★

कभी विस्मृत अनुभूतियों की स्मृति ऐसे जागने लगती है, मानो

किसी सूखी नीरस चट्टान की टेढ़ी दरारें गहरी होती जाती हों और उनमें बन्दी हुए अँधेरे में कालिमा दिखती हो। ऐसे समय ज़िन्दगी के भ्रमित चक्रों की गति में अवरोध और मनोवृतियों में एक बोझिल गरिमा आ जाती है। सांसारिक संघर्ष में मनुष्य अपने को हारा-थका-सा पाता है, जिसके पग आगे न बढ़ सकेंगे। वह विचार करने लगता है कि शायद भटकते पथिकों की यही मंजिल है, जहाँ सुस्ताने को उसे दम लेना चाहिए। इस अनुभूति को चाहे डगर में रुकने के मील के पत्थर कहिए, या व्यथित मनाभावनाओं का विस्मृत करने का क्षणिक साधन। कुछ भी हो, मुझे ऐसा लगने लगा कि प्रोफ़ेसर गोरो हामागूची कुछ ऐसी ही अवस्था में रहा होगा जब मैंने उससे पूछा :

'आप क्या विचार कर रहे हैं प्रोफ़ेसर ?'

'कुछ नहीं। पुराना खूसट मैं, पुरानी ही बातें सोच सकता हूँ। अपनी मातृ-भूमि के पुरातन यश और विजय के स्वप्न मेरी बूढ़ी आँखों में स्थायी हो चुके हैं। इसी लिए ऐसा लग रहा है मानो इतिहास की अविरल धारा इस नगर की व्यथा को घोलकर यहाँ के मरुस्थल में सूखने लगेगी।' प्रोफ़ेसर गोरो हामागूची ने अपना सुनहला चश्मा नाक पर नीचे खिसकाते हुए अपने नेत्र फैला दिये। बिजली के लैम्प का प्रकाश छोटा हो उसकी धुँधली पुतलियों में चमकने लगा, उसके स्वप्नों की तरह।

'आपका देश तो बहुत वर्षों से अपने पास के देश चीन और कोरिया के मामलों में अटकता रहा है। जब बाह्य विजय की कामना होगी तभी बाह्य आक्रमण भी होंगे।' मैंने प्रोफ़ेसर से कहा।

'तो मेरे देश की अन्तरराष्ट्रीय नीति को आप दूसरे देशों से उलझना कहते हैं ?' वह आवेग में बोला।

'मैं आपके देश का आदर करता हूँ। आपका आदर करता हूँ।

पर जो कुछ भी मैंने पढ़ा या सुना है उससे तो यही मालूम होता है कि जापान कोरिया को विजय करना चाहता था और चीन के मामलों में हस्तक्षेप बराबर करता रहा था।' मैं अपनी बात पर अटल था।

'आप मेरे छोटे भाई के तुल्य हैं इसी लिए आपको सही बात बताना मेरा कर्त्तव्य है। हमारा देश कोई एक समूचा भूखण्ड तो है नहीं। यह बड़े-छोटे द्वीपों का समूह है—कियुशू, शिकोकू, होन्शू, होकैडो, काराफ़ूटो और साखालिन द्वीपों का। पहिले ताइवान या फॉर्मूसा का द्वीप भी इसी देश का भाग था। जब देश में जनसंख्या बढ़ने लगी तो हमको अपने-आप ही कोरिया और चीन की ओर आँख उठानी पड़ी। यह एक ऐतिहासिक आवश्यकता बन गई।' उसने मुझे समझाया।

'मैं आपकी स्पष्ट वार्त्ता से प्रभावित हूँ। मैं समझा आपके देश की भौगोलिक स्थिति और ऐतिहासिक आवश्यकताओं को तो। फिर यह दूसरा विश्व-युद्ध भी ऐसी ही कोई ऐतिहासिक आवश्यकता से लड़ा गया होगा—उन दूसरे देशों की आवश्यकता जो आपके देश से सशंकित रहे होंगे।' मैं बोला।

'मित्र! मेरा देश किसी को क्यों सशंकित करता? चीन के दार्शनिक कन्फ़्यूशियस (Confucius) और आपके देश के प्रसिद्ध प्रचारक गौतम बुद्ध की शिक्षा हमारे शरीर की रग-रग में व्याप्त है।' हामागूची ने अपना स्वर धीमा करके कहा, 'किन्तु जो देश जापान के निवासियों को अपने से तुच्छ समझेंगे उनके लिए पुराने "समुराई" योद्धाओं के खड्गों और कृपाणों पर सदैव धार पैनी रहेगी।'

'पुराने समुराई। मैं समझा नहीं।'

'यह सब समझने के लिए यहाँ के इतिहास को जानने की ज़रूरत है। उन्नीसवीं शताब्दी में यहाँ सेना का विस्तार व्यापक था। सेना को आधिपत्य में किये "शौगुन" (Shogun) देश में सबसे प्रभावशाली

मन्त्री होता। उसके सहायक "दायम्यो" (Daimyo), जिनको फ़ौजी सामन्त समझिए बहुत प्रभुत्वशाली थे, और उनसे नीचे "समुराई" सैनिकों के सरदार, युद्ध के लिए उतावले वीर थे। आप कुछ समझे ?'

'हाँ।' मैंने छोटा-सा उत्तर दिया। मेरी कमीज़ के अन्दर गले में लटकती चाँदी की दाँत कुरेदनेवाली छोटी तलवार-सी किसी बटन में उलझकर मेरे वक्ष में चुभ रही थी। ऐसा लगने लगा कि उसकी नोक पैनी होती जा रही है और मेरे हृदय को चीर डालेगी। मैंने कुछ आगे झुककर जैसे ही उसे कपड़ों के ऊपर पकड़कर हटाया, मेरी रगों में भी खून चढ़ने लगा। राजपूताने के वीर योद्धाओं के हाथों में पानीदार पैनी कृपाण का भास होने लगा। वे क्या 'समुराई सामन्तों' से किसी तरह कम थे ?

'हमारे देश में भी पहिले ऐसे ही योद्धा थे प्रोफ़ेसर। अब भी वहाँ से बहुत जवान फौज में आते हैं।'

'यही तो मैं कहता हूँ। किसी-किसी देश में वीरों की और वीरगति पानेवालों की परम्परा-सी बन गई है। हमारे समुराई की कार्य-प्रणाली ही भिन्न थी। उनके सिद्धान्तों को हम "बुशिदो" (Bushido) कहते हैं। वे आत्म-समर्पण के, देशभक्ति के और शत्रु-मर्दन के अनूठे सिद्धान्त, जिनसे हमारी सेना आज भी अनुप्राणित है।' वह अपने गले को खँखारते हुए कहने लगा।

'तभी तो प्रोफ़ेसर, जापान के आस-पास के देश सतर्क होने लगे।'

'आप ठीक कहते हैं। हम लोग करते भी क्या ? उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से लेकर अन्त तक हमारा देश विश्व में ऐसे ही रहा जैसे मैं इस कुटिया में अकेला रहता हूँ। न कहीं व्यापार, न अन्य राष्ट्रों से कोई सम्बन्ध। जनसंख्या बढ़ रही थी। लोगों में उत्तेजना भी आ रही थी। पश्चिमी देशों से हम सबक भी सीख रहे थे। इसी लिए कोरिया में हम

घुस बैठे और फिर चीन में।' हामागूची ने इतिहास का पूरा परिच्छेद संक्षिप्त-सा करके कहा।

'आप लोगों में भला उत्तेजना क्यों न आती! सूर्य का उदय संसार के इसी भाग से माना जाता है। यहाँ गर्मी का असर पहिले होना स्वाभाविक ही है।'

'जापान में ही गर्मी नहीं आई। हिमाच्छादित रूस में भी और नई दुनिया के अमरीका में भी। फिर क्या था; बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में रूस और जापान का युद्ध छिड़ा। चीन में बौक्सर (Boxer) के विप्लव के बहाने रूसी दस्ते वहाँ आ धमके और हम भी भिड़ गये। रूसी फ़ौजों को मात खानी पड़ी। हमने चीन में मुकडेन का नगर क़ब्जे में कर लिया। और फिर हमारा आर्थिक विकास होने लगा। हम शक्तिशाली बनने लगे।' प्रोफ़ेसर हामागूची इतिहास से ऐसा प्रभावित होने लगा कि बैठे-बैठे अपने जीर्ण दाहिने बाज़ू को ऊपर-नीचेकर मांसपेशियों के प्रदर्शन की चेष्टा करने लगा।

'आपके देश को शक्तिशाली होना भी था। क्योंकि वह पूर्वस्थित सब देशों का नेतृत्व भी तो करना चाहता था।' मैंने कुछ व्यंग-सा कस और कुछ सत्यता से प्रेरित होकर कहा।

'वही देश तो नेतृत्व कर सकते हैं जो अधिक उन्नतिशील और क्रियाशील हों। हाँ तो पहिले विश्व-युद्ध में हम इंगलैण्ड और अमरीका के साथ थे और हमने जर्मनी को पराजित किया था।' प्रोफ़ेसर हामागूची ने सिगरेट जलाकर उठते हुए धुएँ को देखते हुए कहा।

'मनुष्य का भाग्य और देश का भविष्य इस धुएँ के समान अस्थिर है। कहीं विश्व-विजय के अरमान उठे तो धूल में जा मिले। किसी ने अपने को उन्नति के शिखर पर समझा तो अन्त में सागर की अथाह गहराइयों में जा गिरा। देखिए, नेपोलियन के अन्त को देखिए। आप

तो इतिहास के पंडित हैं।' मैंने उत्तर दिया।

सम्भवतः मेरी बात प्रोफ़ेसर को अच्छी नहीं लगी। उसने अपनी नाक कुछ सिकोड़ ली। होठों में फिर सिगरेट दबा ली और कुछ देर तक वह नहीं बोला। फिर सिगरेट का कश खींचते हुए वह कहने लगा— हमारे सेनानियों ने हमको दूसरे महायुद्ध में हमारे पुराने मित्रों के विरुद्ध ला खड़ा किया। पर जापानी तो कर्मठ वीर होते हैं। अपनी धुन के पक्के। शत्रु को वे खदेड़ते चले गये। बर्मा और आराकान तक और आपके देश के द्वार तक।

'इसके आगे का इतिहास मुझे मालूम है प्रोफ़ेसर! मैं स्वयम् इस इतिहास का एक बहुत छोटा पात्र रह चुका हूँ। उस छोटी तारिका के समान।' मैंने निशा की कालिमा में टिमटिमाती तारिकाओं के समूह की ओर इशारा किया। अचानक कुटिया का दरवाजा पवन के वेग से खुल गया। दूर क्षितिज पर तारिकाएँ आँख-मिचौनी कर रही थीं।

हम लोग युद्ध-काल के अन्त में जापानियों पर बीती दुर्घटनाओं और मुसीबतों के बारे में वार्तालाप करते रहे। जब नींद से पलक भारी होने लगे मैं प्रोफ़ेसर हामागूची से आज्ञा ले कुटिया के दूसरे कमरे में सोने को चला गया।

१७

उस सुबह मौसम में एक अजब भारीपन था। रात का कोहरा बोझिल हो टूटे मकानों को घेरे था। प्रोफ़ेसर हामागूची की छोटी कुटिया पर लगी कनस्तरों की काली मटमैली छत भी टेढ़ी-मेढ़ी दिखने लगी थी। ऐसा लगता कि वह इस धुएँ और ओस के भार से जगह-जगह दब गई है। कभी-कभी बड़े-बड़े ओस-कण टप-टप टीन के किनारों

से गिरने लगते। कई दिन पैदल घूमते-घूमते मेरे पैर भी थके हुए थे। फिर भी नन्दलाल और सेत्सूको की बाट जोहता हुआ मैं बाहर टहल रहा था। कभी मैं जंगली झाड़ी की दो-चार पत्तियों को तोड़ अपनी उँगलियाँ गीली कर लेता और फिर उन पर रूमाल फेरने लगता। कभी भींगी घास के तिनकों को उखाड़ अपने दाँतों के नीचे दबाने लगता। अचानक सफ़ेद बगुलों का एक जोड़ा सागर के तट की ओर उड़ता हुआ निकला। मेरी आँखें उसका पीछा करने लगीं। आकाश सम्भवतः अपने बोझ से ही झुककर पृथ्वी की परिधि को छू लेना चाहता था। बादलों की कोरों में सुनहले रंग भरने लगे थे। मैं उस ओर देखता रह गया। पीछे से किसी ने दबे पाँव आकर मेरे कन्धे पर ज़ोर से हाथ मारते हुए कहा, 'क्या देख रहे हो मेजर ?'

'वहाँ दूर बगुले के एक जोड़े को। ओह ! तुम आ गये नन्दलाल !' मेरे मुँह से निकल गया।

'वहाँ क्या देखते हो ? इस जोड़े को देखो।' वह सेत्सूको के पास सटकर खड़ा हो गया।

मैंने सेत्सूको सान को प्रणाम किया और नन्दलाल की बात पर कुछ ध्यान भी न दिया।

'आज जी भरकर यहाँ और मस्ती की जाय। फिर कल से तो वही फ़ौजी काम का ढर्रा।' नन्दलाल बोला।

'तो चलो।' मैंने कहा।

हम सब चल दिये। आज का कोई नियत कार्यक्रम नहीं था। हिरोशिमा के भग्न नगर में घूमते-घूमते कुछ ऐसी आदत पड़ गई थी कि वहाँ की बर्बादी कुछ प्राकृतिक-सी लगने लगी। परन्तु आज सबकी चाल भारी थी। पिछले दिनों की थकान शायद टाँगों में पूरी तौर से भर चुकी थी। हम चलते-चलते रुक जाते। टूटे खण्डहरों में दृष्टि

अपने-आप अटकने लगती और हम उनको ग़ौर से देखने लगते ।

दूर पर गिरे, बिखरे, जले मकानों में कुछ खिड़कियाँ अब भी शेष थीं । उनमें से ही सुबह का धुन्ध घुसकर उनके अन्तर को पसीज चुका था । छतों के टूटे खपड़ों के ढेर और बिना छतवाले अर्ध-ध्वस्त मकान सब काले-काले एक-से ढेर दिखते । ये उस विस्तृत, बिखरे खण्डहरों के समूह से दूर थे, जो शायद अणु-बम के विस्फोट का केन्द्र रहा होगा । इस केन्द्र के व्यासार्ध के अन्तर्गत कोई भी इमारत लम्बरूप न थी । हर वस्तु ध्वंस और क्षितिज के समानान्तर । ऐसा लगता मानो रेखागणित के सब आकार यहाँ विद्यमान थे । यहाँ धरती का रंग भी गेरुआ और कत्थई होकर रह गया था ।

'नन्दलाल, देखो यह लोहे के कंकाल कैसे मुड़े-टूटे, एक-दूसरे से लिपटे खड़े हैं । वे कितने ठण्डे होंगे । मुझे देखकर फुरफुरी चढ़ती है ।' मैंने कहा ।

'यहाँ सर्दी है । जड़ वस्तु तक ठण्ड से बचने को आपस में लिपटती हैं, पर हम प्राणी बेवकूफ-से यहाँ अकेले-अकेले घूमते है ।' उसने उत्तर दिया ।

'आपकी बात सही नहीं है कैप्टेन ! देखिए वे टेलीफोन के खम्भे तो झुके, मुड़े अकेले खड़े हैं ।' सेत्सूको ने नेत्र चमकाते हुए कहा ।

'वे ठिठुरकर पृथ्वी से लिपटने का प्रयास कर रहे हैं पर हम तो जब जी चाहे लिपट सकते हैं । हा-हा-हा !' नन्दलाल ने सेत्सूको की कमर की ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा । वह एक ओर हट गई ।

हँसी बन्द होने पर वह धीमे स्वर में बड़बड़ाने लगा—मेरी तकदीर में तो अकेले ठिठुरना ही बदा है । कुछ रुककर वह मुझसे बोला, 'मेजर, यहाँ क्या रक्खा है, जो समय बर्बाद किया जाय । चलो, समुद्र के तट पर, उस चट्टान पर धूप लें, जहाँ साम्पान की सैर के बाद मैं और

सेत्सूको बैठे थे। क्यों सेत्सूको ठीक है न ?'

सेत्सूको सान ने सर हिला दिया। मैंने देखा उसके गाल गुलाबी हो चले थे।

हिरोशिमा नगर की दक्षिण दिशा में सागर का तट बहुत सुन्दर था और वहाँ का दृश्य अत्यन्त मनोहारी। दूर पीछे तीनों ओर हरी पहाड़ियाँ और आगे स्वच्छ नीला जल-पट, जिस पर साम्पान और किश्तियाँ ऐसे उतारतीं मानो नील-सरोवर में हंस। हम लोग किनारे की चट्टान पर बैठ उन हंसों-जैसी नावों की क्रीड़ा देख रहे थे। दूर पर एक मोटर-बोट तीव्र गति से तट की ओर जा रही थी। मोटर-बोट को किनारे पर बाँधकर जब उसके चालक ने अपना बेंत का हैट सँभाला और गले में बँधे रूमाल को ठीक किया तो मैं पहिचान गया—वह मेरा मित्र तेरुओ ओकादा था।

'मिस्टर तेरुओ ओकादा! तेरुओ ओकादा!' मैं उसी तरह से चिल्लाने लगा जैसे मैं उस दिन उसे खोजते हुए कूरे के तट पर आवाज दे रहा था।

उसने मेरी ओर देखा और मैं भागकर उसके पास पहुँच गया।

'आप यहाँ कहाँ ?' मैंने पूछा।

'आपकी खोज में। और आप यहाँ कैसे ?' तेरुओ ओकादा की चौड़ी मुस्कान उसके चेहरे पर फैल गई।

'मैं यहाँ अपने मित्रों के साथ आया था इस नगर को देखने।' मैंने कहा।

'और मैं भी अपने एक मित्र को देखने आया हूँ। मेरे सौभाग्य से मुझे दूसरा मित्र मिल गया। अब मेरे ही साथ कूरे चलिएगा।' उसने मुझसे हाथ मिलाते हुए कहा।

'किन्तु मेरे साथ दो और व्यक्ति हैं।'

'मेरी मोटर-बोट तो आपने देखी है। दो क्या चार और हों, सबको मैं ले चल सकता हूँ।' ओकादा ने गर्व से कहा।

मैंने कैप्टेन नन्दलाल और सेत्सूको सान का परिचय कराया और तेरुओ ओकोदा प्रसन्न हो गया। वह चार घण्टे की अवधि माँगकर अपने मित्र को देखने चल दिया। हम ओकादा के साथ कूरे वापस चलने की तैयारी में लग गये।

नन्दलाल ने फिर सेत्सूको के साथ साम्पान में सैर करने की ठान ली, और मैं गोरो हामागूची की कुटिया की ओर चल दिया।

★

जब मैंने प्रोफ़ेसर हामागूची से विदा ली तो उसके हृदय में उठते उद्गारों ने उसके गले को अवरुद्ध कर लिया था और उसके पतले धुँधले नेत्र डबडबा आये थे। बहुत देर तक मेरा हाथ अपने हाथ में लिये वह कुछ भी न बोल सका। मैंने अनुभव किया कि उसका हाथ काँप रहा था और रह रहकर उसकी उँगलियाँ कुछ अधिक प्रकम्पित होतीं। मेरा हाथ हल्के-से दबाते हुये वह बोला—मेरे प्यारे मित्र! आपके यहाँ रहने से यह कुटिया जगमगा गई। आप फिर उसको अन्धकार के संसार में छोड़े जा रहे हैं—इस टूटे नगर के उस अन्धकार में जो रात-दिन यहाँ गहरा होता जाता है।

'प्रोफ़ेसर! आप कितने अच्छे! कितने उच्च आदर्शों की झाँकी लेनेवाले हैं! न आपके निवासस्थान में, और न इस नगर में ही, कभी अँधेरा रहेगा, जब तक इस क्षितिज में सूर्य और चन्द्र का प्रकाश है।' हामागूची के और निकट आकर मैंने चमकते सूर्य की ओर उँगली इंगित करते हुए कह।।

फिर मैंने झुककर उसे नमस्कार किया और मुझे आशीर्वाद देते हुए उसके होठ फड़कने लगे। उसने धीमे स्व र में कहा—डाक्टर तोशियो

को मेरी शुभकामनाएँ देना और उससे कह देना कि कभी-कभी इस बूढ़े की भी ख़बर ले लिया करे।

जब मैं सागर-तट पर पहुँचा, कैप्टेन नन्दलाल और सेत्सूको सान भी कुछ दूर आते दिखाई दिये। ओकादा मोटर-बोट ठीक-ठाक कर रहा था। मैं ओकादा के पास बैठ गया। सेत्सूको एक ओर बैठी और नन्दलाल ने हँसकर उसी के बगल में आसन जमा लिया। बोट चल दी और सुखद समीर हमारी नाक और आँखों में भरने लगी।

'हिरोशिमा नगर को देखो, कैसा विध्वंस हो चुका है ओकादा! यह तो नश्वरता की बड़ी समाधि-सी दिखने लगी है।' मैंने कहा।

'हाँ, आप ठीक कहते हैं। नश्वरता यहाँ समाधि लेना चाहती थी पर यहाँ के कर्मठ लोग उसे विचलित करना चाहते हैं।' ओकादा ने उत्तर दिया और अपने मज़बूत बाजुओं से उसने बोट को निर्धारित दिशा में गतिशील कर दिया।

'मैंने इस नगर के खण्डहरों में खूब भ्रमण किया है। ऐसा लगता है मानो यहाँ के लोग कुछ ही दिनों में नव-निर्मित नगर बना डालेंगे। सचमुच वे बड़े कार्यशील और अथक परिश्रम करनेवाले हैं।' यह कहते-कहते मेरे मस्तिष्क में अपने देश की समाधियों पर बने मठ और कब्रों पर बने दरगाहों के चित्र खिचने लगे। यह हिरोशिमा का नव-निर्माण था अथवा उसके खण्डित अन्तर की वेदना को अमर करने का प्रयास? जैसे-जैसे यह नगर बनेगा इसके खण्डहर मिटेंगे। कब्रों पर फ़ूल खिलेंगे। सम्भवतः लोग फूलों में छिपी व्यथा को भूल जायँ। नवरचित रास-गृहों के नीचे दबी, खण्डहरों पर बनी नींव का वे लोग कभी ध्यान भी न करेंगे जो वहाँ आमोद-प्रमोद के रंगों में डूबेंगे। कुछ भी हो, मुझे तो ऐसा लगने लगा कि जैसे-जैसे नई इमारतें यहाँ बनेंगी, मनुष्य के मनुष्य पर किये आघात की निर्ममता साकार होती जायगी।

इस समय मेरी दृष्टि आकाश में बादलों में उलझी थी। एक बादल का टुकड़ा धुआँ-सा बनकर नीले अन्तरिक्ष में समा गया था और देखते-ही-देखते दूसरा रूई के पहलों-सा बादल तैरता हुआ वहाँ आ मिला।

'मेरे मित्र ! मैं भी अपने एक कर्मठ साथी से मिलने इस नगर में आया था।' ओकादा बोला।

मेरा ध्यान टूटा और मैं कहने लगा, 'ओह ! आपका कौन साथी ? वह कहाँ रहता है ?'

उसने बताया, उसका साथी फ़ौज में तोप चलानेवाले दस्ते में था। इस नगर के पास के ग्राम का रहनेवाला वह, हिरोशिमा में शत्रु के वायुयान पर आक्रमण करनेवाली टोली में था। जब उस सुबह शत्रु के वायुयानों का गर्जन हुआ उसने तोप उस ओर मोड़ी। अनेकों सूर्यों के-से सम्मिलित प्रकाश में उसकी आँखें चौंधियाँ गईं। वह कुछ न कर सका। उसकी आँखों के आगे अन्धकार छा गया।

'वह अन्धकार अमर हो गया। मेरे साथी के आँखों की ज्योति सदा के लिए चली गई। उसकी आँखों की पुतलियाँ पिघल गईं। उनमें से पानी बहने लगा। आँखों का अस्तित्व ही मिट गया और उनकी जगह अब खाल चढ़े दो छिद्र रह गये हैं, जिनके परे अन्धकार-ही-अन्धकार। पर वह किसी तरह जीवित है। मैं उसका पुराना साथी कभी मछली और कभी खाद्य-सामग्री उसे भेंट करने जाता हूँ।' ओकादा कह रहा था।

मेरे नेत्रों को मेरे दाहिने हाथ की एक उँगली अपने-आप स्पर्श करने लगी। जब दृष्टि दूसरी ओर हुई, मैंने देखा नन्दलाल और सेत्सूको कुछ फुस-फुस कर रहे थे।

नन्दलाल अपना थरमस खोल कभी सेत्सूको को कॉफी पिलाता, कभी बिस्कुट खिलाता। उसके पास और सटकर वह कभी सेत्सूको के कपड़ों का स्पर्श करता तो कभी हवा में इठलाती उसकी लटों की

ओर हाथ बढ़ाता। इस समय उसके होठ रूखे-से थे। वह अपनी सुध भूले हुए था। न उसने हमसे एक शब्द बोला, और न कॉफी पीने को कहा।

मैंने देखा, सेत्सूको सान के गालों पर रंग ऐसे चढ़ रहे थे जैसे ऊपर आकाश में। कभी पीली-सी गर्दन से ऊपर की ओर गुलाबी ऐसे चढ़ने लगती जैसे गुलाब की पाँखुरियों में। इस समय नन्दलाल ही बातें किये जा रहा था और वह चुप थी। वह क्या कह रहा था यह मैं नहीं सुन सका, क्योंकि बोट का एञ्जिन भड़-भड़ कर रहा था। ओकादा ने ज़रूर इस समय मेरा हाथ दबाते हुए आँख से दोनो की ओर इशारा किया और उसकी मुस्कान चौड़ी हँसी में समा गई।

'चलो, आपको एक सुन्दर स्थान भी दिखाता चलूँ। हिरोशिमा के टूटे दृश्यों से आपका मन भर चुका होगा।' ओकादा ने यह शब्द कहते हुए मोटर-बोट की दिशा बदल दी।

'मोटर-बोट में यात्री, और बन्दीगृह में बन्दी, दोनो की एक-सी ही दशा होती है। दोनो को निर्देशक जहाँ चाहे ले जा सकता है।' मैंने उत्तर दिया।

'खुली हवा और बन्दीगृह, आपने भी क्या उपमा दी है! यहाँ आप बन्दी नहीं हैं, आपके वे साथी जरूर बन्दी हुए जा रहे हैं।' ओकादा ने यह शब्द धीमे स्वर में कहे और वह हँसने लगा।

'उनको आप ही बचाइए। वे मेरे क़ाबू के बाहर हो चुके हैं।' मैंने ओकादा से कहा।

'न आपके क़ाबू में, और न मेरे क़ाबू में। अब तो वे उस नवेली के क़ब्जे में लगते हैं। कहीं प्रेम-सागर में उतराते-उतराते डूबने न लगें!' ओकादा बोला। हम दोनो ने नन्दलाल की ओर देखा। वह अपनी सुध-बुध भूला सेत्सूको के और निकट पहुँच चुका था।

'उसे डूबने भी दो। वह भी इस बोट के चालक की तरह सागर में डूबकर ऊपर आ जाएगा—मेरा मतलब है प्रेम के सागर में डूबकर, और साथ में एक प्रेमिका लिये।' मैंने कहा।

'आप बहुत शरीर हैं मेजर! यह महिला गुम-सुम, चुपचाप रहती है। मेरी स्त्री तो बहुत बोलनेवाली, कान खानेवाली, दिमाग़ चाटनेवाली। वह अक्सर आपकी याद कर लेती है।' तेरुआ ओकादा ने पतली आँखें तिरछी करते हुए कहा।

'वे तो एक अतिश्रेष्ठ महिला हैं। यह अच्छा है कि मेरे एक मित्र के पास बोलनेवाली जापानी गुड़िया है; और दूसरे के पास चुप रहनेवाली। यहाँ सबने अपना-अपना इन्तज़ाम कर लिया है। और रह गया मैं अकेला।' मैं बोला।

'आपका भी इन्तज़ाम हो सकता है। पर हाँ! आदर्शवादी लोगों को तो आदर्श वस्तुओं की झाँकी दिखानी चाहिए। मामूली हाड़-मांस की पुतलियों से भला वे थोड़े ही प्रसन्न हो सकते हैं। इसी लिए मैं आपको एक पुण्यस्थान दिखाने लिये चल रहा हूँ। पाप-प्रांगण से उतनी ही दूर जितना वह क्षितिज।' उसने मुझ पर व्यंग कसा और अपनी उँगली से दूर आकाश की ओर इशारा किया।

ओकादा ने मोटर-बोट की गति तीव्र कर दी और हम कुछ देर बाद 'मिया-जिमामा' द्वीप के किनारे जा लगे। पाइन और सीडर के सघन वृक्षों का यह सुन्दर-बन सचमुच ही हिरोशिमा के निर्जीव भूस्थल से कितना भिन्न था! यहाँ प्रकृति की अनूठी कोमलता और सौन्दर्यमयी स्निग्धता थी, और वहाँ पुरुष के नवीनतम अन्वेषण का घातक प्रहार था। यहाँ सुखद समीर और वहाँ वेगमय प्रभञ्जन। यह स्वर्ग का एक टुकड़ा और वह इस बोझिल धरती का बिलखता एक भू-खण्ड। ओकादा ने बताया कि इस द्वीप को लोग 'पेरेडाइज़ आइलैंड' अथवा

स्वर्गिक-सुख का द्वीप कहते हैं। यहाँ कुछ लोग सैर को आते हैं और कुछ शिएटो मठों का दर्शन करने। ओकादा और मैंने जब पीछे मुड़-कर देखा तो कैप्टेन नन्दलाल और सेत्सूको किसी झाड़ी की ओट में उलझे रह गए थे। वे आनन्द के विहार में थे और हम मठ के पथ पर थे। मेरा मन ग्लानि से भरने लगा। मुझसे नहीं रहा गया और मैंने ज़ोर से आवाज़ लगाई : 'नन्दलाल' नन्दलाल ! हम यहाँ आ गये। तुम भी जल्दी आओ। देखो यह कितनी अच्छी जगह है।'

'हम आ रहे हैं मेजर ! जरा ठहरो, थोड़ा रुको !' वृक्षों के तनों से टकराते हुए नन्दलाल के ये शब्द गूँज गये।

'किस फेर में पड़े हो ! वे प्रेम के चक्कर में हैं। चलो, आगे बढ़ो।' ओकादा ने मेरी बाँह पकड़कर आगे खींचते हुए कहा।

'मैं उसे इस चक्कर से निकालूँगा। मैं नन्दलाल की आदतें खूब जानता हूँ। देखो वे दोनो आ रहे हैं।' मैंने कहा।

'अच्छा मित्र ! यह भी देखना है।' ओकादा ने उत्तर दिया।

हम दोनो से न नन्दलाल ने और न सेत्सूको ने भी कोई बातचीत की। वे दोनो आपस में ही मस्त थे। हम सब शिएटो के मठ पर पहुँच गये थे। ओकादा मुझे उसके विशाल द्वार दिखा रहा था, जिनको जापानी भाषा में 'तोरिई (Tori) कहते हैं। मैं 'तोरिई पर की गई शिल्प-कला की प्रशंसा कर रहा था और नन्दलाल और उनकी गोपी सेत्सूको शायद मठ के दर्शन में व्यस्त थे। अचानक नन्दलाल के मुख से निकले शब्द मेरे कान में पड़े : 'मैंने निश्चय कर लिया। मैंने निश्चय कर लिया।'

जब मैंने उधर देखा सेत्सूको सान नन्दलाल की भुजा का सहारा लिये मुदित हो रही थी। मृगी की भाँति वह कभी इधर-उधर देखती और फिर कभी एकटक नन्दलाल की ओर।

'ओकादा ! देखो वहाँ क्या हो रहा है ?' मैंने कहा।

'वहाँ हो रहा है प्रेमालाप। आपको संसार-भर की चिन्ता रहती है।' ओकादा आँखें सिकोड़कर बोला।

'मेरी समझ में वहाँ दो व्यक्तियों द्वारा अव्यक्त आराधना हो रही है।' यह शब्द अचानक मेरे मुँह से निकल पड़े।

'और मेरे विचार से वहाँ दो रसिकों का व्यक्त जीवन-गान हो रहा है।' ओकादा ने उत्तर दिया।

उसकी बात ही सच निकली, क्योंकि दूसरे क्षण ही सेत्सूको मधुर गीत गुनगुनाने लगी और उसके स्वर मठ में गूँजने लगे।

१८

कूरे में वापस आकर हम अपने कार्यों में इतने व्यस्त हो गये कि दो दिन तक मुझे कैप्टेन नन्दलाल से बातचीत करने तक का अवकाश भी न मिल सका। वह अपनी ड्यूटी पर सुबह से ही निकल जाता और मैं अपना काम करने लगता। डाक्टर तोशियो तनाका से मिले बहुत दिन हो चुके थे। उसी की कृपा से तो मैं हिरोशिमा में इतनी अच्छी तरह से रह रहा था। उसके पास जाना आवश्यक था। मैं शाम को फिर डाक्टर के मकान पर जा पहुँचा।

'आइए, आइए मेजर ! मैं तो आपका कई दिन से इन्तज़ार कर रहा था। हिरोशिमा की यात्रा कैसी रही ?' डाक्टर ने पूछा।

'बहुत अच्छी। प्रोफ़ेसर गोरो हामागूची आपकी बहुत याद करते थे। वे तो प्रगाढ़ पाण्डित्य और सज्जनता की सौम्य मूर्ति हैं।' मैंने कहा।

'हाँ वह विद्वान है। वह बीती हुई बातों की कड़ियाँ जोड़ने में लगा हुआ है और मैं अनिश्चित, अदृश्य, भविष्य की परछाइंयों को पकड़ना

चाहता हूँ। डाक्टर ने अपने मोटे चश्मे की कमानी पर उँगलियाँ फेरते हुए कहा।

'आप दोनों व्यक्ति इस देश के लिए महत्त्वपूर्ण और आवश्यक कार्य कर रहे हैं। प्रोफ़ेसर हामागूची के काँपते हाथों में टिमटिमाती बत्ती इतिहास के अँधेरे क्रोड़ को आलोकित करेगी और आपके शोध-निष्कर्षों द्वारा अणु-बम से उत्पन्न सँक्रामक रोगों का विनाश होगा।' मैंने उसकी प्रशंसा की।

'आप तो हिरोशिमा से कवि बन आये हैं, जो इतनी अतिशयोक्ति-मयी बातें कर रहे हैं। अपने मित्रों की व्यर्थ की प्रशंसा नहीं करनी चाहिए।' डाक्टर तोशियो तनाका ने मुझे समझाया।

मैं चुप रहा और वह फिर कहने लगा :

'हाँ तो आपको वहाँ कैसा लगा ?'

'कुछ मत पूछो डाक्टर ! ऐसी विस्तृत विभीषिका तो मैंने आज तक नहीं देखी। मेरा एक मित्र भी साथ गया था। वह पहिले खूब हँसी-मज़ाक करता था ; पर हिरोशिमा का विनाश देखने के बाद गुम-सुम-सा हो गया है। मालूम नहीं उसे क्या हो गया ?'

'उसको मेरे पास ले आना, मैं उसका इलाज कर दूँगा।'

'अभी रोग का आरम्भ ही है। आपके कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। उसका इलाज तो आपकी नर्स सेत्सूको सान ही कर देगी !' मैंने व्यंग किया।

'हाँ, सेत्सूको भी चतुर है।' डाक्टर ने सीधा-सा उत्तर दिया।

'अब यूरीको का क्या हाल है ? हम सब उसके टूटे घर को देखने गये थे।'

'वैसा ही हाल है। कभी अच्छा, कभी बुरा। अपने टूटे घर की तरह वह भी टूट चुकी है। मुझे अभी दवा-दारू के सिलसिले में उसके

पास जाना है। आपको भी ले चलूँगा।' कहते-कहते डाक्टर ने यूरीको का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर पूरा वृत्तान्त मुझसे कह डाला। उसने बताया कि अपने घर के पट खटखटाते-खटखटाते उसकी छोटी मुलायम हथेलियाँ लोहू से लथपथ थीं और उसकी चेतना पर दुःख का गहरा आवरण छा चुका था। जब वह इस चिकित्सालय में आई, उसका मानसिक सन्तुलन डिगा हुआ था। वह रह-रहकर किवाड़ों और खिड़की के पल्लों पर हथेलियाँ पटकती, उनको खटखटाती। कभी रोती, कभी चीख़ती। इसी लिए डाक्टर ने उसके कमरे के सब किवाड़ और खिड़कियाँ निकलवा दीं और उनकी जगह कम्बल के पर्दे डलवा दिये। उसकी देख-भाल नर्स सेत्सूको सान को सौंपी। सेत्सूको उसे किस्से-कहानी सुनाती, अपने मधुर संगीत से उसका मन बहलाती। फूल-पत्तियों में उसे व्यस्त रखती। अब वह पहिले से कुछ ठीक थी। फिर भी कभी-कभी विचलित हो जाती और कभी मूर्छित हो जाती है।

'इन दिनों जब सेत्सूको छुट्टी ले आपके साथ हिरोशिमा गई थी, मैं स्वयं यूरीको की देख-रेख करता था। वह बड़ी नाज़ुक है और बड़ी भावुक। इस भावुकता ने ही संसार में बहुत से लोगों को परेशान कर रक्खा है। भावुकता स्वयं एक रोग है।' डाक्टर तोशियो ने कहा।

'यदि भावुकता न हो तो न कवि हों और न लेखक और न आपके रोगी। सब खोखले मिट्टी के पुतले-से हो जायँ।' मैं बोलने लगा।

'यदि यह विचार उन लोगों में होते जिन्होंने हिरोशिमा पर अणु-बम का विस्फोट किया तो आज यह रोना ही क्यों होता?'

'यह भी भावुकता के अभाव के कारण। जब मनुष्य की कार्य-प्रणाली मस्तिष्क के शुष्क विचारों से संचालित होगी तब ऐसा ही होगा। मुझे ही लीजिए। हम सब अब जल्दी ही भारत वापस जाने-वाले हैं, पर आपसे मित्रता इतनी गहरी हो चुकी है कि विलग होने के

विचार से ही हृदय-गति रुकने-सी लगती है ।'

'क्या ! अब आप जानेवाले हैं ? मेरे सच्चे प्यारे दोस्त ! ऐसा न कहिए ।' डाक्टर तोशियो तनाका व्याकुल हो गया ।

'मेरे मित्र ! जो आया है वह एक दिन जायगा भी । मैं भी एक अजनबी-सा आपके देश में आया था और अब अपने अच्छे मित्रों की याद अपने हृदय में समेटे किसी दिन यहाँ से चला जाऊँगा ।' मैं यह शब्द कह तो गया, पर मेरे अन्तर में सागर की-सी ऊँची लहरें उठकर मेरे कण्ठ को अवरुद्ध कर, नेत्रों की कोरों में से छलकने का प्रयास करने लगीं । मैं चुप हो गया । मेरी स्थिति उस नर्स ने सम्हाली, जो एक सन्देश डाक्टर के पास लाई कि यूरीको ने उसे बुलाया है ।

हम दोनो यूरीको के कमरे की ओर चल दिये । डाक्टर तोशियो तनाका ने मेरे कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा, 'मेजर ! यहाँ कुछ दिन और रहने की कोशिश करना । और यदि न रुक सको तो जाने के पहिले नारा नगर में इस देश की प्रसिद्ध गौतम बुद्ध की प्रतिमा को अवश्य देखना । उसी प्रतिमा के पुण्य प्रताप से हमारी मातृभूमि अब तक जीवित है !'

'डाक्टर, जी चाहता है मैं यहाँ बहुत वर्षों रहूँ। पर मेरा भाग्य तो अपने देश की सेना के साथ बँधा है । जब तक भारत की सेना यहाँ है तब तक मैं यहाँ हूँ ।' मैं कहने लगा ।

जल्दी-जल्दी पग बढ़ाते हमने यूरीको के कमरे में प्रवेश किया । पलंग पर बैठी वह पीली-सी, मुर्झाई दिख रही थी । पिछली बार देखने के बाद से वह आज कुछ और दुबली लगी ।

आज भी वह फूलों के गुलदान सजाने में लगी थी । नर्स सेत्सूको मन्द वाणी से एक गीत गा रही थी । हमको देखकर उसने गाना बन्द कर दिया ।

'यूरीको ! अब दवा पी लो । सुबह से दवा न पीने की क्यों ज़िद कर रही हो !' डाक्टर ने कहा ।

'नहीं, मैं, दवा नहीं पीयूँगी ।' यूरीको ने सर झटककर ज़िद की।

'अब तो सेत्सूको तुम्हारी देख-भाल को आ गई है । अब क्यों ग़ुस्सा होती हो !' डाक्टर ने समझाया ।

'नहीं-नहीं-नहीं !' वह अपने निश्चय पर अटल थी ।

सेत्सूको ने मुझसे इशारा किया कि मैं भी कुछ समझाऊँ। इसी लिए मैं बोलने लगा, 'आप क्यों इतनी ज़िद करती हैं। दवा पीजिए, अच्छी हो जाइएगा । और फिर अपने नगर में आनन्द से रहिएगा !'

'कहाँ रहूँ, यहाँ या हिरोशिमा में ?' यूरीको ने पूछा और वह अपनी कमर को सीधीकर, अकड़कर बैठ गई।

'जहाँ चाहो वहाँ रहना, लेकिन दवा पीनी पड़ेगी । ये कहते हैं, हिरोशिमा अब बहुत कुछ बन चुका है ।' डाक्टर ने मेरी ओर इशारा किया ।

'मेरा हिरोशिमा ! मेरा प्यारा हिरोशिमा ! भला मैं उसको कभी छोड़ सकती हूँ ? और मेरा मकान—वह कैसा है ? वह भी क्या बन चुका ?' यूरीको आवेग में कहने लगी ।

'तुम व्याकुल मत हो यूरीको । इन मेरे मित्र ने और सेत्सूको ने तुम्हारा मकान देखा है । वह बन रहा है । क्यों ठीक है न ?' डाक्टर तोशियो तनाका ने मेरी ओर और सेत्सूको की ओर देखकर आँख से इशारा किया ।

हम दोनो ने डाक्टर से सहमत होते हुए ऊपर-नीचे सर हिला दिये ।

'तब तो मैं वहाँ जाऊँगी । बस, अभी-अभी । वहाँ मैं वह कमरा सजाऊँगी जहाँ हम चाय पीते थे, खाना खाते थे । मालूम नहीं उन फूलों

की क्यारियों का क्या हाल होगा, जिनमें से फूल तोड़कर मैंने अपने बच्चों के कोट में लगाये थे। मेरा चेरी का पेड़ अब बहुत बड़ा हो गया होगा। उसमें कोई पानी देनेवाला भी नहीं है। मुझे अब वहीं जाना है—अब मैं जा रही हूँ।' यूरीको पलंग से उठने का प्रयत्न करने लगी। सेत्सूको और डाक्टर ने उसकी रोक-थाम की।

इस समय बत्ती जलने का समय हो गया था और अँधेरा गहरा हो चुका था। अचानक चारों ओर बिजली की बत्तियाँ जगमगा उठीं। यूरीको के कमरे की बत्ती जल गई और बरामदे की भी। वह चिल्लाने लगी, 'क्या सब बत्तियाँ मिलकर जलेंगी। एक दुखिया की अँधेरी निराशा का वे मज़ाक उड़ा रही हैं। मैं अपने दुःख को अपने हृदय में सँजो के रक्खूँगी। उस अन्धकार को बत्तियाँ छू भी नहीं सकतीं।' यूरीको ने दोनों हथेलियों से अपने वक्ष को कसकर दबा लिया।

'घबराओ नहीं यूरीको, प्यारी यूरीको! धीरज धरो। कम बोलो।' तोशियो तनाका ने उसकी पीठ सहलाते हुए कहा। सेत्सूको उसके सर पर हाथ फेरने लगी।

'मुझे छोड़ दो, छोड़ दो! आप लोग नहीं जानते। देखिए आसमान से आग बरस रही है। चारों ओर शोले उठ रहे हैं। मेरा घर जल रहा है। मेरे पतिदेव भस्म हो चुके। मेरे बच्चे बिलख रहे हैं—छोटे नन्हें प्यारे-से बच्चे—मेरे हृदय के टुकड़े—अरे, उस काले धुएँ को देखो। वे सब उस घुमड़ते धुएँ में ऊपर आसमान में चले गये। और मैं यहाँ अकेली रह गई—बिल्कुल अकेली—अकेली।' यूरीको का स्वर ऊँचा उठने लगा और शरीर पतझड़ की पीली मुर्झाई हुई उस पत्ती की भाँति काँपने लगा जो पवन के दो-चार झोंके लगने के बाद जीर्ण होकर जीवन-रस देनेवाली डाली से विलग हो जायेगी।

डाक्टर ने कहा, 'ठहरो, ठहरो। सेत्सूको! तुम यूरीको को रोको।'

पर वह क्यों रुकनेवाली थी। वह भर्राई आवाज़ में फिर चिल्लाने लगी—'क्या इस संसार में अब ऊपर से अंगारे और बम ही बरसेंगे—झुलसानेवाले, जलानेवाले, अंगारे और शोर मचानेवाले, भीषण सर्व-नाशक बम ! मुझे तो सूर्य और चन्द्र से भी चिढ़ हो गई है। आग का गर्म चमकता, पिघलता सूर्य और रक्त-रंजित काले धब्बेवाला चाँद ! फिर विध्वंस और जीवन का अन्त करनेवाले बम ! छोटे बम, अणु-बम, हत्यारे बम ! मैं इस संसार में नहीं रहना चाहती। इसमें चारों ओर से मैं घिरी हूँ। मैं बन्दी हूँ। देखो वह आकाश भी मुझे घेरे है। मेरे घर के द्वार बन्द किये है। मैं उसके पार जाना चाहती हूँ। अपने पति से मिलने, अपने बच्चों से मिलने, अपने भगवान बुद्ध से मिलने। मैं वहाँ अवश्य जाऊँगी—अवश्य-अवश्य....' कहते-कहते यूरीको आकाश की ओर अपनी दोनो छोटी हथेलियाँ हवा में ऐसे चलाने लगी जैसे किसी द्वार के पट खटखटा रही हो। उसका सर हिलने लगा। लटें बिखर गईं, होंठ सूख गए, साँस तेज़ी से चलने लगी। सारे शरीर में कम्पन आरम्भ हो गया। उसके नेत्रों के पलक मुँद गये। आनन पर विषाद की छाया गहरी हो गई। वह निस्पन्द-सी शिथिल हो पलंग पर अचेत गिर गई।

डाक्टर तोशियो तनाका उसकी देख-रेख करते हुए कहने लगा, 'यही इस रोगी की बीमारी है। मेरी समझ में नहीं आता इसका क्या उपचार करूँ ! मालूम नहीं हिरोशिमा पर अणु-बम गिरने के बाद कितने ऐसे और रोगी हो गये होंगे। मेरे मित्र ! यह भी हमारे देश में अणु-बम की देन है।'

मैं निस्तब्ध, अवाक् यह सब देखता रहा। मेरे पास सूखी सहानु-भूति देने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था।

मेरे हृदय को यह भावना द्रवित करने लगी और अब स्थिर-सी हो

गई है कि हिरोशिमा पर अणु-बम का विस्फोट कर मनुष्य ने मनुष्यता की ओर से पट बन्द कर लिये। उसके फलस्वरूप यूरीको के आनन्द और भाग्य के पट सदैव को बन्द हो गये।

१६

बहुत कहने-सुनने के बाद कैप्टेन नन्दलाल मेरे साथ नारा नगर चलने को तैयार हुआ। जब मैं उससे चलने का प्रस्ताव करता वह यह कहकर टाल देता—अभी तो यहाँ कुछ दिनों रहना है। ऐसी जल्दी भी क्या है?

'तुम भी कैसी बातें करते हो? एक सप्ताह इस देश से चलने को रह गया है। यह पुण्य-स्थान मैं देखकर ही रहूँगा।'

'तो आप अकेले देख आइए मेजर।'

'तुम बेहद सुस्त हो गये हो नन्दलाल। भला मैं तुम्हारे बग़ैर कहीं भी जा सकता हूँ! चलो सुस्ती छोड़ो और नारा में बुद्ध भगवान के दर्शन किये जायँ।' मैंने उसको झड़पते हुए कहा।

'अच्छा, जैसी आपकी मर्ज़ी।' कहकर वह तैयार हो गया।

हम दोनो ट्रेन से नारा के लिए रवाना हो गये। कुछ हल्की सर्दी थी, इसलिए खिड़की के शीशे चढ़ा लिये। मैं एक खिड़की के सहारे बैठ कभी बाहर का चलचित्र का-सा चलता दृश्य देखने लगता और कभी पास बैठे हुए अपने मित्र से बातचीत करने लगता। इस समय उसकी आँखों के चारों ओर के घेरे अधिक काले मालूम हो रहे थे। उसका मुख पीला-सा, कुछ दुबला-सा लग रहा था और वह स्वयम् कुछ खोया-सा कुछ भूला-सा था। बायें हाथ की उँगलियों से वह बहुत देर तक अपनी कमीज़ की बटन घुमाता रहा और दाहिने हाथ की उँग-

लियों में सिगरेट थामे वह गाड़ी की छत पर एकटक देखता रहा। जब सिगरेट का छोटा जला टुकड़ा उसकी उँगलियाँ चहकाने लगा होगा तब उसका ध्यान भंग हुआ और तब उसने खिड़की के बाहर वह टुकड़ा फेंका।

मैंने उससे पूछा, 'नन्दलाल ! अब न तुम हँसते हो और न मज़ाक करते हो। क्या बात है ? क्या तबीयत खराब रहती है ?'

'मेजर ! हिरोशिमा देखने के बाद ऐसी तबीयत बिगड़ी है कि ठी.. ही नहीं होने को आती।'

'हिरोशिमा की वजह से तबीयत बिगड़ी है या सेत्सूको के कारण।' मैंने चुटकी ली।

वह सूखी-सी हँसी हँसकर बोला, 'आप मालूम नहीं सब भेद कहाँ से जान लेते हैं ? सेत्सूको सच में देवी है।'

'तुम्हारा भी क्या ठिकाना ! कभी क्योतो नगर की गेशा-गर्ल तुम्हारी प्रेमिका, तो कभी हिरोशिमा की नर्स तुम्हारी देवी। शायद चलती-फिरती देवियों को छोड़कर बुद्ध भगवान के दर्शन करने में इसी लिए तुम इतनी आनाकानी कर रहे थे। वाह रे नन्दलाल ! जैसा नाम वैसे गुण।'

'नहीं मेजर ! आपसे कभी झूठ नहीं बोलता। सेत्सूको इस पृथ्वी की नहीं स्वर्ग की देवी है।' नन्दलाल ने कहा और उसके नेत्र चमकने लगे।

'अगर सच बोलते हो तो बताओ उस दिन तुमने मिया-जिमा द्वीप में शिएटो मठ के आगे क्या निश्चय किया था ?' मैंने दृढ़ता से प्रश्न किया।

वह कुछ सिटपिटा गया। मेरे पास खिसककर वह धीमी आवाज़ में कहने लगा, 'चलो आज आपको सब बातें बता ही दूँ। उस सुबह

ओकादा की मोटर-बोट आने के बाद हिरोशिमा में जब मैं और सेत्सूको साथ-साथ साम्पान की सैर को गये तो मौसम मदभरा था। हल्की सर्दी, दिल को गुदागुदानेवाली समीर और शान्त सागर। मैं पतवार चला रहा था और वह ऊन के मोज़े बुन रही थी। मैंने ग़ौर से देखा। उसकी उँगलियाँ कितनी पतली और सुन्दर थीं। हवा के झोंके से मेरी कमीज़ की बटनें खुल गईं। मेरे दोनो हाथों में पतवारें थीं। मैंने कहा—सेत्सूको, मेरे हृदय में यह समीर बरछी-सी लग रही है। ये बटन लगा दो। वह बुनाई छोड़ मेरे पास आ गई। उसने अपनी नर्म उँगलियों से मेरी कमीज़ की बटनें लगाना शुरू किया और कहा—मैं उपचारिका सब की सेवा करती हूँ। कितनी मीठी उसकी आवाज़ थी। मेरे हृदय में एक तूफ़ान उठने लगा। उसका वक्ष मेरे हृदय के पास। मुझ से नहीं रहा गया। मैंने पतवारें छोड़ दीं और उसको अपने बाहु-पाश में ले लिया। फिर मैंने अपने होठ उसके अधरों पर रख दिये और कहा—मैं तुमको सदा के लिए अपना बनाऊँगा।'

इसी समय ट्रेन में एक झटका-सा लगा। शायद वह किसी छोटे स्टेशन के पास से जा रही थी और एक पटरी से दूसरी पटरी पर तेज़ चल रही थी।

'वाह रे नन्दलाल! पतवार छूटे हुए, नौका मझधार में और दो प्रेमी अटूट आलिंगन में। क्या नाटक और तुम उसके नायक और वह नायिका!' मैंने कहा।

'मज़ाक मत करो मेजर! उस समय से मेरे जीवन की धारा की दिशा बदल गई—मेरे ध्येय, मेरे उद्देश्य बदल गये।' नन्दलाल बोला।

'ऐसा होता भी क्यों न। जब पतझर में बसन्त आ जाय, जब नन्दलाल को नई-नवेली मिल जाय तब तो नयनों के आगे नया जीवन बरबस झाँकियाँ लेगा ही।'

'आप नहीं समझ सकते। आपको इसका क्या अनुभव ? हाँ, तो मैंने पतवार छोड़ दी और सेत्सूको को दे दी। मैंने अपने बैग में से मदिरा की बोतल निकाल प्याले में उँडेली। उससे गाना सुनाने की प्रार्थना की। प्याले से कुछ घूँट पीकर ऐसा लगने लगा जैसे रक्त में वेग आ गया, जीवन में ज्योति जगने लगी और मैं संगीत के प्रदेश में पहुँच गया। छलकते प्याले को मैंने गौर से देखा। ओ हो ! उसमें सेत्सूको के सुन्दर आनन की छाया ठीक मेरी सबसे पहिली प्रेमिका की-सी—दूर काठियावाड़ की मेरी मेघा-जैसी। क्या यह सेत्सूको के रूप में मेघा थी। मालूम नहीं मेरे हृदय में कितने दबे उद्गार उभरने लगे। कितने पुराने दृश्य आँखों के आगे नाच गये। मुझसे नहीं रहा गया। मैंने उससे कहा—मैं तुमसे ब्याह करूँगा। उसने उत्तर दिया—अभी नहीं। और मैंने एक लम्बा घूँट लेकर प्याले को रिक्त कर दिया।' नन्दलाल यह कहकर जल्दी-जल्दी साँस लेने लगा।

मैंने खिड़की के बाहर देखा। दूर पर एक जापानी स्त्री खेत में काम कर रही थी। हो सकता था कि नन्दलाल को वह स्त्री भी उसकी मेघा की याद दिलाती हो—मेहनत-मज़दूरी करनेवाली उसकी पहिली परिश्रमी प्रेमिका। क्या मालूम, जब प्रेमी का पुराना प्रेम जागता है तो विश्व-प्रेम का विस्तृत प्रांगण दिखने लगता है और अनेकों रूप में अलबेली प्रेयसी उसे झाँक-झाँककर देखती-सी नज़र आती है। शायद नन्द-लाल की भी यही दशा हो गई होगी।

मैंने उसे छेड़ते हुए फिर प्रश्न किया, 'हाँ भाई नन्दलाल ! तो वह ब्याह करने को तैयार नहीं हुई। बड़ी बेवफ़ा थी। ऐसा अच्छा वर उसे कहाँ मिलता ?'

'नहीं मेजर !' उसने कहा। 'मैं तब तक विवाह नहीं करूँगी जब तक हिरोशिमा नगर पूरा नहीं बन जायेगा। यह मेरा प्रण है।'

'और तुमने क्या निश्चय किया ?'

'यही कि मैं भी उस खण्डित नगर के नव-निर्माण में हाथ बटाऊँगा। उसे जल्दी बनाने में सहायता करूँगा। इस निश्चय की मैंने शिएटो मठ में उस दिन शपथ ली। और तब सेत्सूको मेरी होगी।'

इसी समय रेलगाड़ी के ऐञ्जिन ने एक लम्बी सीटी दी। वह सिगनल के पास से जा रही थी और रेल की पटरियों के दोनो ओर कुछ लोग काम कर रहे थे। ट्रेन की गति भी मन्द पड़ गई और वह स्टेशन पर आकर रुक गई। यात्री गाड़ी में चढ़ने-उतरने लगे।

★

हम दोनो जब नारा नगर के प्रमुख तोदइजी मन्दिर में पहुँचे बूँदाबाँदी हो रही थी। इस मन्दिर में दायबुत्सू (गौतम बुद्ध) की इतनी विशाल मूर्ति प्रतिष्ठित थी जितनी मैंने अभी तक कहीं नहीं देखी। यहाँ हर ओर बुद्ध धर्म की गरिमा और विशालता का भास होने लगा। मन्दिर में घुसते ही उसके चौक में पत्थर की बनी अठपहली एक बड़ी लालटेन दिखाई पड़ी। ऐसे आकार की छोटी लालटेन मैंने अधिकतर और मन्दिरों में देखी थी, पर शायद इतनी विशाल मूर्ति के पुण्य-स्थान में ज्योति जगाने की व्यवस्था के लिए इतने वृहत् दीप की आवश्यकता थी। कुछ भी हो, इस समय तो दिवाकर की ज्योति ही दायबुत्सू की प्रतिमा को आलोकित कर रही थी।

'कैसे महान पुरुष के त्याग और अहिंसा का यह विशाल ठोस रूप! मैं इस प्रतिमा से प्रभावित होने लगा हूँ, नन्दलाल !' मैंने कहा।

'आप इसकी बाह्य विशालता से प्रभावित हो रहे हैं और मेरे मन में इस योगी के कोमल अन्तस्थल की मधुरता झंकृत होने लगी है।' नन्दलाल बोला।

'तुम संगीत-प्रेमी झंकार सुन सकते हो और मैं केवल पत्थर का

विस्तार ही देख रहा हूँ।'

'नहीं मेजर ! मुझे ऐसा लगने लगा है कि अहिंसा और प्रेम ही विश्व में शान्ति स्थापित कर सकते हैं।'

'और युद्ध और आधुनिक अस्त्र-शस्त्र ?'

'वे बेकार हैं। मैंने इनका करतब हिरोशिमा में देख लिया। वहाँ मरुस्थल-जैसा सूनापन है और यहाँ इस नगर में स्वर्ग-जैसी सुन्दरता; और इस मन्दिर में आत्मा तक को सुख देनेवाली शान्ति।'

'ओहो ! तुम तो बुद्ध धर्म के भिक्षुकों-जैसी बातें करने लगे ! तुम तो ऐसे हो कि जहाँ जो देखा उसी से प्रभावित हो गये। वाह रे नन्द-लाल !' मैंने उसे छेड़ते हुए कहा।

इतने में इस मन्दिर का संरक्षक भी वहाँ आ गया। उसने हम लोगों को इसका इतिहास बताना आरम्भ कर दिया। उसने कहा कि यह सम्राट शोमू ने बनवाया था, जो जापान का पैतालीसवाँ सम्राट् था। सन् ७४५ से लेकर ७५२ तक इसका निर्माण होता रहा। सात साल के मनुष्य के अथक परिश्रम को हम प्रत्यक्ष देख रहे थे, और प्रभावित हो रहे थे।

दाय बुत्सू की ऊँची प्रतिमा को इंगित करके वह बोला, 'इस मूर्ति की ऊँचाई ५३ फुट ६ इञ्च है और इसकी तौल पाँच सौ टन। ऐसी प्रतिमा आपने कहीं भी नहीं देखी होगी।' वह हम लोगों को ऐसे बता रहा था जैसे गणित के ये अंक उसकी जिह्वा पर रक्खे थे।

'हाँ, मैंने ऐसी प्रतिमा अभी तक नहीं देखी।' मैं कहने लगा।

'आप देखिए और समझिए। इस प्रतिमा को बनाने में ४३७ टन कसकुट, १६५ पाउण्ड पारा, २८८ पाउण्ड सोना और ७ टन वनस्पति का मोम और मालूम नहीं कितना कोयला इत्यादिक लगा होगा। यह जापान की कला का अपूर्व नमूना है।' वह फिर हमको गणित के अंकों

में उलझाने लगा।

'मैं इस मन्दिर में सोने और पारे का मूल्यांकन करने थोड़े ही आया हूँ जो यह पुजारी हमको इन धातुओं के बोझ से लाद रहा है। चलो, इससे दूर होकर अकेले में दर्शन किये जायँ।' नन्दलाल ने मेरे कान में धीमे से कहा।

'आपको धन्यवाद! अब हम निश्चिन्त होकर इस मन्दिर के दर्शन कर लेंगे।' मैंने उस संरक्षक से कहा। वह हमारी बात समझ गया और हमको अकेला छोड़कर चला गया।

हम लोगों ने देखा दाय बुत्सू की मूर्ति अभय मुद्रा में विराजमान थी। उसके एक ओर चिन्तामणि अवलोकितेश्वर की मूर्ति और दूसरी ओर रासगर्भ की प्रतिमा। नन्दलाल और मैं बहुत देर तक दाय बुत्सू के गम्भीर आनन की छाया में खड़े रहे। मेरे मन में भाव उठने लगे कि कैसे गौतम बुद्ध ने भारत से सहस्रों मील दूर देशवासियों को प्रेम के एक सूत्र में बाँध दिया। उनकी वाणी इतने सागर पारकर आज भी यहाँ प्रतिध्वनित हो रही है। योग की पूर्ण साधना और उपनिषद् का गहन ज्ञान यहाँ प्रतिबिम्बित था।

'देखो नन्दलाल! हम सब इस प्रतिमा की अपार प्रतिभा के अंग हुए जा रहे हैं। हम भी तो भारतवासी हैं।'

नन्दलाल ने कुछ उत्तर न दिया। वह नेत्र बन्द किये मन्त्र-मुग्ध-सा खड़ा था। उसने झुककर साष्टांग प्रणाम किया और अचानक बोलना आरम्भ कर दिया, 'मैंने प्रण कर लिया, प्रण कर लिया, अब यहीं आपकी सेवा करूँगा। अपने देश वापस नहीं जाऊँगा।'

उसने दाय बुत्सू की प्रतिमा को फिर नमस्कार किया।

'क्या कहते हो नन्दलाल! सत्य के पैग़म्बर के आगे ऐसी बात नहीं करना चाहिए जिसे पूरा न कर सको।' मैंने समझाया।

'मेजर ! मैं यह जानता हूँ। मेरा यह प्रण पूरा होकर रहेगा।'

'यह कैसा प्रण ?' मैंने प्रश्न किया।

'यह मेरा जीवनपर्यन्त का प्रण। अडिग, अमिट, प्रण। अब मैं इस देश का वासी हो गया हूँ और दाय बुत्सू मेरे आराध्य देव हैं।' नन्दलाल ने दृढ़ता से कहा।

मुझे लगा जन्म-जन्मान्तरों के बाद फिर कोई भिक्षु तथागत के समीप आत्मसमर्पण कर रहा हो।

इस समय वर्षा कुछ अधिक होने लगी थी। सूर्य पर बादल छा गये थे। सहसा आकाश के घोर गर्जन ने मन्दिर को हिला-सा डाला।

'फिर तुम जल्दबाज़ी करने लगे। यह कैसे हो सकता है ? एक सप्ताह में तो हमारी सेना इस देश से चल देगी।' मैंने कहा।

'भारत की सेना को जाने दो। मैं सेना से अपना पद त्याग दूँगा, यह मैंने निश्चय कर लिया है।' नन्दलाल ने मेरी ओर देखा। उसके नेत्रों में एक अपूर्व ज्योति थी।

'यह क्या कह रहे हो नन्दलाल, मेरे नन्दलाल !' मैं व्याकुल होने लगा।

'घबराओ नहीं मेजर ! आप मुझे अभी तक समझाते रहे हैं, ठीक मार्ग दिखाते रहे हैं। पर अब तो यह मेरा निश्चय अटल है। मैं अब किसी देश की सेना का सैनिक नहीं हूँ ! अब तो मैं विश्व नागरिक हूँ। पूर्ण विश्व मेरा प्रदेश है।'

नन्दलाल ने मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया और वह मुझसे सटकर खड़ा हो गया। मैं स्तम्भित था। आश्चर्य में अवाक् था। फिर भी मैंने प्रश्न किया :

'नन्दलाल, तुम्हारे आदर्श उच्च हैं, पर क्या तुम उनको निभा सकोगे ?'

'क्यों नहीं, क्यों नहीं ! इतने दिनों तक भारत की सेना में रहकर क्या यह भी नहीं सीख सका हूँ। अब मैं हिरोशिमा में रहूँगा। वहाँ के नव-निर्माण में हाथ बटाऊँगा। उस खंडित नगर को बनाऊँगा। जब वह बन चुकेगा तब सेत्सूको मेरी होगी। उसने मुझसे वादा किया है।'

इसी क्षण फिर बादल गरजे, बड़ी-बड़ी बूँदें टप-टप गिरने लगीं। तड़ित् की तीव्र रेखा रह-रहकर क्षितिज के वक्ष को विदीर्ण करने लगी। मेरी दृष्टि उधर ही उलझ गई, क्योंकि मेरा हृदय भी तो विदीर्ण हो रहा था। जब तड़ित् की दोनों समानान्तर रजत-सी रेखाओं को मैं देखता तो विचार करने लगता कि नन्दलाल और सेत्सूको सान का जीवन अभी कई वर्षों इन्हीं रेखाओं के समान चलता रहेगा। निकट रहते हुए भी कभी एकाकार होने की आशा नहीं।

२०

उषा-काल में आज प्राची दिशा अनेकों रंगों से रंजित हो गई। काले-काले बादलों में अंशुमाली पहिले पूर्णिमा के चन्द्र से कुछ बड़े गोलाकार के रूप में झाँकने लगा। मैं इसी उलझन में टहलता रहा कि यह सुधाकर का अस्त है अथवा प्रभाकर का उदय। जब हल्की लाल-पीली रश्मियाँ उस भ्रमित चक्र में से फैलकर क्षितिज के अँधेरे को भेदने लगीं और जब उसका कम्पित प्रतिबिम्ब ताड़ के वृक्षों के साथ पास के शान्त सरोवर के हृदय में उतरने लगा, तब मुझे प्रकृति की इस छटा की वास्तविकता का ज्ञान हुआ।

हवा कुछ ठण्डी, कुछ मादक और कमलिनी और चैरी की सुगन्ध से कुछ बोझिल। मैंने विचार किया कि आज अपने जापानी मित्रों

के लिए कुछ फूलों का उपहार सँजो लूँ। आज मैं उनसे विलग हो जाऊँगा। उनसे विदा लूँगा। पुष्पों के उद्यान-से इस देश को दूर छोड़कर सागर की यात्रा पर कुछ घण्टों में ही चल पड़ूँगा। और वे—मेरे निकट सम्बन्धियों से भी प्यारे साथी और मित्र—मुझसे दूर हो जायँगे। वे कभी भी मुझसे दूर नहीं हो सकते। मैं उनको अपनी स्मृति में संचित करके रक्खूँगा—फूलों के गुलदस्तों की तरह—हर व्यक्ति की आत्मा का कोमल पुष्प मेरे पास होगा। उनके स्नेह की लतिका मेरे हृदय में हरित होगी। मैं उसे अपने अन्तर के अमृत से सिंचन करूँगा। वे मुझसे कभी भी अलग नहीं होंगे, दूर नहीं होंगे—वे मेरे सहृदय इष्ट-मित्र, मेरे सहोदरों से भी अधिक प्रिय—डाक्टर तोशियो, ओकादा, प्रोफेसर हामागूची, सेत्सूका सान, और उसका विकल प्रेमी अलबेला नन्दलाल।

मैं सरोवर की ओर चल रहा था और समीर मेरे हृदय को छू रही थी। मैंने जूते उतारकर एक पैर पानी में डालकर एक कमलिनी का गुच्छा तोड़ा। पानी ठण्डा था। एक फुरफुरी-सी मेरे सारे शरीर में दौड़ गई। मैंने दो-चार पुष्प और तोड़े। अब मेरे दोनो पैर बिल्कुल भीगे थे। सूर्य की आभा विकसित हो चुकी और उसकी किरणों में कुछ हल्का कुनकुनापन आने लगा था। मैं तालाब के किनारे एक स्थान पर बैठ गया और अपने पैरों को धूप में फैला दिया। दूर पर चैरी का वृक्ष गुलाबी फूलों से लदा था। अभी तो वहाँ से फूल तोड़ने थे, तब ही तो मेरा गुलदस्ता सज सकेगा। चैरी—वही गुलाबी, लाल चैरी का पेड़, जिसका ठूँठ मैंने यूरीको के घर के खण्डहरों के पास देखा था। उसी को देखने को वह व्याकुल थी। हिरोशिमा का खण्डित प्रस्तरों का ढेर मेरी आँखों के आगे फैलने लगा। मैंने अपने नेत्र मूँद लिये। अब वह दृश्य मेरे लिए असह्य था। फिर भी आँखों के आगे चमकती चिनगारियाँ-सी झड़ने लगीं—फुलझड़ी-जैसी लाल, पीली, गुलाबी चिनगारियाँ।

अरे ! यह क्या ? ये चिनगारियाँ तो बड़े-बड़े आग के शोले और चैरी का वृक्ष एक आग का फ़व्वारा या रोशनी का खुलता हुआ छाता बन गया। वहाँ तो अग्नि का अवतरण होने लगा। ऊपर दिवाकर का चकाचौंध। ऐसा लगता जैसे किसी हिम शिखर पर परमाणु-बम का विस्फोट हुआ हो। क्या वह हिमाच्छादित उत्तरी ध्रुव-सागर तो नहीं था। बर्फ गलने लगी और जल बढ़ने लगा। बड़े-बड़े हिम के पर्वत हिलने लगे, चलने लगे, बहने लगे। यदि यह गलन-प्रतिक्रिया चलती रही तो क्या होगा ? यदि ध्रुव के हिम-संग्रथन सरकने लगे तो क्या होगा ? मैंने देखा, सागर की घहराती, उत्ताल लहरें उफन रही हैं और पृथ्वी के अधिकांश भाग को जल-मग्न किये डाल रही हैं। पहिले वे तट पर टकराती हैं और फिर घरघराकर तट को ग़र्क किये देती हैं। यह कैसा फैनिल सागर का उत्कर्ष और तट का पूर्ण विलोप। ऐसा लगने लगा कि उष्ण कटिबन्ध के देश ठण्डे हुए जा रहे हैं। मैं भी इसी अवस्था में था। कटि के ऊपर का भाग सूर्य के ताप से कुछ गर्म और मेरी टाँगें जल से भींगी कुछ ठण्डी। मेरे कन्धे पर किसी ने ज़ोर से दोनों भारी हाथों का बोझा रख दिया।

मैंने आँखें खोलीं तो देखा नन्दलाल मेरे कन्धों को झकझोर रहा है और कह रहा है, 'क्या यहाँ पड़े-पड़े ऊँघ रहे हो। चलते-चलते भी दिन में स्वप्न देखने की आदत नहीं छोड़ोगे मेजर !'

'नहीं, नहीं। मैं तो तुम सबके लिए पुष्पोपहार एकत्रित कर रहा था। ये देखो।' मैंने अपनी आँखें मलते हुए कहा।

★

हम दोनो हाथ-में हाथ-डाले कुछ देर साथ टहलते रहे। कुछ पुरानी बातों की याद कर अतीत स्मृतियों को दुहराने का प्रयत्न करते रहे। स्मृतियों की चलती शृंखला में यही समझ में नहीं आता कि कहाँ

रुका जाय।

नन्दलाल की सुधि उसकी मातृभूमि काठियावाड़ में उलझकर रह गई जब उसने मुझसे भर्राई-सी आवाज में कहा, 'मेजर! मेरे सम्बन्धियों से कह देना कि अब अपने नन्दू को भूल जायँ। वह उनका न रहकर सारे संसार का हो चुका है। मेरे गाँव के तट को अब भी सागर धोता होगा और तट पर लगा वह नारियल का वृक्ष—वह शायद सूख चुका होगा—ज़रूर सूख चुका होगा! इतने वर्षों वह कैसे हरा रह सकता है, पर उसकी याद मेरे मन में आज भी हरी है।' नन्दलाल की आँखें डबडबा आईं और उसके हाथ की उँगलियाँ काँपने लगीं।

'मेरे नन्दलाल! अब तुम यहाँ रहोगे और मैं मालूम नहीं कहाँ चला जाऊँ! क्या दो मित्र ऐसे ही बिछुड़ने को थे—सच्चे-गहरे मित्र!' मैं आगे और कुछ नहीं कह सका। हृदय से उठता एक गोला-सा मेरे गले में अटक गया और नेत्रों से निर्झरिणी बह चली।

नन्दलाल ने अपना रूमाल मेरी आँखों पर रख दिया। फिर हम ढीले-ढीले पग बढ़ाते कुरे के डॉक्स की ओर चलने लगे।

दूर पर हमारा जहाज़ मोटर-वेसेल डेवनशायर (Motor Vessel Davonshire) डाक्स में लगा खड़ा था। हमारी सेना के सैनिक खट-खट उस पर चुस्ती से चढ़ रहे थे। कुछ अपने मित्रों से विदा ले रहे थे। मैं भी उसी स्थिति में था। मेरे इष्ट-मित्र भी वहाँ आ गये थे। मैंने कुछ फूल डाक्टर तोशियो तनाका को भेंट किये, कुछ ओकादा के मज़बूत हाथों में थमा दिये। एक गुलदस्ते में से आधा सेत्सूको सान को और आधा नन्दलाल को देते हुए मैंने कहा, 'घर जाकर इन दोनो को एक ही गुलदान में सजाना।' कमलिनी की एक कलिका का उपहार मैंने यूरीको के लिए यह कहकर सेत्सूको की कोमल उँगलियों में रख दिया, 'ये यूरीको के लिए हैं। जब तक यह कमलिनी खिलेगी तब

तक शायद यूरीको पूर्ण स्वस्थ हो जाय । डाक्टर तोशियो तनाका की देख-रेख में वह अवश्य स्वस्थ हो जायगा ।'

'मैं अपनी ज़िम्मेदारी निभाऊँगा ।' कहते-कहते डाक्टर तोशियो तनाका हँसने लगा और उसके सोने से मढ़े दो दाँत चमकने लगे ।

मैंने अपने मित्रों से लिपट-लिपटकर, हाथ मिला-मिलाकर विदा ली। सबने एक स्वर में हाथ हिला-हिलाकर कहा, 'सायोनारा ! सायोनारा!' अथवा विदा विदा । मैं डेवनशायर पर चढ़कर डेक पर खड़ा हो गया । चारों ओर चलने की तैयारियाँ होने लगीं । इस समय समीर में भी वेग आ गया था । वह सर-सरकर उग्र होने लगी । मैंने देखा दूर पर नन्दलाल के बाल सर पर बिखरकर हवा में उड़ रहे थे । उसके एक हाथ में लटकती वर्दी का कोट भी हिलने लगा था । अचानक वह जहाज़ की ओर को भागा और उसने वर्दी का कोट और फ़ौजी टोपी समुद्र में फेंक दिये । वह फिर वापस सेत्सूको के पास जा खड़ा हुआ। सेत्सूको की इठलाती-लहराती किमोनो नन्दलाल को स्पर्श करने लगी। सागर की एक लहर उस फ़ौजी कोट को उधर ले आई जहाँ मैं खड़ा था । वह कुछ क्षण पानी में उतराता रहा और फिर लहरों के जाल में मालूम नहीं कहाँ जल-मग्न हो गया ।

उसी समय डेवनशायर का तीव्र हूटर (भोंपू) बजा और हमारा जल-पोत चलने लगा । मैं डेक की रेलिंग का सहारा लेकर चिल्लाने लगा—'सायोनारा—सायोनारा ! (विदा-विदा) । डाक्टर तोशियो तनाका सायोनारा—ओकादा सायोनारा—सेत्सूका सायोनारा—नन्द-लाल सायोनारा !' मेरे शब्द सम्भवतः उस घड़घड़ाहट के आगे न जा सके । इसी लिए मैं धीमे स्वर में जपने लगा : ''सायोनारा प्रोफेसर हामागूची—सायोनारा यूरीको—सायोनारा—सायोनारा—प्यारे जापान के रंगीले द्वीप सायोनारा....''